महावीर या महाविनाश

भगवान् श्री रजनीश

सम्पादन :
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
: सकलन :
मा योग विमल

रजनीश फाउन्डेशन, प्रकाशन, पूना–१

प्रकाशक

मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउन्डेशन,
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगाव पार्क
पूना–१

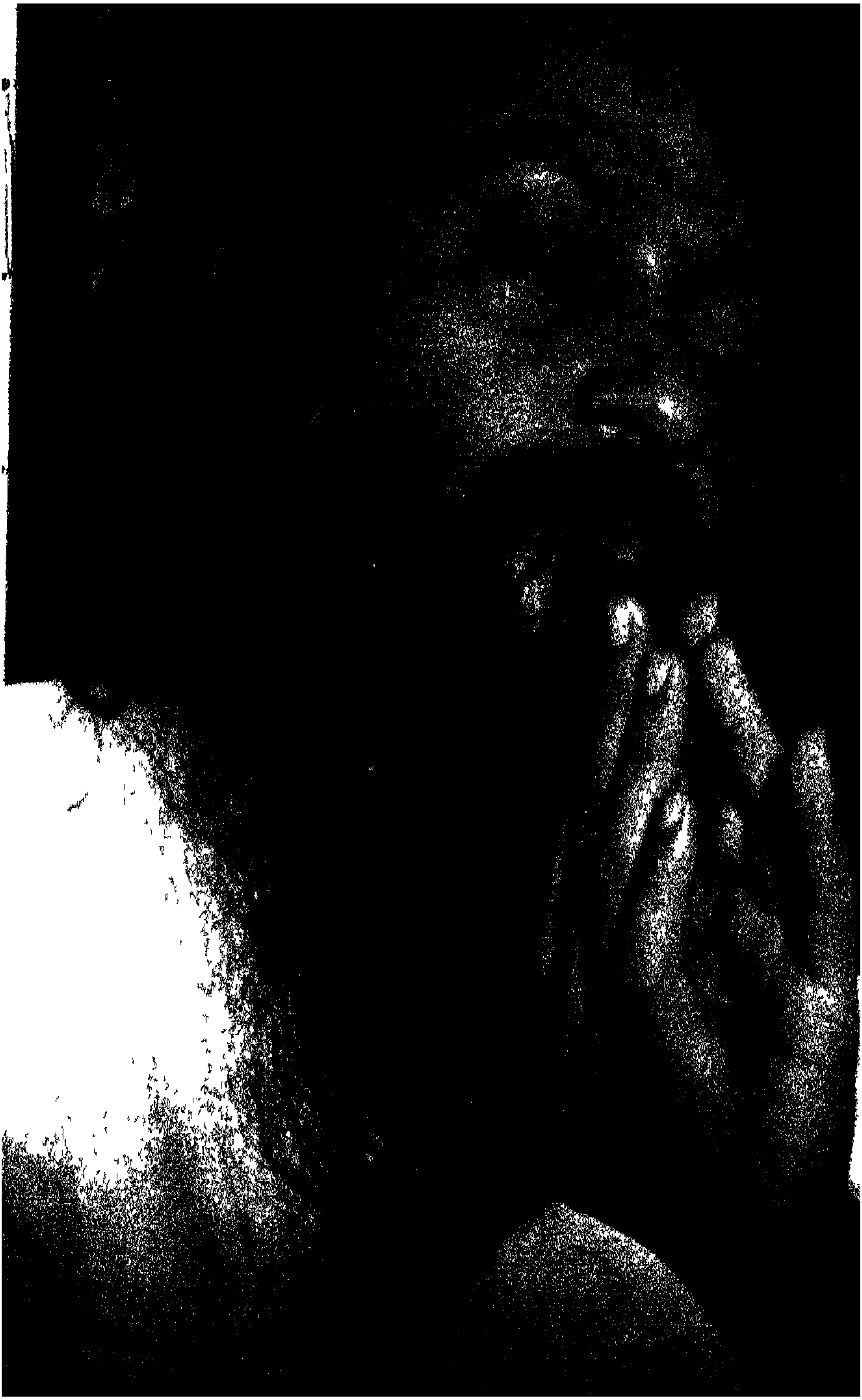
प्रथम संस्करण
अप्रैल १९७५

मूल्य पन्द्रह रुपया

मुद्रक

नारायण मु उस्कैकर
श्री रजनीश आश्रम प्रेस,
पूना–१

– अनुक्रम –



अन्ततः हम महावीर को चुन लेंगे

आइन्स्टीन ने मरने के पहले कहा था—किसी ने पूछा था, तीसरे महायुद्ध मे किन अस्त्र शस्त्रो का प्रयोग होगा ? आइन्स्टीन ने कहा, तीसरे का तो मुझे पता नही, लेकिन चौथे के बाबत मुझे ज्ञात है। पूछने वाला हैरान हुआ होगा। तीसरे के बाबत ज्ञात नही है, चौथे के बाबत क्या ज्ञात है ! उसने पूछा, क्या ज्ञात है ? आइन्स्टीन ने कहा, अगर चौथा महायुद्ध हुआ, जिसकी कोई सम्भावना नही है, तो आदमी पत्थरों के औजारो से लडेगा, क्योकि तीसरा उसके सारे विकास को, उसकी सारी समृद्धि को समाप्त कर देगा।

पहली बार हम ऐसे स्थान पर आये है, जहा हिंसा टोटल हो सकती है, जहा हिंसा समग्र हो सकती है। समग्र हिंसा के बाद जीवन की कोई सभावना नही है। हिंसा पूर्ण हो जाय, तो स्वय अपना आत्मघात कर लेगी। वे हिंसक प्रवृत्तिया, जिनका सारे धर्मों ने विरोध किया है, विशेषतया श्रमण धर्मों ने—जिस हिंसा के लिए पच्चीस सौ वर्ष पहले आवाज उठायी थी, वह भविष्यवाणी पूरे होने के करीब पहुच रही है। जो आने वाला, सम्भावी युद्ध होगा, वह किसी तरह के प्राण को जमीन पर बचने नही देगा।

एक हाइड्रोजन बम पैंतालीस हजार वर्ग मील क्षेत्र को प्रभावित करता है। इग्लैंड, फ्रास या पश्चिम जर्मनी जैसे देश को नष्ट करने के लिए केवल पन्द्रह हाइड्रोजन बम पर्याप्त हैं। और सारी दुनिया मे इस समय पचास हजार हाइड्रोजन बम और हजारो अणु बम तैयार है। और ये हजारो बम इस तरह की सात जमीनो को नष्ट करने को पर्याप्त हैं। और प्रति घण्टा पचास करोड रुपया इस तरह के विनाशक अस्त्रो को तैयार करने मे, सारी दुनिया मे खर्च हो रहा है ! प्रति घण्टा ! दो घण्टे मे एक अरब रुपया ! चौबीस घण्टे मे बारह अरब रुपया !

हम जरूर कुछ पागल हो गये हैं। हम जरूर विक्षिप्त हो गये हैं। हम सभी होश मे नहीं है। हम कुछ नशे मे हैं—और जैसे हमे कुछ पता नही कि हम क्या कर रहे हैं! हमारे हाथ, हमारी मौत का आयोजन कर रहे हैं, और हमें कुछ भी ज्ञात नही है!

ऐसी सदी को होश मे कहियेगा? ऐसे मनुष्य को जागा हुआ कहियेगा? ऐसे युग को स्वच्छ कहियेगा?

विक्षिप्त है यह युग। और इस सत्य को जितना शीघ्र समझ ले, उतना उचित है, अन्यथा अपने ही विक्षिप्त आयोजन हमारी मृत्यु बन जा सकते हैं।

यह विक्षिप्तता कैसे पैदा हो गयी है? यह पागलपन कैसे आ गया है? और क्या ऊपर का कोई उपचार—अहिंसा पर दिये गये प्रवचन और अहिंसा पर लिखा गया साहित्य और अहिंसा के पक्ष में बोली गयी बाते इस विक्षिप्तता को तोड सकेंगी?

यह विक्षिप्तता टूट जानी इतनी आसान नही है। यह विक्षिप्तता ऊपर से आरोपित नही है, यह विक्षिप्तता कही भीतर से विकसित हुई है। इस विक्षिप्तता की कही मनुष्य के मन मे, बुनियादी जडे है। मनुष्य की प्रकृति मे कुछ है, जहा से यह विक्षिप्तता फैलती और विकसित होती है। जब तक उसकी प्रकृति मे परिवर्तन करने का विचार, विवेक, जागृति पैदा न हो, जब तक उसकी प्रकृति मे जो पशु है, उसके विनाश का कोई आयोजन न हो, तब तक मनुष्य के भीतर प्रकाश को और प्रभु को पैदा नही किया जा सकता। मनुष्य यू भी हिंसक नही है। उसकी हिंसा मे—उसके चित्त मे जडे है, उन जडो को अलग कर देना जरूरी है, तो ही हम एक अहिंसक मनुष्य का निर्माण कर सकते है। अहिंसक मनुष्य का निर्माण ही इस जगत के लिए एकमात्र प्राण हो सकता है।

महावीर ने कहा था, अहिंसा एकमात्र प्राण है। यह बात इतनी सच कभी नही थी। यह बात पहली बार परिपूर्ण सत्य हुई है। अहिंसा के अतिरिक्त आज कोई मार्ग नही है। महावीर या महाविनाश—इन दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नही है। पहली बार इतिहास ने हमे ऐसी जगह लाकर खडा कर दिया, जहा महावीर और उनकी अहिंसा एकमात्र जीवन का पर्याय बन गयी है।

महावीर या महाविनाश—चुनाव हमारे हाथ मे है। जीवन या महामृत्यु—चुनाव हमारे हाथ मे है। महामृत्यु या महाविनाश अब बिना कुछ किये ही आ

जाने वाले हैं। महावीर या जीवन के लिए हमे बहुत-कुछ करना होगा—और वह भी प्रबुद्ध-चेतना के मार्गदर्शन मे। क्योकि प्रबुद्ध-चेतना के मार्गदर्शन के बिना जो कुछ भी हमने किया, उसी सबने तो महाविनाश के कगार पर हमे पहुचा दिया।

और सौभाग्यशाली है यह सदी—एक प्रबुद्ध चेतना—भगवान् श्री रजनीश—जीवन के मार्गदर्शन के लिए हमे सहज उपलब्ध है।

और अन्तत हम जीवन को चुन लेगे, महावीर को।

२५ वी महावीर निर्वाण शताब्दी
२३ अप्रैल १९७५

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगाव पार्क
पूना—१

मानवीय गरिमा के उद्घोषक

इस पुण्य स्मरण दिवस पर मैं दुखी भी हूं और आनंदित भी। दुखी इसलिए हू कि महावीर का हम स्मरण करते है, लेकिन महावीर से हमे कोई प्रेम नही है। दुखी इसलिए हू कि धर्म-मंदिरो मे हम प्रवेश करते है, लेकिन धर्म-मन्दिरो पर हमारी कोई श्रद्धा नही है। दुखी इसलिए हू कि हम सत्य की चर्चा करते हैं, लेकिन सत्य पर हमारी कोई निष्ठा नही है। और ऐसे लोग जो झूठे ही मन्दिरो मे प्रवेश करते हो, और ऐसे लोग जो झूठा ही भगवान का स्मरण करते हो, उन लोगो से बुरे लोग है, जो भगवान का स्मरण नही करते और मन्दिरो में प्रवेश नही करते। क्योकि वे लोग जो स्पष्टतया धर्म के विरोध मे खडे हैं, कम से कम नैतिक रूप से ईमानदार हैं उनकी बजाय, जो धर्म के पक्ष में तो नही है, लेकिन पक्ष मे खडे हुए दिखायी पडते हैं।

सारी जमीन इस तरह के धार्मिक लोगो से भर गयी है, जो धार्मिक नही हैं और उनके कारण धर्म रोज डूबता चला जाता है। और सारे मन्दिर ऐसे लोगो से भर गये हैं, जो नास्तिकों से भी बदतर हैं, और इसलिए मन्दिर मन्दिर नही रह गये है। उन ओठो से भगवान महावीर का या बुद्ध का या कृष्ण का स्मरण, जिन ओठो मे सच मे ही धर्म की कोई प्रतिष्ठा नही है, अपमानजनक है। इसलिए मैं दुखी हू। और इसलिए आनन्दित भी हूं कि इतना सब हो जाने के बाद भी, मनुष्य के जीवन से धर्म की सारी जडे टूट जाने के बाद भी, मनुष्य के अन्तस्तल से धर्म के सार सम्बध विच्छिन्न हो जाने के बाद भी, सारी निष्ठा और सारी आस्था खण्डित हो जाने के बाद भी कम से कम हमारे मन मे पच्चीस सौ वर्ष पहले कोई हुआ है, पच्चीस सौ वर्ष पीछे इतिहास मे कोई हुआ है, उसके प्रति

एक स्मृति की रेखा हमारे हृदय मे उठती है। जो अन्धकार घना है, उसके लिए दुखी हू, लेकिन जो स्मृति की थोडी सी प्रकाश किरण है, उसके कारण आनन्दित भी हू।

हम कितने ही दूर चले गये हो, लेकिन हमारे मन मे एक स्मरण और एक स्मृति और एक ख्याल मौजूद है। उस किरण के सहारे शायद पूरे अन्धेरे को भी मिटाया जा सकता है।

इस स्मृति दिवस पर महावीर के सम्बन्ध मे कुछ थोडी सी बाते कहूगा और थोडी सी बातें आपके सम्बन्ध मे कहूगा। क्योकि जो बाते केवल महावीर के सम्बन्ध मे हो, वे आपके किसी काम की नही होगी। और जो बाते केवल आपके सम्बन्ध मे हो, उनसे महावीर का कोई सम्बन्ध नही होगा। इसलिए उचित है कि मैं थोडी बाते आपके सम्बन्ध मे कहू और थोडी सी बाते महावीर के सम्बन्ध मे कहू, ताकि आप महावीर से सम्बन्धित हो सके। क्योकि रास्ता बन सके और उनके विचार तक, उनके उस आकाश तक आपकी आखे खुल सके। इसलिए थोडी सी बात आपकी और थोडी सी बात महावीर की मैं कहूगा।

इसके पहले कि महावीर के सम्बन्ध मे कुछ कहू, बहुत उचित है कि आपके सम्बन्ध मे कहू। क्योकि आप महावीर को समझना चाहते है, आप महावीर को प्रेम करना चाहते है, आप महावीर के प्रति निष्ठावान होना चाहते है, और आप महावीर के विचार और उनकी साधना से लाभ उठाना चाहते है। तो आपके सबध मे कुछ बाते बहुत जरूरी हैं।

पहली बात तो यह जरूरी है कि आप इस बात को समझ ले कि अगर आप जैन घर मे पैदा हुए हैं और इसलिए महावीर को श्रद्धा देते हो, तो वैसी श्रद्धा का मूल्य दो कौडी से ज्यादा नही है। अगर आप जैन घर मे पैदा होने से महावीर को आदर देते हो, क्षमा मुझे करे, तो आप कोई भी आदर नही देत हैं। आपके किसी घर मे पैदा होने से महावीर को दिये गये आदर का क्या सबध हो सकता है? आपका किसी समाज मे पैदा हो जाना, आपका किसी परिवार मैं पैदा हो जाना, महावीर से आपको सबधित नही करना है। इसे स्मरण रखे, कोई व्यक्ति ईसाई घर मे पैदा हो जाने से क्राइस्ट से सबधित नही होना। और कोई व्यक्ति जैन घर मे पैदा हो जाने से महावीर से सबधित नही होता। कोई व्यक्ति हिन्दू घर मे पैदा हो जाने से कृष्ण से सबधित नही होता। यह बात इतनी सस्ती नही है। धर्म से सबधित होना जीवन का सबसे महगा सौदा है।

और जिन लोगों ने समझा हो, कि खून से और जन्म से तय हो जाता है, उन पागलों को क्या कहा जाये ?

धार्मिक होना दुरूह साधना की बात है। और धार्मिक होने के लिए किसी जन्म से कोई सबध नहीं है, बल्कि अपने भीतर जो भी बुरा है और जो भी अन्धकार है, उसकी मृत्यु से धर्म का सबध है। आपके जन्म से नही, आपके मर जाने से आप धर्म से सबधित होगे। आपके किसी घर मे पैदा हो जाने से नही, आपकी सपूर्ण अस्मिता को लेकर अगर आप मर सकेंगे, तो आप धर्म से संबंधित हो जायेंगे। और मैं आपको यह भी कहू, जैसा मैंने कहा कि ईसाई घर मे पैदा होने से कोई क्राइस्ट से सबधित नही होता, और जैन घर मे पैदा होने से महावीर से सबधित नही होता, वैसे ही मैं आपको यह भी कहूगा कि जो महावीर से सबधित हो जाता है, वह क्राइस्ट से भी सबधित हो जाता है और कृष्ण से भी सबधित हो जाता है। इन जीते और जागते प्रकाश स्रोतो मे से किसी एक से भी जो सबधित हो जाता है, वह अनन्त प्रकाशो से सबधित हो जाता है।

गाधी जी को किसी ने अमेरिका से एक पत्र लिखा था और उनको पूछा था कि आप गीता को बहुत आदर देते हैं, क्या मुझे आप आज्ञा देगे कि मैं भी हिन्दू हो जाऊ ? गाधी जी ने उसे उत्तर दिया कि मैं किसी को यह नही कह सकता कि वह हिन्दू हो जाय, या मुसलमान हो जाय। मैं तो यही कहूगा, वह जिस धर्म मे है, उस धर्म की सपूर्ण गहराई मे उतर जाय। अगर वह क्रिश्चियन है तो अच्छा क्रिश्चियन हो जाय, अगर वह मुसलमान है तो अच्छा मुसलमान हो जाय। अच्छे मुसलमान मे, अच्छे ईसाई मे और अच्छे जैन मे कोई फासला नही रहता है।

सब फासले बुरे लोगो मे है।

सारे फासले बुराई के बीच हैं, भलाई के बीच कोई फासला नही है।

और इसलिए जो धर्म अलग-अलग खडे दिखायी पडते है, जो मदिर और चर्च अलग-अलग खडे दिखायी पडते है, जानना कि वे बुरे लोगो ने खडे किये होगे। वे भले लोगो के खडे हुए नही हो सकते। और जो सप्रदाय और सगठनो मे विभक्त दिखायी पडते हो और जो कनवेन्शनस मे बधे हुए दिखायी पडते हो, समझना कि उसमे बुरे लोग नेता होंगे। वह भले लोगो का काम नही होगा।

साधु जगत मे किसी को लडाते नही हैं। और असाधु सिवाय लडाने के कुछ भी नही करते। यदि महावीर से आप सबधित हो गये तो आप क्राइस्ट से

और कृष्ण से भी संबधित हो जायेंगे। क्योंकि ये नाम अलग हैं, इनके भीतर जो सचाई है, वह एक है। बहुत, हजार दिये जलते हो, ये हजार दिये अलग-अलग हैं, लेकिन उनमे जो ज्योति जलती है, वह एक है। और लाख फूल यहा खिले हैं, ये फूल सब अलग-अलग हैं, लेकिन जो सौदर्य उनमे प्रगट होता है, वह एक है।

सारी जमीन पर जो भी श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं और जिनके जीवन मे परमात्मा का प्रकाश उतरा है, और जिनके जीवन मे सौदर्य का अनुभव हुआ है, और जिन्होने सत्य को उपलब्ध किया है, उनकी देहे अलग है, उनकी आत्मा अलग नही हैं। इसलिए महावीर के इस जन्म-दिवस पर पहली बात आपसे यह कहू कि आप सिर्फ इस कारण महावीर के प्रति अपने को श्रद्धा से भरे हुए मत समझ लेना कि आपका जन्म जैन घर मे हुआ है।

धर्म बपौती नही है और किसी को वशानुक्रम से नही मिलता।

धर्म प्रत्येक—प्रत्येक व्यक्ति की निजी उपलब्धि है और अपनी साधना मे मिलता है।

इस समय सारी जमीन जिस भूल मे पडी है, वह भूल यह है कि हम उस धर्म को जिसे कि चेष्टा से, साधना से, प्रयास से उपलब्ध करना होगा, उसे हम पैदाइश से उपलब्ध मान लेते है। इससे बडा धोखा नही हो सकता। और जो आपको यह धोका देता है, वह आपका दुश्मन है। जो आपको इसलिए जैन कहता हो कि आप जैन घर मे पैदा हुए है, वह आपका दुश्मन है, क्योंकि वह आपको ठीक अर्थों मे जैन होने से रोक रहा है। इसके पहले कि आप ठीक अर्थों मे जैन हो सके, आप गलत अर्थों मे जो जैन है, उसे छोड देना होगा। इसके पहले कि कोई सत्य को पा सके, जो असत्य उसके मन मे बैठा हुआ है, उसे अलग कर देना होगा।

यह तो मैं आपके सम्बन्ध मे कहू कि आप अपने सम्बन्ध मे यह निश्चित समझ ले कि अगर आपका प्रेम और श्रद्धा केवल इसलिए है, तो वह श्रद्धा झूठी है। और झूठी श्रद्धा मनुष्य को कही भी नही ले जाती। झूठी श्रद्धा भटकाती है, पहुचाती नही है। झूठी श्रद्धा चलाती है, लेकिन किसी मजिल को निकट नही आने देती। झूठी श्रद्धा अनन्त चक्कर है। और सच्ची श्रद्धा, एक ही छलाग मे पहुचा देती है।

आपकी यह झूठी श्रद्धा छूटे। आपका यह ख्याल मिट जाना चाहिए कि खून से और पैदाइश से मैं धार्मिक हो सकता हू। धार्मिक होना अन्तस्चेतना के परिवर्तन से होता है। यह तो पहली बात आपके सम्बन्ध मे कहूं।

दूसरी बात आपके सम्बन्ध मे यह कहना चाहूगा कि शायद आपको यह पता न हो कि धर्म क्या है। आप रोज सुनते हैं—जैन धर्म, हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म। ये सब नाम हैं, ये धर्म नही हैं। शायद आप सोचते हो, धर्म का सम्बन्ध किन्ही सिद्धान्तो के याद कर लेने से है। शायद आप सोचते हों कि किसी तत्वप्रमाण को, किसी फिलॉसफि को, किसी तत्व-दर्शन को सीख लेने से है, तो आप भूल मे होगे। धर्म का सम्बन्ध किन्ही सिद्धान्तो के स्मरण कर लेने से और याद कर लेने से नही है। आपको सारे सिद्धान्त याद हो जायें, तो भी आप धार्मिक नहीं बन सकेगे। स्मृति से धर्म का क्या सम्बन्ध है ? कोई भी सम्बन्ध नही है। यह हो सकता है कि आप सारे धर्म के सिद्धान्त दोहराने लगें, वे आपकी वाणी और विचार मे प्रविष्ट हो जाय, इससे कुछ भी न होगा।

बहुत लोग समझते हैं कि धर्म के सबध मे कुछ जान लेगे तो धार्मिक हो जायेगे! धर्म के सबध मे कुछ भी जानने से कोई धार्मिक नही होता। कोई धार्मिक हो जाय तो धर्म के सबध मे सब जान लेता है।

इस सूत्र को मैं पुन दोहराऊ, धर्म के सबध मे सब जान लेने से कोई धार्मिक नही होता, धार्मिक कोई हो जाय तो धर्म के सबध सब जान लेता है।

यदि आप जैन धर्म के सबध मे कुछ जानते हो, महावीर के धर्म के सबध मे कुछ जानते हो, तो उसका कोई मूल्य नही है। अगर महावीर जिसे धर्म कहते हैं, उस अर्थ मे आप थोडे बहुत धार्मिक हो तो उसका बहुत मूल्य है।

धर्म जानकारी नही है, धर्म आमूल जीवन को परिवर्तित करना है।

धर्म कुछ सीखना नही है, धर्म कुछ वस्त्रो को भाति ऊपर से ओढ लेना नही हे, धर्म तो श्वासो की भाति, प्राणो की भाति, हृदय की धडकन को भाति, जब समग्र जीवन मे प्रविष्ट हो जाय, तो ही सार्थक होता है।

फिर दूसरी बात आपसे मैं यह कहू कि अगर महावीर के सिद्धान्त आपको मालूम हो तो उसका कोई बहुत मूल्य नही है। अगर महावीर की जीवन-चर्या आपको मालूम हो तो उसका मूल्य है। महावीर क्या कहते थे कि सृष्टि कैसे बनी, महावीर क्या कहते थे कि कितने पदार्थ है और कितने तत्व है, महावीर क्या कहते थे कि तर्क क्या है और सत्य क्या है, उसे जान लेने का कोई मूल्य नही है। मूल्य

इस बात का है कि महावीर कैसे चलते थे, कैसे उठते थे, कैसे जीते थे। महावीर के तत्व-चिन्तन का मूल्य नही है, महावीर की जीवन-चर्या का मूल्य है। जो जीवन-चर्या को साधेगा, वह महावीर के तत्वज्ञान को अपने आप उपलब्ध हो जायेगा। जो महावीर के तत्व-ज्ञान को सीखकर बैठा रहेगा, वह तत्वज्ञानी बनकर रह जायेगा, वह महावीर की जीवन-चर्या को उपलब्ध नही होगा। जीवन-चर्या मूल है, तत्वज्ञान गौण है। जीवन-चर्या का वृक्ष कोई लगाये, तो तत्व-ज्ञान की शाखाए अपने आप फूट आती हैं, और जो तत्वज्ञान की शाखाओ को इकट्ठा करता रहे, उसके हाथ में लकडियो का बण्डल तो बहुत इकट्ठा हो जायेगा, भार तो बहुत हो जायेगा, पर उसके जीवन मे मुक्ति का प्रकाश उपलब्ध नही होगा। इसलिए दूसरी बात आपसे यह कहू।

और तीसरी बात आपसे यह कहू कि धर्म केवल उनके काम का है, जिन्हे प्यास हो। एक कुए के पास हम खडे हो, कुए मे जो पानी है, वह पानी केवल उन्ही के लिए है, जिन्हे प्यास हो, अन्यथा पानी पानी नही है। पानी का होना, पानी के भीतर नही है, आपकी प्यास मे है। प्यास हो तो पानी पानी बन जाता है। प्यास न हो तो पानी कुछ भी नही रह जाता।

यह प्रकाश जल रहा है यहा। इस प्रकाश का होना प्रकाश मे ही नही है मेरी आख मे भी है। अगर आख हो तो यह प्रकाश बन जाता है, आख न हो तो सब अन्धकार हो जाता है।

धर्म के सत्य तो निरन्तर उपलब्ध है, जैसे प्रकाश निरन्तर उपलब्ध है। प्रश्न धर्म के सत्यो का नही है, प्रश्न मेरे भीतर अपने होने का है। पानी तो हमेशा उपलब्ध है—प्रश्न पानी का नही, मेरे भीतर प्यास के होने का है। इसके पहले कि मैं पानी की चर्चा करू यह जरूरी है कि मैं आपकी प्यास की चर्चा कर लू। इसलिए तीसरी बात मैं आपसे यह कहना चाहता हू, जहा तक मेरी समझ है, आपमे शायद ही धर्म की प्यास हो। क्योकि जिन्हे धर्म की प्यास हो, वे बहुत दिन बिना धार्मिक हुए नही रह सकते। यह मैं सोच ही नही सकता कि कोई आदमी मुझसे कहे कि मैं वर्ष भर से प्यासा हू और अभी पानी की तरफ गया नही! यह मैं सोच नही सकता, यह मेरी कल्पना मे नही आता कि कोई आदमी वर्ष भर से प्यासा है और कुए की तरफ गया नही! उसका न जाना इस बात का सबूत है कि उसके भीतर प्यास न होगी। प्यास हो तो जाना ही पडेगा। प्यास हो तो चरण उस तरफ चले ही जायेंगे। प्यास हो तो सासें खिची चली

जायेंगी, प्यास हो तो प्राण उसी तरफ भागेंगे ।

जहा प्यास है, वहा गति है । और जहां प्यास नहीं है, वहां कोई गति नही है ।

दुनिया को लोग कह रहे हैं कि अधार्मिक हो गयी है ! दुनिया अधार्मिक नही हो गयी । केवल एक बात हो गयी है कि वह जो प्यास है धर्म की तरफ जाने की, वह क्षीण हो गयी है, उसका बोध विलीन हो गया है, उसका ख्याल मिट गया है । ख्याल चीजो को देखकर पैदा होते हैं । विचार और आकाक्षाए बाहर घटनाए घटें तो हमारे भीतर अनुप्रेरित होती है ।

जब महावीर जैसा व्यक्ति गाव से निकलता होगा और उनके आनन्द को और उनकी शान्ति को, उनके प्रकाश को जब लाखो लोग देखते होगे, तो स्वाभाविक था कि यह प्यास उनके भीतर पैदा होती हो कि ऐसी शान्ति और ऐसा आनद हमे कैसा उपलब्ध हो । मैं आपको कहू कि महावीर या बुद्ध या उस तरह के व्यक्ति किसी को कोई उपदेश नही देते हैं । उनका उपदेश एक ही है । वह बहुत गहरा है, और वह यह है कि जब वे आपके करीब से निकलते हैं, तो आपके भीतर एक प्यास को तड़पाकर जगा देते हैं । उनकी शिक्षाओ का उतना मूल्य नही है । इसलिए शिक्षाए तो सब किताबो मे लिखी हुई हैं, उनका आप पर कोई असर नही होता । इसलिए दुनिया से जब भी कोई शिक्षक मिट जाता है, उसकी शिक्षाए तो मौजूद होती हैं, लेकिन उनका कोई अर्थ नही रह जाता । क्योकि शिक्षक की खूबी शिक्षाओ मे नही थी । शिक्षक की खूबी थी आपके भीतर प्यास को जगा देने मे । कोई मुर्दा शिक्षा उसको नही जगा सकती । केवल जीवित व्यक्ति ही उसे पैदा कर सकते है ।

कल्पना मे भी अगर आप ख्याल करे महावीर का—अगर कल्पना मे भी विचार उठे कृष्ण का, क्राइस्ट का, तो आपके भीतर क्या होगा ? आपके भीतर यह होगा कि आपको लगेगा कि अगर हड्डी-मास की इस देह मे यह सभावना हो सकती थी, यह सौदर्य फलित हुआ है, तो क्या मेरे हड्डी-मास दूसरे ढग के बने हुए है ? क्या महावीर के हड्डी-मास किसी विशेष ढग के बने हुए हैं ? कुछ ऐसे नासमझ है, जो कहेगे कि वे विशेष ढग से बने हुए है ! कुछ ऐसे नासमझ हैं जो कहेगे उनके शरीर मे खून ही नही है, दूध भरा हुआ है ! लेकिन मैं आपको कहू, उनके शरीर मे बिलकुल वैसा ही खून है, जैसा आपके शरीर मे हैं । और उनकी हड्डिया बिल्कुल वैसी ही नश्वर हैं, जैसी आपकी हैं । यह मैं इसलिए आपको कहना चाहता हू, ताकि आप यह न भूल जाए कि महावीर होना आपकी भी

संभावना है। अगर महावीर के शरीर मे दूध रहता हो खून की जगह, तो फिर आप महावीर नहीं हो सकते। अगर महावीर की काया वज्र-काया हो, तो फिर आप महावीर नही हो सकते। कमजोर लोग जो दो चार दिन मे सतायें जाते हों, वे महावीर कैसे होगे। उन नासमझो ने यह प्रचार किया की महावीर की काया वज्र-काया थी। और जिन्होने यह प्रचार किया कि उनका शरीर कोई दूसरे नियम पालता था, उन्होंने सारी दुनिया को महावीर से वंचित कर दिया। मेरी बात हो सकती है ऐसा लगे कि मैं महावीर को नीचे उतार रहा हूं ? मैं महावीर को एक सामान्य आदमी बना देना चाहता हू, ताकि सामान्य आदमियो के वे काम के हो जाय। जो सीढी आप तक न पहुची हो, वह आपको आकाश तक कैसे ले जायेगी ? वह सीढी उपर उठा सकती है, जो मेरे पैर तक आती हो। अगर महावीर को अपना सिर बनाना है, और महावीर की ऊचाई तक उठना है, तो महावीर की सीढी आप तक आनी चाहिए।

एक गलती हुई पीछे सदियो मे, आदर और श्रद्धा के मोह मे हमने इन सारे लोगो को अलौकिक बना दिया। हमने महावीर को, बुद्ध को भगवान बना दिया और उनको कहा कि वे अलौकिक पुरुष है ! हमने अपने प्रेम मे ये बाते कही, लेकिन हमें पता न रहा कि यह प्रेम महगा पड जायेगा। और यह प्रेम महगा पड गया। अब हम उनकी श्रद्धा करते हैं और आदर करते हैं, लेकिन कभी यह आकाक्षा हमारे भीतर पैदा नही होती कि हम महावीर बन जाये। और अगर मैं आपसे यह कहू कि मेरे मन मे आकाँक्षा पैदा हो कि मैं महावीर बन जाऊ, तो अनेको को तो ऐसा लगेगा कि यह बात तो नास्तिकता की हो गयी, अनेको को तो ऐसा लगेगा कि यह महावीर का अपमान हो गया।

मैं आपको कहू, अगर इसमे महावीर का अपमान भी होता हो, तो भी मै तैयार हू। क्योकि महावीर का कोई क्या अपमान कर सकेगा। मान-सम्मान के जो पार निकल गये हो, उनका कोई अपमान नही कर सकता। लेकिन आपका सम्मान जरूर कर सकता हू। महावीर के अपमान मे भी अगर आप सम्मानित होते हो, और क्षुद्रतम मनुष्य अगर महावीर के अपमान से सम्मानित होता हो तो हम महावीर का अपमान करने को तैयार हैं—उस क्षुद्रतम मनुष्य को ऊपर उठाने के लिए, उसे महावीर तक पहुचाने के लिए।

महावीर आप जैसे व्यक्ति है—आप ही जैसे व्यक्ति हैं। लेकिन एक दिन आया कि वे आप जैसे बिलकुल नही रह गये। वे बिलकुल आप ही जैसे हड्डी-मास

के बने हुए व्यक्ति हैं. लेकिन एक वक्त आया कि उनके भीतर एक ऐसी आत्मा का उदय हुआ, जो अलौकिक है। देह तो आपकी थी, आत्मा आपकी नहीं थी। देह तो बिल्कुल आपकी थी, आत्मा महावीर की आपकी नहीं थी। और इसलिए एक रास्ता है। कम से कम देह के तल पर आप महावीर के साथ खड़े हैं। कम से कम देह के तल पर आप महावीर के साथी और मित्र हैं। और अगर देह के तल पर साथी और मित्र है, तो क्यो न आत्मा के तल पर मित्र होने की आकांक्षा पैदा होगी ? अगर बीज के तल पर हम समान हैं—अगर एक वट-वृक्ष के पास पड़ा हुआ एक वट का बीज यह सोचे कि मैं महान हू इस वृक्ष से, क्योंकि यह वृक्ष भी बीज था और मैं भी बीज हूं। अगर उसे यह पता चले कि इस विराट वृक्ष के भीतर भी वे ही तत्व विराजमान हैं, जो मेरे भीतर विराजमान हैं, जो इसके भीतर जाग गया है, वह मेरे भीतर सोया हुआ है, तो उस बीज के भीतर प्यास पैदा होगी।

प्यास तब पैदा होगी, जब सभावना सभावित दिखायी पडे।

हमने सारे इन पुरुषो को लोकोत्तर बनाकर बिठा दिया है, और तब हमारे भीतर प्यास क्षीण हो गयी। हमने अपने हाथो और अपने पैरो पर कुल्हाडी मारी है। हमने आदर और श्रद्धा मे ऐसी बाते गढ ली है, जिनके कारण हम खुद अपने ही उन प्यारे लोगो से वंचित हो गये है, जो हमारे हृदय की धडकन बनने चाहिए थे।

मैं आपको कहू, महावीर को भगवान बाद मे कहना, पहले महावीर को अपना मित्र, साथी, सहयोगी और पडोसी कहे। उन्हे निकट समझे, ताकि उस दूर तक उठना आपके लिए सम्भव हो जाय, जहा तक वे पहुचते हैं। ये तीन बात मैं आप से कहना चाहता हू, और इन बातो के आधार पर ही यह सम्भव होगा कि कुछ महावीर के संबध मे कहू, जो आप समझ सके।

पहली बात मैंने आप से यह कही कि आप के जन्म से आप का धर्म तय नही होता, उसके लिए कुछ और करना होता है। अगर महावीर का जीवन देखे, अगर उनकी उत्कट आकांक्षा और अभीप्सा का जीवन देखे, अगर उनकी साधना और प्यास का जीवन देखे—तो महावीर क्या कर रहे हैं ? महावीर क्या कर रहे हैं ? महावीर केवल एक उपाय कर रहे हैं—महावीर की पूरी साधना एक बात की है कि उनके भीतर बर्द्धमान की मृत्यु हो जाय, ताकि महावीर का जन्म हो सके। अगर धर्म जन्म से मिलता होता, तो महावीर को भी मिल गया होता।

फिर बारह वर्ष की उत्कट तपश्चर्या मे जाना नासमझी होती। फिर अपने जीवन को गलाना और बदलना पागलपन होता। फिर अपने रत्ती-रत्ती को जलाना और उस दुर्गम अकेली चढाई पर चढना—हम कैसे समझा पाते कि ठीक है ? लेकिन महावीर जानते हैं कि धर्म जन्म से उपलब्ध नही होता।

धर्म सकल्प से उपलब्ध होता है।

धर्म श्रम से उपलब्ध होता है—अपनी मेहनत से, अपने श्रम से। इसलिए महावीर की परपरा श्रमण परपरा कहलायी। श्रमण का अर्थ है, धर्म किसी भी भाति सिवाय श्रम के और उपलब्ध नही होता। उतना ही उपलब्ध होता है, जितना हम श्रम करते हैं। उससे ज्यादा नही। कोई प्रसाद नही मिल सकता भगवान की तरफ से। कोई गुरू का आशीर्वाद कुछ नही कर सकता। किसी प्रार्थना, किसी स्तुति से धर्म नही पाया जा सकता।

यह बडी अद्भुत बात थी। लेकिन हम ऐसे नासमझ हैं कि जिन महावीर ने यह कहा कि स्तुति से धर्म नही पाया जा सकता, प्रार्थना से धर्म नही पाया जा सकता, भगवान के प्रसाद से धर्म नही पाया जा सकता, धर्म किसी से भिक्षा मे नही पाया जा सकता—जिन्होने यह कहा, उनके भक्त उन्ही की ही मूर्तियो के सामने हाथ जोडे खडे हुए हैं! और उनसे प्रार्थना कर रहे हैं कि वे कुछ दे दें! जिन्होने कहा, कुछ भी नही दिया जा सकता, जो भी लेना हो, छीनना होगा, जो लेना होगा पराक्रम से—अपने पराक्रम से पाना होगा। यह बडे गौरव की बात उन्होने कही। मनुष्य के सम्बन्ध मे बडे गौरव की, बडी गरिमा की बात उन्होने कही। इससे बडा सम्मान मनुष्य का कभी नही हुआ है।

अगर मुझसे कोई कहे कि हम तुम्हे यह सत्य दिये देते हैं, तुम्हे कुछ न करना पडेगा, तो मैं उससे कहूगा, ऐसे सत्य को मैं लूगा कैसे! जिस सत्य के लिए मुझे कुछ न करना पडा हो, उसे केवल नपुसक स्वीकार कर सकेंगे, पुरुषार्थहीन स्वीकार कर सकेंगे। जिनकी जीवन की सारी ऊर्जा बुझ चुकी है, वे स्वीकार कर सकेंगे। और ऐसा उधार भिक्षा मे पाया गया सत्य क्या जीवन्त हो सकता है ? क्या ऐसी चीज जीवन का प्रकाश और ज्योति से भर सकती है ?

महावीर ने कहा, सत्य कही भिक्षा से नही मिलेगा, सत्य के लिए तो आक्रमण करना होगा। सत्य के लिए भिक्षा नही, क्षत्रिय होना पडेगा।

आज तक जगत मे जिन्होने भी सत्य को पाया, उन सबको क्षत्रिय हो जाना पडा। क्षत्रिय का अर्थ होगा। अपने श्रम की बदौलत, अपने पराक्रम से, अपनी

चेष्टा से पाना होगा। इसलिए महावीर की परम्परा श्रमण परम्परा कहलायी। इसलिए महावीर उद्घोषक कहलाये इस अद्भुत मानवीय गरिमा के। उन्होंने मनुष्य को इस बात का स्वाभिमान दिया कि तुम सत्य को मांगो मत सत्य को जीतो।

सत्य को मागो मत, सत्य को जीतो।

सत्य के लिए स्तुतिया मत करो, सत्य के लिए सघर्ष करो।

सत्य के लिए लड़ो, सत्य के लिए अपना बलिदान दो, सत्य के लिए अपने को समर्पित करो। जिस मात्रा मे जो अपने को देने के लिए राजी होगा, उसी मात्रा मे सत्य पर उसका अधिकार सुनिश्चित हो जायेगा। इस बात को महावीर ने तपश्चर्या कहा।

तपश्चर्या का अर्थ है इच-इच अपने को देना,* सत्य को पाने के लिए। जिस दिन व्यक्ति अपने को समग्रतया देने मे समर्थ हो जाता है, उस दिन वह समग्र सत्य को उपलब्ध भी हो जाता है। अपने को देना और सत्य को पा लेना, एक ही सिक्के के दो पहलू है। इसलिए सत्य की फिक्र छोड दे कोई आदमी, अपने को देने की फिक्र कर ले।

अपने को देने का मतलब क्या है?

क्या आप सोचते है, घर-बार छोडकर भाग जाये, तो आपने अपने को दिया? क्या आप सोचते हैं कि पत्नी और बच्चो को छोडकर भाग जाये, तो आपने अपने को दिया? क्या आप सोचते हैं, अपनी सपत्ति और पद छोडकर चले जाये तो आपने अपने को दिया?

यह अपने को देना नही है। क्योकि पद का क्या मूल्य था, धन का क्या मूल्य था? धन का मूल्य था कि उससे मेरी अहता तृप्त होती थी। पद का मूल्य था कि मेरा अहकार उससे बलिष्ट होता था। अगर धन को छोडकर मेरे मन मे त्याग का अहकार पैदा हो गया हो, तो धन छोडना व्यर्थ हो गया। अगर पद को छोडकर मेरे मन मे त्यागी होने का दम्भ पैदा हो गया हो, तो पद को छोडना व्यर्थ हो गया।

पद को और धन को छोडने की बात नही है, बात तो अहता को छोडने की है। जो अहता को छोडता है, वह अपने को छोडता है। और जो अहता के अतिरिक्त कुछ भी छोडता हो, उसका छोडना सब फिजूल है, क्योकि उस छोडने मे भी उसकी अहता फिर बलिष्ट हो जायेगी। जो धन से प्रगाढ होती थी, वह

धन के त्याग से प्रगाढ हो जायेगी। और जो अहकार रास्तो पर चलता था कि मेरे पास इतना है, वही अहकार कल फिर रास्तो पर चलेगा कि मेरे पास कुछ भी नही है। लेकिन मैं, 'मैं' उसमे उतना ही मौजूद होगा।

मैंने सुना है, एक बादशाह अपने बचपन मे एक स्कूल में पढ़ता था। उसके साथ एक मित्र था। बाद मे वह मित्र फकीर हो गया, नग्न फकीर हो गया। उसने सब छोड दिया। बादशाह भी युवा हुआ, गद्दी पर बैठा। उसने दूर-दूर के राज्य जीते और अपने साम्राज्य को विस्तीर्ण किया। राजधानी नवीन बनायी। वैभव की दूर-दूर तक उसकी पताकाए फहरी। और तब एक दिन उस पुराने मित्र फकीर का नगर मे आगमन हुआ, राजधानी मे आगमन हुआ। राजा ने कहा, मेरा मित्र आता है। सब त्याग करके आ रहा है, बहुत उसकी उपलब्धि है। हम उसका स्वागत करें और शाही सम्मान दे।

उसने सारे नगर को सजवाया और जिस सध्या उसका प्रवेश होना था, उसने सारे नगर मे दीपावली मनवायी। रास्तो पर कालीन बिछवाये, जहा से, वह गाव मे प्रवेश करेगा। राजा खुद अपने दरबारियो को लेकर द्वार पर स्वागत करने गया।

यह सारा स्वागत का इन्तजाम चलता था, कुछ लोगो ने उस फकीर को जाकर कहा, राजा अपना धन दिखलाना चाहता है। राजा अपनी सपत्ति और वैभव दिखलाना चाहता है, इसलिए सारी राजधानी को सजा रहा है, ताकि तुम्हे हतप्रभ कर सके, ताकि तुम्हे दिखा सके कि तुम क्या हो, अकिचन दरिद्र! नगे भिखारी! उस फकीर ने कहा, अगर वह दिखलाना चाहता है अपनी सपत्ति अपना वैभव, तो हम भी उसे कुछ दिखला देगे। सुनने वाले हैरान हुए। फकीर के पास दिखलाने को क्या था! सिवाय नगे शरीर के उसके पास कुछ भी नही था, लेकिन उसने कहा, हम भी दिखला देगे!

और जिस दिन नगर मे उसका प्रवेश हुआ, उन बहुमूल्य ईरानी कालीनो पर जब वह आकर चला तो लोग देखकर हैरान हुए। दिन तो अभी वर्षा के न थे, लेकिन उसके पैर घुटने तक कीचड से भरे थे! वह नगा फकीर कीचड से भरा हुआ था और कीचड भरे पैरो से उन कीमती कालीनो पर चलता रहा। राजा को, सब को हुआ कि ये पैर इतने कीचड मे कैसे भर गये! महल की सीढियो पर चढते वक्त राजा से नही रहा गया। और उसने पूछा कि मित्र, क्या मैं यह पूछू कि ये पैर इतने कीचड से कैसे भर गये है? उस फकीर ने कहा कि

अगर तुम कालीन बिछाकर रास्तो पर अपना वैभव दिखलाना चाहते हो तो हम फकीर हैं, हम उस पर कीचड भरे पैर चलकर अपनी फकीरी दिखला देंगे। उस बादशाह ने कहा, मैं तो सोचता था कि हममे तुममे कोई फर्क पड गया होगा। लेकिन हम पुराने मित्र है और कोई फर्क नही पडा। तुम भी वही हो, जहा मैं हू। तुमने छोडकर भी उसी दम्भ को तृप्त किया है, जिसे मैं पाकर तृप्त कर रहा हू।

इसलिए सवाल छोडने का नही है। और पकडने का भी नही है। इसलिए सवाल स्वय को देने का है, छोडने—पकडने का बिल्कुल भी नही है। सपत्ति को देने का नही है, स्वत्व को देने का है।

महावीर की जो साधना है, वह सपत्ति छोडने की नही, स्वत्व को छोडने की है। स्वत्व छूटता है तो सपत्ति अपने आप छूट जाती है। जो सपत्ति छोडते है, उनका स्वत्व जरूरी रूप से नहीं छूटता।

महावीर की साधना स्वय को विलीन और विसर्जित कर देने की है।

महावीर का कहना यह है कि जिसका अहकार मर जाएगा, अहकार की मृत्यु पर उसे आत्मा के दर्शन होगे। जब तक अहकार है तब तक आत्मा का कोई दर्शन नही है। जो आत्मा को जानना चाहता हो, उसे 'मैं' का, 'मै' के भाव को विसर्जित और विलीन कर देना होगा।

'मै' की बदलियो के पीछे आत्मा का सूरज छिपा है।

और जब तक 'मैं' की बदलिया घिरी रहे, तब तक आत्मा के सूरज के दर्शन नही होगे। इसलिए महावीर की समस्त साधना 'मैं' को छोड देने की साधना है। सब तरफ से, सब उपायो से यह भाव छूट जाय कि मैं सब कुछ हू'।

जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण को पा लेता है।

और जो सब छाडकर नग्न खडा हो जाता है, रिक्त और खाली, वह इस सारे, समस्त सृष्टि के रहस्य का मालिक हो जाता है।

'मैं को छोडना महावीर का बुनियादी आधार है।

आपने सुना हागा कि महावीर की शिक्षा अहिंसा की है। और मै आप का यह कहू कि अहिंसक केवल वही हाता है, जिसके भीतर 'मै-भाव' विलीन हो जाता है।

'मैं' ही एकमात्र हिंसा है, अहंकार है।

यह बोध कि 'मैं' कुछ हू, यह एकमात्र हिंसा है। हिंसक में और कुछ भी नही है, 'मैं' की प्रगाढ़ता है।

अहिंसक मे क्या है?

'मैं' की शून्यता है, 'मैं-भाव' का विलीन हो जाना है।

आज दोपहर ही मैं एक साधु की बात करता था। वहां दूर चीन मे एक साधु हुआ। वह जब अपने गुरू के आश्रम पर गया तो उसके गुरू ने आख उठाकर उसको देखा। गुरु के देखते ही उसे खुशी हुई कि गुरु ने मुझे देखा, मुझे स्वीकार किया, मुझे इज्जत दी। लेकिन जैसे ही उसके मन मे यह ख्याल उठा कि गुरु ने मुझे स्वीकार किया, मुझे देखा, मुझे इज्जत दी, वैसे ही गुरू की आखे नीचे झुक गयी और बन्द हो गयी। उसे तीन वर्ष तक गुरू ने फिर आख उठाकर नही देखा, वह बहुत हैरान हुआ कि उससे क्या भूल हो गई? उसने अपने किसी मित्र साधु को पूछा कि मुझसे क्या भूल हो गयी---गुरू ने मुझे देखा था, मै प्रसन्न हुआ और उस दिन से उनकी आखे नीचे झुक गई? उसके मित्र ने कहा मत घबडाओ। उनके देखने से तुम्हारे 'मैं-भाव' मे सजगता आयी होगी, इसलिए उन्होने फिर नही देखा। क्योकि तब तो देखना पाप हो जायेगा। तुम्हारा 'मै' प्रगाढ होगा उनके देखने से कि गुरु मेरी ओर देखते है, तो पाप हो जायेगा। इसलिए गुरु तुम्हारी ओर नही देखने है। तुम उस दिन उनकी आख के योग्य बनोगे---जब उनकी आख तुम्हे देखे, लेकिन तुम्हे कुछ भी पता न पडे।

ऐसे तीन वर्ष बीते। एक दिन बगीचे मे गुरु ने न केवल देखा, बल्कि उसे देखकर हसे और मुस्कुराये भी। उसे पहले जैसा बोध तो नही हुआ अहकार का, लेकिन एक आश्चर्य का भाव आया कि आज वह क्यो तीन साल के बाद हस रहे हैं। जैसे ही उसे यह भाव आया, गुरु की हसी विलीन हो गयी और आखे नीचे की नीचे झुक गयी। उसने किसी को पूछा कि यह क्या हुआ? वह मुस्कुराये थे, फिर मुस्कुराहट वापस चली गयी। जिससे पूछा था, उसने कहा, उनकी मुस्कुराहट से अगर तुम्हारे भीतर कुछ भी हुआ हो, अगर आश्चर्य भी पैदा हुआ हो, अगर जिज्ञासा भी आयी हो, तब भी तुम अभी बाहर की बातो से कपित होते हो। अभी बाहर की बाते तुम्हारे भीतर स्पन्दन पैदा करती हैं। इसलिए गुरु ने डर कर अपनी मुस्कुराहट वापस ले ली होगी। वे तो तब मुस्कुरायेगे, जब उनकी मुस्कुराहट तुम्हारे भीतर कोई फर्क पैदा न करे।

ऐसे तीन वर्ष और बीते और तीन वर्ष बाद उसके गुरु ने उसे रास्ते में पकड़ा और गले लगाया और उसे पास बिठाया और उसके गुरु ने कहा, आज मैं प्रसन्न हू । आज जब मैंने तुम्हें गले लगाया तो तुमने ऐसे देखा कि मैं शायद किसी और को गले लगा रहा हू । उसके गुरु ने कहा, आज मैं प्रसन्न हू । जब मैंने तुम्हें गले लगाया तो तुमने मुझे ऐसे देखा, जैसे मैं किसी और को गले लगा रहा हू । और अभी जब मैं तुमसे बाते कर रहा हू, तुम ऐसे सुन रहे हो, जैसे मैं किसी और से बातें कर रहा हू । अब तुम हवा-पानी की तरह हो गये हो । अब तुम्हारे भीतर जो 'मैं' की कठिनाई थी, काठिन्य था, वह विलीन हो गया । अब तुम्हारे भीतर 'मैं' का पत्थर चला गया । अब तुम तरल हो गये, अब तुम सरल हो गये । अब प्रभु का तुम्हे साक्षात निकट है ।

जो 'मैं' की कठिनता को छोड देते हैं, वे ही साधुता को और सरलता को उपलब्ध होते है ।

महावीर ने उस मैं–शून्य, सरलता को ही अहिंसा कहा है ।

महावीर का अहिंसा से प्रयोजन दूसरे को दुख देना, न देना नहीं है । महावीर की बात बहुत गहरी है । वे यह कहते है, जिसके भीतर 'मैं-भाव' है, वह चाहे, न चाहे, उससे दूसरो को दुख मिलेगा । वह न भी हिंसा करे, तो भी उससे हिंसा होगी । उसकी वाणी मे, उसके चलने मे, उसके उठने मे हिंसा होगी । उसके भाव मे, उसके विचार मे हिंसा होगी, उसके स्वप्नो मे हिंसा होगी । तो महावीर कहते है, जो मूलत. अहिंसक होना चाहता हो, उसे दूसरे को दुख देने, न देने का प्रश्न नही है, उसे अपने भीतर 'मैं' को विलीन कर लेने का प्रश्न है । जब 'मैं' शून्य हो जायेगा, तब दूसरे को दुख देना असभव हो जायेगा ।

और यह भी स्मरण रखे कि जिस दिन दूसरे को दुख देना आपको असभव हो जायेगा, उसी दिन—ठीक उसी दिन दूसरा भी आपको दुख देने मे असमर्थ हो जायेगा । जैसे वृक्ष जितने ऊचे जाते हैं उतनी ही गहरी उनकी जडे होती हैं । वृक्ष की ऊचाई जितनी ऊपर होती है, उतनी ही गहरी उसकी जडे होती है । जितना ऊपर वृक्ष विकसित होता है, उतना ही भीतर गहरा होता है । जितना लबा वृक्ष होगा, उतनी लबी उसकी जडे होगी । ऐसे ही जो व्यक्ति दूसरो के जीवन मे जितने दूर तक दुख पहुचाता है, उतने ही दूर तक उसके जीवन मे भीतर, गहरे दुख पहुच आता है । बाहर हम जितना दुख फैलाते हैं, उतनी ही गहरी दुख की जडे हमारे भीतर पहुच जाती है । जो व्यक्ति बाहर दूसरो को दुख

पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है, उस वृक्ष के कट जाने पर उसकी जड़ें भी विलीन हो जाती हैं।

अगर जीवन मे आनन्द पाना हो तो महावीर कहते हैं, दूसरो को दुख देने मे असमर्थ हो जाओ तो आनन्द को उपलब्ध हो जाओगे। अभी तो हम आनन्द पाने मे दूसरो को दुख देने की फिक्र ही नही करते, बल्कि, शायद आनन्द पाने में दूसरो का दुख देने को भी सीढिया बना लेते हैं। महावीर कहते हैं, ऐसा व्यक्ति कभी आनन्द को उपलब्ध नही होगा। ऐसा व्यक्ति कितनी ही आनन्द की खोज करे, वह जितना दुख दूसरो मे व्याप्त करता रहेगा, उतना ही गहरा दुख उसके भीतर प्रविष्ट होता चला जायेगा। इसे महावीर कर्म-बन्ध कहते हैं।

जो दुख देगा, वह दुख पाने के कर्म बाध लेगा।

लेकिन उनकी बुनियादी शिक्षा यह नही है कि दूसरो को दुख देने से बचो। उनकी बुनियादी शिक्षा यह है कि उस जड को काट दो, जिसके कारण दूसरो का दुख देने की मजबूरी ऊपर पडती है। और वह जड 'मैं' की है।

धर्म 'मैं' की मृत्यु चाहता है।

जिसका 'मै' मर जाता है, वही केवल धार्मिक होता है। इसलिए मैंने कहा, जन्म से धर्म का सबध नही है। मृत्यु से धर्म का सबध है। जब हमारा 'मै' मर जायेगा, तो हम धर्म से सबधित होगे। इसलिए जो धर्म मे जाने को उत्सुक हो उन्हे मरने को तैयार होना चाहिए।

मरने से मेरा अर्थ समझे—मरने को तैयार होना चाहिए? उन्हे उस 'मैं' को, जिसे हम सजाते और सवारते हैं, जिसे हम जीवन भर चेष्टा करते है, सतुष्ट करने की, उसे छोडने का साहस चाहिए। इसलिए धर्म इस जगत मे सबसे बडा दुस्साहस है।

हम क्या देखते हैं लेकिन?

हम देखते है, बूढे, मरणासन्न, धार्मिक होने मे उत्सुक होते हैं!

धार्मिक होना हो तो अतिम दिन की प्रतीक्षा न करे। धार्मिक होना हो तो जब शक्तिया परिपूर्ण हो और जब जीवन ऊर्जा से भरा हो और जब दुस्साहस करने का साहस हो, तब कूद पडे। इसमे भी महावीर ने क्राति की। पुराना धर्म यह कहता था कि धर्म अतिम चरण है जीवन का। चार आश्रमो मे विभक्त है जीवन। तीन आश्रम व्यतीत करो, चतुर्थ आश्रम मे जब सब जीवन विलीन हो जाय, तब वृद्धावस्था मे धर्म की साधना करो!

महावीर ने इसमे भी क्रान्ति की, और महावीर ने कहा, धर्म की साधना करनी है, तो जब युवा हो, जब सारा बल और पराक्रम साथ है, सारा वीर्य और ओज साथ है, तब सलग्न हो जाओ।

धर्म बुढ़ापे की दवा नहीं है, धर्म युवा होने का दुस्साहस है।

इसलिए स्मरण रखे शक्ति के क्षीण होने की प्रतिक्षा न करे। धर्म मरतो की सान्त्वना और आश्वासन नहीं है, धर्म जीवितो की दुस्साहसपूर्ण साधना है। जब शक्ति और ऊर्जा मालूम हो, जितनी मालूम हो, उसके क्षीण होने की प्रतीक्षा न करे, उसे सलग्न करे, उसे उपाय में लगायें, उसे सयोजित करे और जीवन को अनुशासित बनाये तो सभावना हो सकती है कि एक दिन क्रमश अपने 'मैं-भाव' पर चाट करते-करते 'मैं' विलीन हो जाय। सतत जागरूक रहकर, अपनी समस्त क्रियाओ मे यह बोध रखते हुए कि मेरा 'मैं' तो काम नही कर रहा है, मेरा अहकार तो काम नही कर रहा है, मेरी अहता तो तुष्ट नही हो रही है? जो ऐसा विवेक और अप्रमतता को साधता है, वह धीरे-धीरे 'मैं' की बदलियो को मुक्त और उनको विसर्जित करने में समर्थ हो जाता है। और तब उसे उस सूरज का बोध होता है, जिसे हम धर्म कहते है। धर्म इसलिए ग्रन्थो मे नही है—'मैं' के पीछे छिपा है, ग्रन्थो के शब्दो के पीछे नही। धर्म महापुरुषो की वाणी मे नही छिपा है, अपने ही 'मैं'की ओट मे छिपा है। जो उसे वाणियों मे खोजते रहते है, वे पण्डित होकर समाप्त हो जाते है। जो उसे अपनी 'मैं की ओट मे खोजते है, वे जीवन मे उस सत्य को पाते है, जिसे हम साधुता कहते हैं, जिसे हम सन्यास कहते हैं, जिसे हम ज्ञान कहते हैं और जिसे हम अन्त मे मोक्ष कहते है।

यदि मुक्त हाना है तो एक ही बधन है जिससे मुक्त होना है—और वह बन्धन 'मैं-भाव का है। और यही बधन हिसा है।

'मैं-भाव हिसा है। 'मैं-भाव' का शून्य हो जाना अहिसा है।

इसलिए महावीर ने अहिसा को परम-धर्म कहा है। एक ही बात कही कि अहिसा परम-धर्म है। इस अर्थो मे परम-धर्म है—जो इसको ही साध ले ता शेष सब उसका अपने आप सध जाता है। इस अहिसा का जैन, हिदु, मुसलमान स क्या वास्ता है? इस 'मैं को छोडने से हिन्दू, मुसलमान, ,ईसाई का क्या वास्ता है? यह तो सार्वभूत, सार्वभौम, शाश्वत सत्य है। और धर्म का कोई सत्य किसी सप्रदाय के लिए नही है। इसलिए कृपा करे, महावीर से खुद मुक्त हो जाये और महावीर को अपने से मुक्त कर दे। न उन्हे संप्रदाय मे बाधे, न उनके सप्रदाय मे खुद बधे। उनका कोई सप्रदाय नही है।

अपने 'मैं' को विलीन करें, अपने अहंकार को विलीन करें और उसके माध्यम से अपनी हिंसा को छोड दें, अहिंसा को उपलब्ध हो। 'मैं' मृत्यु को पाये और तब आप पायेंगे, आप महावीर के हो गये, उस धर्म के हो गये, जो महावीर का है, उस धर्म के हो गये, जो सब महावीरो का है। वे महावीर चाहे क्राइस्ट के रूप मे कही पैदा हुए हो, चाहे कृष्ण के रूप मे पैदा हुए हो, चाहे आपके रूप मे कल पैदा हो जाये।

कुछ थोडी सी बाते आपके सबध मे कही, कुछ थोडी सी बाते महावीर के सबध मे कही। अन्त मे एक बात और आप से कह दू। जो मैंने कहा, कि प्यास नही है, उस प्यास का अगर नही जगाते है, तो अपने जीवन को व्यर्थ खो देंगे। लेकिन प्यास को कैसे जगायेंगे?

प्यास जगती है जीवन के अनुभव से। चारो तरफ आख खोलकर देखें—क्या हो रहा है? जब रास्ते पर एक आदमी मर जाता है, उसकी अर्थी निकलती है, तब आप उस अर्थी को देखते है, लेकिन सोचते नही। जो देखकर रह जाता है, वह अर्थी से जो सदेश मिल सकता था, उससे वचित हो जाता है। जो उसे सोचता है—जो उसे सोचेगा, वह थोडी देर मे पायेगा, अर्थी किसी और की नही, मेरी जा रही है। अगर कोई व्यक्ति सोचेगा तो पायेगा, अर्थी किसी और की नही, मेरी जा रही है—दस दिन बाद सही, लेकिन अर्थी मेरी जा रही है। और मैं जिस अर्थी मे कन्धा दिये हू—कन्धा देते वक्त अगर कोई सोचेगा तो पता चलेगा, दूसरे उसकी अर्थी को कन्धा दे रहे है।

अगर हम आख खोलकर अपने चारो तरफ देखे, तो यह ससार हमको धार्मिक बनाने को प्रतिक्षण तैयार है। अगर हम चारो तरफ व्याप्त दुख को देखे, अपने भीतर व्याप्त दुख को देखें, ससार मे भागते हुए प्राणियो को चारो तरफ देखे, तो सब बदल जायेगा।

एक फकीर हुआ, वह फकीर एक गाव के बाहर एक झोपडे मे रहता था। किसी आदमी ने उस गाव के भीतर प्रवेश करते हुए उस फकीर को पूछा कि मैं बस्ती का रास्ता जानना चाहता हू। उस फकीर ने कहा, अगर बस्ती का रास्ता जानना चाहते हो तो बाये तरफ मुड जाओ, थोडी दूर पर बस्ती मिल जायेगी। वह आदमी बायी तरफ मुडा और थोडी दूर जाकर उसने देखा कि वह कब्रिस्तान है। वह बहुत गुस्से मे वापस आया, वह लौटकर उस फकीर को कहा कि आप पागल मालूम होते है। वह बस्ती नही, कब्रिस्तान है। उसने कहा, और अगर

कब्रिस्तान जानना चाहते हो अब—इस तरफ चले जाओ, दायें तरफ। वहां गया, वहा बस्ती थी। वह सांझ को लौटा और उसने कहा, आप पहेलियां बुझाते हैं। उस फकीर ने कहा, हमने तो जैसा जाना, वैसा कहते हैं। वहां जो बसे है कब्रिस्तान में, सदा को बस गये हैं और यहा जो बसे मालूम होते हैं, वे सब कब्रिस्तान के रास्ते पर हैं, वे सब कब्रों के भीतर जाने की तैयारी में हैं। इसलिए अगर बस्ती को देखना है तो उधर देखो, अगर कब्रिस्तान को देखना हो तो इधर देखो।

और यह सच है। हम हंस रहे हैं, क्योंकि हमे लग रहा है कि यह फकीर ने किसी और से कहा था। यह फकीर आपसे ही कह रहा है। जो हस रहे हैं, उनसे ही कह रहा है। यह किसी और से कही हुई बात नही है। यह आपसे कही गयी है। और आप देखें, यहा बैठे हुए देखें चारो तरफ। अगर आपकी थोड़ी आख गहरी हो तो आप यहा मुर्दों को इकट्ठा हुआ पायेंगे। यहाँ सब मुर्दे हैं, ठठरिया अलग-अलग है। यहा सब मुर्दे हैं। मुर्दे होने के सबके शिड्यूल टाइम अलग-अलग हैं, बाकी सब मुर्दे हैं।

अगर जीवन को चारो तरफ हम देखे तो मृत्यु दिखायी पड़ेगी, दुख, पीडा दिखायी पडेगी। कुछ सार नही दिखायी पडेगा, असार दिखायी पड़ेगा। कुछ अर्थ नही दिखायी पडेगा, सब अनर्थ दिखायी पड़ेगा, व्यर्थ दिखायी पडेगा। उस बोध से प्यास पैदा होगी। उस बोध से लगेगा, अगर यह सब असार है, और यह सब व्यर्थ है तो सार क्या है, अर्थ क्या है? अगर यह सब व्यर्थ है तो सार्थक क्या है? और तब भीतर एक आकाक्षा सरकेगी, एक लपट पैदा होगी, और वह लपट आपको धर्म की तरफ ले जायेगी।

वह लपट प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पैदा हो, यही मेरी कामना है। वह लपट बहुत दुख देगी। वह लपट बहुत चिन्ता पैदा करेगी। वह लपट आपकी सारी शान्ति का खण्डित कर देगी। वह लपट आपके सारे सतोष को छीन लेगी। वह लपट आपकी नीद को छीन लेगी। वह आपको बेचैन कर देगी। और ईश्वर करे कि वैसी बेचैनी आपके भीतर पैदा हो जाय। और ईश्वर करे, आपकी सारी झूठी शान्ति खण्डित हो जाय और आप अशान्त हो जाय। और ईश्वर करे, आपके सारे सतोष के ढकोसले समाप्त हो जाय और आप इतने असतुष्ट हो जाय कि आपको कोई कूल-किनारा दिखाई न पडे।

जिस दिन मनुष्य को इस जगत मे कोई कूल-किनारा नही दिखायी पडता, जिस दिन मनुष्य को इस जगत मे कोई सहारा और आधार दिखायी नही पडता,

उस दिन वह पहली दफा भगवान के आधार को उपलब्ध होता है। जिसके जगत मे सब आधार और शान्तिया छिन जाती हैं, उसे धर्म की शरण पहली दफा उपलब्ध होती है, धर्म की शरण जाना हो तो जगत की शरण से मुक्त हो जाना जरूरी है। उससे प्यास पैदा होगी। और आज के इस पुनीत पर्व पर और इससे बेहतर मैं और कुछ नही प्रार्थना कर सकता। और मेरे हृदय मे सिवा इसके कोई बात उठती नही मालूम पडती और कोई काम मे आती नही मालूम पडती— और वह यही है, प्रभु करे, आप सबके हृदय प्यास से भर जाये। और आप सबके हृदय जगत का देख पाये, जगत के अर्थ को देख पायें, जगत की व्यर्थता को देख पाये ताकि आपके भीतर वह लपट पैदा हो जो जगत के पार और ऊपर उठाती है। वही लपट धीरे-धीरे व्यक्ति को सत्य तक और ज्ञान तक और मुक्ति तक ले जाने की सीढ़ी है।

आज इस पुनीत पर्व पर यही मेरी प्रार्थना और कामना है। मेरी इन बातो को इतने प्रेम और शान्ति से सुना है, इतनी प्यास से सुना है, इसलिए बहुत अनुगृहीत हू, बहुत ऋणी हू। उस अनुग्रह के धन्यवाद स्वरुप मेरे प्रणाम स्वीकार करे। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर बैठे हुए परमात्मा को मेरे प्रणाम।

चेबूर, बबई, १३ अप्रैल १९६५

अन्तर्दृष्टि की पतवार

अगर हम खाली आकाश को भी थोड़ी देर तक बैठकर देखते रहे, तो खाली आकाश आपको खाली कर देगा। अगर आप फूलो के पास बैठकर फूलो को थोड़ी देर देखते रहे, तो थोड़ी देर मे फूलो की गध और फूलो की वास आपके भीतर भर जायेगी। और अगर आप सूरज को थाडी देर तक बैठकर देखते रहे तो आप पायेगे, सूरज का प्रकाश आपके भीतर प्रविष्ट हो गया है। और अगर आप सागर की लहरो के पास बैठ कर उन्हे बहुत देर तक अनुभव करते रहे, तो आप पायेगे, सागर आपके भीतर लहरे लेने लगा है।

ऐसे ही, जब कोई परम-पुरुषो की स्मृति मे डूबता है, ऐसे ही जब कोई परम-पावन प्रतीक पुरुषो के स्मरण से भरता है, तो उसके भीतर कुछ परिवर्तित होने लगता है। कुछ बदलने लगता है, कुछ नयी बात का उसके भीतर प्रारभ हो जाता है। तो मैं इस आशा मे महावीर पर थाडी सी चर्चा करूगा कि इस थोड़ी सी देर के सान्निध्य मे, इस थोड़ी सी देर के उनके स्मरण मे, आपके भीतर कोई परिवर्तन हो, आपके भीतर कोई आदोलन उठे, आपके भीतर कोई आकाक्षा सजग हो जाय, आपके भीतर कोई बीज अकुरित होने लगे और आपके भीतर नये जीवन को, वास्तविक जीवन को पाने की आकाक्षा उत्पन्न हो जाय।

यह हो सकता है। यह प्रत्येक मनुष्य के लिए सभव है। प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर उन्ही सभावनाओ को लिए हुए है, जो महावीर मे हम परिपूर्णता पर पहुचा हुआ अनुभव करते है। जो महावीर के लिए विकसित हो गया है, वह हमारे भीतर बीज की भाति मौजूद है। इसलिए कोई अपने दुर्भाग्य को न कोसे और कोई यह न समझे कि हम असमर्थ है उतनी ऊचाइयो मे उठने मे। और

कोई यह न सोचे कि हमारा काम एक है कि हम महावीर की पूजा करे। महावीर की पूजा करना किसी का भी काम नही है। काम तो यह है कि हरेक महावीर बनने की तरफ विकसित हो। और महावीर की पूजा भी सार्थक है तो इसी अर्थों मे कि हम क्रमश उस पूजा के माध्यम से महावीर की तरफ, महावीर की भाति ऊचा उठने मे समर्थ हो जाए।

इसे स्मरण रखे कि कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा नही हुआ है। और अगर कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा हुआ हो, तो इससे बडा मनुष्य का अपमान क्या होगा ? हर मनुष्य महावीर बनने को पैदा हुआ है। कोई मनुष्य केवल पूजा करने को पैदा नही हुआ है। हर मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि जो एक जीवन मे विकसित हो सका है, वह प्रत्येक के जीवन मे विकसित हो जाय।

तो मैं तो ऐसे ही देखता हू—यहा इतने लोग इकट्ठे है, वे सब कभी न कभी महावीर हो जायेगे। मै ऐसे ही देखता हू—जितने लोग जमीन पर है, वे कभी न कभी सब महावीर हो जायेगे। अगर हममे से एक भी महावीर बनने से चूक गया—यह कैसे सभव हो सकता है ? अनत काल लग सकते है, अनन्त समय लग सकता है, लेकिन यह असभव है कि हममे से कोई भी महावीर बनने से चूक जाय। यह असभव है कि जो बीज हमारे भीतर है परमात्मा का, एक दिन परमात्मा न हो जाय। वह एक दिन परमात्मा होगा। यह हो सकता है कि महावीर मे और आपके महावीर बनने मे हजारो वर्ष का फासला हो जाय। यह हो सकता है कि महावीर के महावीर बनने मे और आपके महावीर बनने मे अनन्त जन्मो का फासला हो जाय। लेकिन इसमे कोई बहुत अन्तर नही पडता है। इससे कोई भेद नही पडता है। अनन्त यह काल है, इसमे हजारो वर्षों से भी कोई फर्क नही पडता है। अनन्त यह काल है, इसमे अनन्त जन्मो से भी कोई फर्क नही पडता है।

तो महावीर का स्मरण मुझे इसलिए आनद से भर देता है कि वह जो हमारे भीतर महावीर की सभावना है, उसका स्मरण है। महावीर का विचार करना इसीलिए सार्थक है, उपयोगी है कि उसके माध्यम से हम उस सभावना के प्रति सजग होगे, जो हमारे भीतर सोयी हुई है और कभी जाग सकती है। अगर आपके भीतर उनका विचार उनके जैसे बनने का भाव पैदा न करता हो, तो उनका विचार व्यर्थ हो जाता है।

आज की सुबह मैं आपको यह कहना चाहूगा कि महावीर की पूजा भी न करे—महावीर बनने की आकाक्षा के बीज अपने भीतर बोये और यह सकल्प

अपने भीतर पैदा करे कि मै उन जैसा बन सकू। और इसमें, इस आकाक्षा मे, इस सकल्प मे जो भी सहयोगी हो, जो भी इसकी भूमिका बनाने मे समर्थ हो, उस भूमिका को, उस आचरण को, उस विचार को, उस जीवन-चर्या को अगीकार करें।

मैं ऐसा भी देखता हू, दुनिया मे दो तरह के महापुरुष हुए है। एक महापुरुष वे हैं, जिन्होने बहुत बडे–बडे विचार दिये। दूसरे महापुरुष वे हैं, जिन्होने बहुत बडा आचरण दिया है, बहुत बडी चर्या दी है। महावीर पहले तरह के महापुरुष नही हैं। महावीर दूसरे तरह के महापुरुष हैं, जिन्होने बहुत महान चर्या दी है। एक बहुत बडा आचरण दिया है, एक जीवन दिया है। निश्चित ही बडे विचार देना उतना मूल्य का नही है, जितना बडा जीवन देना है। निश्चय ही बहुत बडे चिन्तन को जन्म दे देना उतना मूल्य का नही है, जितना महान चर्या को जन्म दे देना है। विचार तो स्वप्न की भाति हैं। विचार का तो कोई मूल्य नही है, वह तो पानी पर खीची गयी रेखाओ के समान हैं। चर्या का कोई मूल्य है, चर्या पत्थर पर खीची गयी रेखा है। महावीर, जो हमारे स्मरण से विलीन नही हाते हैं, उसका कारण है। हमारे हृदय पर उनकी चर्या ने एक लकीर खीच दी है—उनके आचरण ने, उनके जीवन ने।

महावीर को विचारक न कहे। महावीर विचारक नही हैं। महावीर एक साधक और सिद्ध हैं। साधक और विचारक मे यही अन्तर है। विचारक सोचता है, सत्य क्या है? साधक जीता है।

विचारक सत्य के सम्बन्ध मे सोचता है, साधक सत्य को जीता है।

हमने अपने इस देश मे विचारको की बहुत कीमत नही मानी। बहुत बडे बडे विचारक हुए है, जिन्होने बडी दूर की बाते कही हैं—सृष्टि की, सृष्टि के बनने की, परमात्मा की, स्वर्ग की, नर्क की, बडी-बडी विचार की बातें कही है। महावीर इन विचारको मे से नही है। महावीर बहुत शुभ्र भूमि पर खडे हुए हैं। वे अपनी सारी चर्या को बदल रहे है। और मैं इस बात को भी आपको कह दू कि जो व्यक्ति मात्र विचार करता है, वह सत्य के सम्बन्ध मे विचार करता है। और जो व्यक्ति जीवन मे सत्य को उतारता है और आचरण करता है, वह सत्य के सबध मे विचार नही करता, वह आनन्द के सबध मे साधना करता है।

महावीर सत्य के खोजी नही है महावीर आनन्द के खोजी हैं।

सत्य का खोजी एक दार्शनिक होता है, एक तत्वचिन्तक होता है। आनन्द का खोजी एक योगी होता है। महावीर आनद की खोज कर रहे हैं। और

इसलिए यह हो सकता है कि कोई विचार कभी गलत हो जाय, यह कभी नही हो सकता कि आनद गलत हो जाय।

इस जमीन पर विचार की दृष्टि से हम भिन्न-भिन्न हो सकते है, आपका विचार दूसरा हो सकता है, मेरा विचार दूसरा हो सकता, लेकिन आनन्द की तलाश मे हम भिन्न-भिन्न नही हो सकते।

सब की तलाश आनन्द की है, इसलिए महावीर का धर्म सार्वजनीन, सार्वलौकिक धर्म है।

इस जगत मे जो भी आनन्द को खोजना चाहेगा, उसे महावीर के सिवाय कोई रास्ता नही।

महावीर अगर विचारक होते तो कुछ थोड़े से लोगो के मतलब की उनकी बात होती, जो उनके विचार से सहमत होते। जो उनके विचार के विरोध मे होते, उनको कोई मतलब न रह जाता। इसलिए विचारको के पथ होते है, योगियो का कोई पथ नही होता। विचारको के सम्प्रदाय होते है, आनन्द के खोजियो के कोई सम्प्रदाय नही होते। क्योकि आनन्द के लिए तो सारा जगत खोज कर रहा है। उस सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही है। एक छोटे से कीटाणु से लेकर मनुष्य तक सभी आनन्द की तलाश कर रहे है। आनन्द के सम्बन्ध मे दो मत नही है, कोई विरोध नही है। इसलिए विचार ऊपरी बात है, आनन्द की खोज बहुत गहरी बात है।

अगर मैं आपसे यह कहू कि आपके सामने दो विकल्प है—क्या आप परिपूर्ण आनन्द उपलब्ध करना चाहते है, या कि परिपूर्ण विचार उपलब्ध करना चाहते है ? अगर आपके सामने दो विकल्प हो—अगर आपके सामने दो विकल्प खड़े हो जाय कि क्या आप जानना चाहते है कि जगत, सत्य क्या है, या कि आप अनुभव करना चाहते है कि परिपूर्ण आनन्द क्या है ? तो मै नही समझता कि आपके हृदय सत्य को जानने की गवाही देगे। आपके हृदय कहेगे कि हम पूर्ण आनन्द को उपलब्ध होना चाहते है।

सत्य को भी इसलिए खोजा जाता है कि पूर्ण आनन्द की तलाश मे वह सहयोगी हो जाय। सत्य का अपने मे क्या मूल्य है ? सत्य का अपने मे कोई मूल्य नही है सिवाय इसके कि सत्य के उपलब्धि से हम सोचते है कि पूर्ण आनन्द के आधार रखे जा सकेंगे।

सत्य भी आनद की तलाश का साधन मात्र है।

इसलिए महावीर के संबंध मे जो मुझे पहली बात, जो मुझे आज कहने का मन है, वह यह कि उन्हें सत्य के खोजी की तरह न देखे, उन्हे आनद के खोजी की तरह देखे। वह आनद की खोज करने वाले साधक हैं। और इसलिए उनकी सारी चर्या, उनका सारा विचार, उनका सारा जीवन मोक्ष पर केन्द्रित है। आनद और मोक्ष एक ही चीज के दो नाम हैं।

दुख क्या है?

दुख सीमा है दुख परतत्रता है, दुख बन्धन है।

और आनन्द?

आनद स्वतत्रता होगी, बन्धन–मुक्ति होगी, सीमाओ का टूट जाना होगा। परिपूर्ण आनद ही परिपूर्ण मुक्ति की अवस्था होगी। मोक्ष मे और पूर्ण आनद मे कोई भेद नही होगा।

जो पूर्ण आनद को उपलब्ध है, वह मुक्त होगा।

जो मुक्त है, वह पूर्ण आनद को उपलब्ध होगा।

इसलिए पश्चिमी मुल्क के विचारक सोचते है, सत्य क्या है। भारत के साधक सोचते है, मुक्ति क्या है, मोक्ष क्या है, मोक्ष का उपाय क्या है। दर्शन और धर्म मे यही भेद है।

दार्शनिक सोचता है, सत्य क्या है, धार्मिक सोचता है मोक्ष क्या है।

अगर आप पश्चिम के विचारको को पढेगे तो आप पायेगे कि वे मोक्ष का कोई विचार ही नही करते है, मोक्ष का कोई ख्याल नही करते। उनके ग्रन्थो मे मोक्ष के सम्बन्ध मे कोई चर्चा नही मिलेगी। और अगर आप भारत के ग्रन्थो को खोजेंगे और देखेंगे तो पायेगे कि सिवाय मोक्ष के हम कुछ भी नही खोज रहे है।

बुद्ध एक गाव से निकलते थे और एक व्यक्ति वहा गिर पडा था। जगल मे वह जाता था और किसी का तीर उसे लग गया। बुद्ध उसके करीब से निकले और उन्होने उस आदमी को कहा, इस तीर को निकाल लेने दो। उस व्यक्ति ने कहा, पहले मुझे यह बतायें, तीर किसने मारा है? पहले मुझे यह बताये, यह तीर विष बुझा था, या गैर विष का था? पहले मुझे यह बताये कि मारने वाला मित्र था कि शत्रु था, कि अनजान मे उसने मार दिया? बुद्ध ने कहा, ये बातें बाद मे पूछ लेना। पहले तीर तो निकाल लेने दो। कही ऐसा न हो कि हम बात करते रहे और तुम्हारे प्राण समाप्त हो जायें। बुद्ध ने कहा कि तीर को पहले

निकाल लेने दो, फिर बाद मे हम विचार कर लेंगे कि तीर किसने मारा। कहीं ऐसा न हो कि हम विचार करते रहें, और तुम्हारे प्राण समाप्त हो जाय।

महावीर, बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट यही कह रहे हैं, हमारे हृदय मे जो तीर लगा है दुख का, उसे हम पहले निकाल लें, फिर बाद मे हम सत्य के संबंध में विचार करते रहेगे। कही ऐसा न हो कि हम सत्य के सबध मे विचार करते रहे और प्राण समाप्त हो जाय। इसलिए भारत की पूरी खोज सत्य के लिए नही है, मोक्ष के लिए है। भारत की खोज तीर किसने मारा है, इसको जानने के लिए नही है, भारत की खोज इसके लिए है कि तीर कैसे निकल जाय।

महावीर की आनन्द की खोज, मोक्ष की खोज केन्द्रीय है। सत्य क्या है, इसकी खोज केन्द्रीय नही है, गौण है। जो लोग उन्हे तत्व-चिन्तक के भाति ले लेंगे, वे भूल मे पड जायेगे। और हमने महावीर को तत्व-चितक की भाति ले लिया है। वह हमने भूल कर ली है। यह बात प्राथमिक रूप से आपसे कहू और इसलिए यह बात कहना चाहता हू, ताकि आपको समझ मे आ सके कि महावीर का कोई सम्प्रदाय नही हो सकता है। कोई समाज नही हो सकता, कोई पथ नही हो सकता। जो भी आनन्द को खोजता है, वे सब महावीर के सम्प्रदाय मे हैं, वे सब महावीर के सग पथ मे हैं।

अभी मैं एक जगह था। किसी ने मुझसे कहा एक जैन साधु ने मुझसे कहा कि जैन धर्म के अतिरिक्त, जैन धर्म के सिवाय मोक्ष होने का कोई रास्ता नही है। मैंने उनसे कहा, ऐसा मत कहे। मैंने उनसे कहा, ऐसा मत कहे कि जैन धर्म के अतिरिक्त मोक्ष जाने का कोई रास्ता नही है। बल्कि ऐसा कहे कि जो भी, कही से भी मोक्ष चला जायेगा, वह जैन है। मैने उनसे कहा, ऐसा कहे, जो कही से भी मोक्ष चला जायगा, वह जैन है। यह मत कहे कि जो जैन है, वही मोक्ष जा सकता है। यह कहे कि जो भी मोक्ष चला जाता है, वह जैन है।

और अगर दूसरी बात मेरी आपको ठीक लगे तो इस जमीन पर जितने लोग मोक्ष को उपलब्ध हुए है, वे सब महावीर के पथ मे हैं, महावीर के साथ है। और तब महावीर एक विराट पुरुष की तरह दिखायी पडेगे, एक सीमित दायरे के भीतर बधे हुए नही। एक ही मेरी आकाक्षा है कि महावीर जैनियो से मुक्त हो सके, ताकि उनका सदेश और उनका त्याग, उनकी जीवन-चर्या सबके सामने आ सके।

जिन कुओ पर किन्ही का कब्जा हो जाता है, उनका जल सबके पीने के मतलब का नही रह जाता। और जिन कुओ पर किन्हीं का कब्जा हो जाता है,

उन कुओं का पानी सबकी प्यास को बुझा नही पाता। कुओं को तोड़ दें और दिवालो को हटा ले और महावीर को बांधे नहीं, तो आप हैरान हो जायेंगे कि उनकी जो अन्तर्दृष्टि है, वह सारे मनुष्य के स्वास्थ्य की मूल चिकित्सा बन सकती है। महावीर की जो अन्तर्दृष्टि है वह बहुत गहरी, बहुत पैनी है। और मनुष्य के जो भी रोग हैं, उनको दूर करने मे समर्थ है। उस पैनी अन्तर्दृष्टि के क्या बुनियादी आधार हैं, वह मैं आपसे कहू।

महावीर की जो अन्तर्दृष्टि है मनुष्य की समस्त रुग्णता के भीतर, मनुष्य की समस्त विचित्रता के भीतर, मनुष्य के सारे जितने भी जीवन के दुख, पीडाए और सताप है उनके भीतर, महावीर की जो अन्तर्दृष्टि है, वह एक बात पर खडी हुई है। और वह बात यह है कि हम, जिन्हे दुख मानते हैं, जिन्हें पीडाए मानते हैं, जिन्हे तथ्य मानते है, उन्हे दूर करने का उपाय करतैं हैं। हर मनुष्य अपने कष्ट को, अपनी पीडा को, अपने दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है। हर मनुष्य कर रहा है—चाहे वह धन खोजता हो, यश खोजता हो, पद खोजता हो, प्रतिष्ठा खोजता हो, वह अपने दुख को दुर करने का उपाय कर रहा है।

महावीर की अन्तर्दृष्टि यह है कि जो दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है, बिना यह जाने कि दुख क्या है, नासमझ है, वह दुख को कभी दूर न कर पायेगा। जो दुख को दूर करने का उपाय कर रहा है बिना यह समझे कि दुख क्या है और किसे है, वह नासमझ है और दुख को कभी दूर नही कर पायेगा। एक दुख को दूर करेगा, दूसरा दुख घेर लेगा, क्योकि मूल कारण मौजूद रहेगा। मेरे पैर मे दर्द बहुत है, मैं उसे दूर करूगा, पैर ठीक हो जायेगा। फिर कल मेरे सिर मे दर्द होगा, उसे दूर करूगा और सिर ठीक हो जायेगा। वे दुख तो दूर होते जायेंगे, लेकिन दुख दूर नही होगा, दुख पीछे लगा रहेगा। एक दुख दूर होगा, दूसरे दुख मौजूद होगे क्योकि मूल कारण विलीन नही होगा।

महावीर यह कहते है कि अगर मनुष्य के मूल दुख को हम समझे और दूर करना चाहे तो एक-एक दुख को दूर करने की जरूरत नही है, यह बात जानने की जरूरत है कि दुख क्या है, और किसे है। जब मेरे पैर मे दर्द हो रहा हो या सिर मे दर्द हो रहा हो, तब मुझे यह जानने की जरूरत है कि दुख और पीडा क्या है, और दुख और पीडा किसे हो रही है। अगर मुझे यह दिखायी पड सके—जो दुख को, पीडा को सताप को देख सके मनुष्य के जीवन मे दुख तो बहुत है। एक दुख को हम दूर करते है, दूसरा दुख घेर लेता है, दूसरे को दूर करते है, तीसरा घेर लेता

है। जो दुख को दूर करने में इस भांति लगा है, वह गृहस्थ है। जो एक-एक दुख को दूर करने मे लगा है, वह गृहस्थ है। जो समस्त दुखो के मूल कारण को दूर करने में लगा है, वह सन्यासी है। जो फुटकर बीमारियो को दूर करने में लगा है, वह गृहस्थ है। जो बीमारी मात्र को दूर करने लगा है, वह सन्यासी है।

महावीर की जो अन्तर्दृष्टि है मनुष्य की रुग्णता मे और दुख मे और पीड़ा मे वह यह है कि हमे यह जानना जरूरी है कि हमे दुख होता है, तब हमे दुख होता है या हमे दुख होने का भ्रम होता है? क्या मुझे दुख होता है या मेरे आस-पास दुख होता है और मैं समझ लेता हू कि मुझे दुख हो रहा है?

सिकदर जब भारत से वापस लौटता था, तो उसने चाहा कि एक साधु को अपने साथ यूनान ले जाय। जब वह यूनान से आता था तो उसके मित्रो ने कहा था, भारत से कुछ चीजें लाना, एक साधु भी ले आना। साधुओ की चर्चा रही है भारत के बाहर—भारत के साधुओ की। और सिकदर भारत से जीतकर लौटे तो उसके मित्रो ने कहा था, और सब चीजें लाना, एक साधु भी लाना। साधु देखना चाहेगे। सिकदर जब लौटने लगा तो भारत की सीमा के पास उसे ख्याल आया कि हम अपने साथ किसी साधु को ले जाना चाहते हैं। उसने किसी विचारशील व्यक्ति से सलाह ली। उस विचारशील व्यक्ति ने कहा, जो चला जाय, वह साधु नही होगा, और जो साधु है, उसका जाना मुश्किल है। सिकदर ने कहा, क्या बात करते है! जिसके सामने से पहाड भी हट जाये और जो पहाडो को भी बाधकर यूनान ले जाना चाहे, तो ले जाय। वह चाहे तो पूरे मुल्क को यूनान पहुचा दे, वह एक साधु नही ले जा सकेगा? तो सिकदर की तलवार किस काम आयेगी? उस विचारशील आदमी ने कहा, जिसके सामने तलवार बेकार है, वही तो साधु है। जो तलवार के भय से चला जाय, समझना कि उसे बेकार ले आये हो, सामान्य आदमी है, वह साधु नही है। फिर भी कोशिश कर ले। सिकदर बहुत हैरान हुआ, और बहुत उत्सुक हो गया। उसने डेरा रोक दिया और उसने कहा, साधु को खोज कर ही जायेंगे। यह सचमुच अजीब चीज है, अगर साधु ऐसा आदमी है।

एक साधु की खबर लगी, वही नदी के किनारे, पहाड की तलहटी मे, एक घाटी के पास रहता था। सिकदर ने अपने सेनापति वहा भेजे। उन सेनापतियो ने जाकर वहा कहा कि महान सिकदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चले, बहुत सम्मान हम आपको देगे, बहुत इज्जत देंगे, यूनान आपको ले चलना चाहते

हैं। उस साधु ने कहा, अपने सिकंदर को कहना कि जिसने सिवाय अपने, और सबकी आज्ञाएं मानना छोड़ दिया है, वही साधु है। सिकंदर से कहना, हम सिवाय अपनी आज्ञा के और किसी की आज्ञा से नही चलते। उसके सेनापतियों ने कहा, यह आप भूल कर रहे हैं। सिकंदर ने यह भी संदेश कहलवाया है, कि यह भी कह देना, अगर इन्कार हुआ तो हम तलवार के बल पर भी ले जा सकते हैं। उस साधु ने कहा, अपने सिकंदर को कहना कि जिसे तुम तलवार के बल ले जा सकते हो, उसे बहुत समय हुआ, हम छोड़ चुके हैं। जिसे तुम तलवार के बल ले जा सकते हो, उसे बहुत समय हुआ, हम छोड़ चुके हैं।

सिकन्दर खुद गया, वह नंगी तलवार लेकर गया। वह जब नगी तलवार लेकर गया, तो साधु ने कहा, तलवार म्यान के भीतर कर लो। क्योंकि सामने जो है, उसके लिए तलवार बेकार है, और तुम बहुत बच्चे मालूम पड रहे हो, नगी तलवार हाथ मे लिये हुए! और तुमको देखकर बडी हसी आयेगी हमको, इसलिए तलवार म्यान के भीतर कर लो। सिकन्दर ने कहा, आपको चलना है, अन्यथा हम आपको समाप्त कर देंगे। उस साधु ने कहा, जिसे तुम समाप्त करोगे, उसे हम भी समाप्त होते हुए देखेंगे। उस साधु ने कहा, जिसे तुम समाप्त करोगे, उसे हम भी समाप्त होते हुए देखेंगे। हम भी साक्षी होगे। समाप्त तुम करो। उसने कहा, जब तुम मुझे काटोगे तो जिस भाति तुम मुझे देखोगे कटता हुआ, उसी भाति मैं भी कटते हुए देखूगा। क्योंकि जिसको तुम काटोगे, वह मैं नही हू। मैं अलग हू, मैं पीछे हू। जिस पर चोट पडती है—हमारा होना, उसके पीछे है। जिसको पीडा और दुख आता है—हमारा होना उसके पीछे है। जिस शरीर के पीछे हम सारे दुख और पीडाओ को दूर करने मे लगे होते है, वह शरीर हम नही हैं।

एक-एक दुख को जो दूर करेगा, वह शरीर से बधा रहेगा। जो सारे दुखो के मूल मे जायेगा, वह पायेगा हम शरीर से अलग हैं।

महावीर कहते है, समस्त दुख का मूल क्या है? दुख का मूल है तादात्म्य, यह आयडेन्टिटी कि मैं शरीर हू। सारे दुख का मूल यह है कि मैं शरीर हू। और सारे आनन्द का मूल यह बनेगा कि मैं जान लूं कि मैं शरीर नही हू।

जब तक मैं जानता हूं कि मैं शरीर हू, तब तक मैं ससार मे हू।

और जिस क्षण मैं जानूगा कि मैं शरीर नही हू, मेरा मोक्ष मे प्रवेश हो जायेगा।

मोक्ष का अर्थ है यह बोध कि मैं शरीर नही हू।

और संसार का अर्थ है यह बोध, कि मैं शरीर हू ।

तो अगर आपको यह लगता हो कि मैं शरीर हूं, तो चाहे आप साधु हो या चाहे आप गृहस्थ हों, आप संसार मे हैं । और अगर आपको लगता हो कि मैं शरीर नही हू, तो चाहे आप साधु हो, चाहे आप गृहस्थ हो, आप ससार में नही हैं ।

मैं एक साध्वी से मिलता था । हवा जोर से चलती थी और मेरा कपडा उनको छूता था । वह बहुत घबडा गयी । कोई मित्र मेरे पास आये और उन्होंने मुझे रोका और बताया कि पुरुष का कपडा उनको छू रहा है । मैंने कहा, हैरानी हो गयी । कपडा भी पुरुष हो सकता है! और जब कपड़ा पुरुष हो सकता है, तो पुरुष छू लेगा तो क्या हालत होगी? जिनको कपडा पुरुष हो सकता है, वे जानते होगे कि वह शरीर है? उनकी तो हद शारीरिक स्थिति हैं । सब भौतिकवादी लोग हैं, सब मिटिरियलिस्ट हैं । ये अध्यात्मवादी नही हैं । जिनको मेरा कपडा छू रहा है और जो घबडाये हुए हैं कि पुरुष का कपडा छू रहा है, उनसे ज्यादा भौतिकवादी, उनसे ज्यादा देहवादी और कौन होगा?

एक साधु वह है, जो कहता है—जो कहता है कि तुम तलवारें मेरे भीतर डालो तो हम खडे होकर देखेंगे! उसे शरीर भी स्वय का हिस्सा नही है । इन्हे कपडा भी स्वय का हिस्सा है! दुनिया मे ऐसे गृहस्थ हैं, जो आध्यात्मिक हो सकते हैं, और ऐसे साधु हैं, जो एकदम भौतिकवादी, एकदम शरीरवादी होते हैं ।

महावीर की अन्तर्दृष्टि यह है कि आपकी चेतना आपके शरीर से मुक्त हो जाय । लेकिन उनके पीछे चलने वाले लाखो साधु शरीर से इतने ज्यादा बधे हुए है कि वे शरीर से कैसे मुक्त होगे? महावीर की दृष्टि यह है कि आपकी अन्तस्-चेतना मे यह पता चल जाय कि देह बाहर की खोल है, वस्त्र की भाति है, जिसे हमने पहना है और जिसे हम चाहे तो उसी क्षण उतार सकते है । हमारी वासनाओ को जरूरत है कि हम उसे पहने । जिस दिन हमारी वासनाए क्षीण हो जायेंगी, हमे जरूरत न होगी कि हम उसे पहने । शरीर वस्त्र की भाति है, जो हम अपनी वासनाओ की तृप्ति के लिए पहनते है । बार-बार पहनते है, बार-बार छोड देते है । लेकिन जो पहनता है इस शरीर को, वह शरीर अलग है । जो जन्म के समय इस शरीर मे प्रविष्ट होता है, वह शरीर से अलग है । और जो मृत्यु के समय इस शरीर को छोडता है, वह इस शरीर से अलग है ।

और जो जीवन भर इस शरीर मे रहता है, वह शरीर से अलग है ।

जिसे ऐसा बोध होने लगे कि मैं जिस घर में रह रहा हूं, वह घर मैं ही हूं, उस आदमी के दुख का क्या हिसाब होगा? जब छप्पर उसका टूटेगा, वह चिल्लाने लगेगा कि मैं टूटा। जब उसके मकान की दीवाल का पर्त-पर्त गिरने लगेगा, तब कहेगा, मैं मरा, मेरा पर्त-पर्त क्यो गिरा जा रहा है। और उसके मकान को आग लग जायेगी, तो वह चिल्लायेगा कि मैं जल गया। लेकिन जो जानते हैं, वे उसे कहेंगे, पागल, न तुम जल रहे हो, न तुम टूट रहे हो, तुम केवल इस मकान में रहने वाले हो। जो हो रहा है, मकान पर हो रहा है, तुम पर कुछ भी नही हो रहा है। जो भी इस जगत मे घटना घट रही है, सब मकान पर घट रही है, मकान के भीतर रहने वाले पर कोई घटना नहीं घट रही है।

आज तक यह असभव हुआ है कि वह भीतर जो बैठा है, उसपर कुछ भी घटा हो। सब जो बाहर घिरा है, उस पर घटा है। और दुखो का कारण यह है कि हम समझ रहे हैं कि वह हम पर घट रहा है।

जीवन मे कुछ भी नही है, जो आत्मा पर घटित हो सके। जो भी घट रहा है, शरीर पर घट रहा है। इस जगत की कोई शक्ति आत्मा को नही छूती है, न छू सकती है। जो भी छूता है, शरीर को छूता है। लेकिन, एक भ्रान्ति, कि मैं शरीर हू, पीडा और दुख का कारण बन जाती है।

महावीर के धर्म की मूल शिक्षा एक बात मे है कि व्यक्ति यह जाने कि वह शरीर नही है। इसे जानने का जो मार्ग है, वही तपश्चर्या है। महावीर कहते हैं, प्रति घडी दुख मे, सुख मे, पीडा मे, अपीडा मे, नीद मे तुम यह जानो कि तुम शरीर नही हो। उठते-बैठते, सोते-जागते तुम यह जानो कि शरीर नही हो। भोजन करते, उपवास करते, कपडा पहनते या नग्न होते जानो कि तुम शरीर नही हो।

अगर चौबीस घटे स्मरण करें कि मैं शरीर नही हू। जब रास्ते पर चले, तो पता हो कि शरीर चलता है, मैं नही चलता। जब भोजन करे तो बोध हो कि भोजन शरीर करता है, मैं नही करता। जब कोई चोट आप पर करे तो जाने कि चोट शरीर पर की गयी है, आप पर नहीं की गयी है। अगर यह सतत अनुस्मरण चले—यही अनुस्मरण और इस अनुस्मरण के साथ जैसी जीवन-चर्या है, उसका नाम तप है।

बहुत दुख झेलना होगा। अगर मुझे आप यहां अभी मारे, तो मुझे जानना होगा कि मुझे नही मारा गया। और जो मुझे नही मारा गया तो मैं आपको

उत्तर क्या दूंगा ? उत्तर का कोई प्रश्न ही नही है। दूसरे को आप मारें, तो हम उत्तर आपको क्या देंगे ? दुख आये तो जानना कि दुख जिस पर आया है, वह मेरा घर है, मैं नही हूं। ऐसा दुख मे जानना। ऐसा सुख मे जानना कि जो आया है, वह मेरे घर आया है, मुझ पर नही। सुख मे अनुद्विग्न होना, दुख में अनुद्विग्न होना और दोनो मे समता रखनी महावीर की मूल शिक्षा है। इसे वह सन्यस्त भाव कहते हैं। इसे वह समता का स्वभाव कहते हैं। यह समता का भाव तभी फलित होगा, जब मैं यह स्मरण रख सकूं—सारी स्थितियो मे स्मरण रख सकूं। ऐसा व्यक्ति जो सुबह से सांझ तक, सांझ से सुबह तक श्रम करते हुए यह जानता रहता हो—इस बात का बोध उससे छूटता न हो, कि यह स्मृति उससे विलीन होती न हो, कि यह सब जो भी घटित हो रहा है, यह मेरी अन्तस्-चेतना पर घटित नहीं हो रहा है। उसे एक अनुभव होगा। क्रमश इसमे गति करते-करते एक दिन उसे पता चलेगा कि वह बिलकुल अलग है और शरीर बिलकुल अलग है। यह बोध इतना स्पष्ट होगा, जितना स्पष्ट कोई बोध नही होता। आकाश और जमीन के बीच इतनी दूरी नही, जितनी दूरी मेरी आत्मा और मेरे शरीर के बीच है। आकाश और जमीन मिलाये जा सकता है, मेरी आत्मा और मेरा शरीर मिलाया नही जा सकता। फासला बना ही रहेगा। इतनी समीपता है मेरे शरीर की मेरी आत्मा से, लेकिन अनन्त फासला है, जो मिटाया नही जा सकता।

अगर आत्मा और शरीर का फासला मिट जाय तो फिर मोक्ष असभव हो जायेगा। इसलिए पापी से पापी और बुरे से बुरे व्यक्ति की आत्मा और शरीर मे उतनी ही दूरी है, जितनी पुण्यात्मा और जितनी श्रेष्ठतम व्यक्ति की आत्मा और शरीर मे होती है। शरीर और आत्मा की दूरी उतनी ही है, जितनी आपकी है, और जितनी महावीर की केवल-ज्ञान के बाद की है। शरीर और आत्मा की दूरी महावीर की कम नही होती, आपकी ज्यादा नही हो सकती। फर्क केवल बोध का पडता है। महावीर को दिखता है कि दूरी है, आपको दिखता नही कि दूरी है। जहा महावीर खडे है, वही आप खडे हैं। महावीर को दिख रहा है, कि कहा खडे हैं। आपको दिख नही रहा है, कि कहा खडे हैं। इससे ज्यादा अन्तर नही है।

अज्ञान से ज्यादा और कोई अन्तर नही है।

और वह अज्ञान एक ही है। बुनियादी अज्ञान एक ही है—यह भ्रम कि मैं शरीर हू। हम इस भ्रम को पालते हैं और पोसते हैं। हम इस भ्रम को

पालते हैं और पोसते हैं, अनेक-अनेक रूपों मे इसका हम पोषण करते हैं, इसे सम्हालते हैं। इस भ्रम को सम्हालते हैं। दुर्जन भी सम्हालता है, सज्जन भी सम्हालता है। गृहस्थ भी सम्हालता है, साधु भी सम्हालता है। दोनो ही इसको सम्हाल रखते हैं! दोनो इस भ्रम को पोषण देते रहते हैं। और तब यह भ्रम घना होता चला जाता है और यही भ्रम जन्म-जन्मान्तरों का कारण बन जाता है।

दो दिशाएं हैं मनुष्य के सामने—एक है भ्रम–विसर्जन की, और एक है भ्रम–पोषण की।

जो महावीर के मार्ग मे उत्सुक हो, उन्हें भ्रम-विसर्जन पर ध्यान देना पड़ेगा। उन्हें ध्यान रखना होगा कि वे जो भी करे, जो भी बोले, जो भी सोचे, उसमें यह ध्यान रखना होगा, कि उनकी क्रिया, उनका विचार, उनकी वाणी इस भ्रम को बढाने मे सहयोगी तो नही हो रही है। वे जो बोल रहे हैं, जो सोच रहे हैं, जो कर रहे हैं, उससे कही उनका यह अज्ञान घना तो नही हो रहा है कि मैं शरीर हू। अगर यह घना हो रहा है, तो उनके कर्म, उनके विचार पाप हैं। अगर यह क्षीण हो रहा है, तो उनके कर्म, उनके विचार पुण्य हैं। पुण्य और पाप की इसके सिवाय और कोई मैं परिभाषा नही देखता हू।

जो आपके भीतर इस भ्रम को तोड दे कि मैं शरीर हू, ऐसी क्रिया, ऐसा विचार पुण्य है, सद् कर्म है। और वैसी क्रिया, वैसा विचार, जो इस भ्रम को घना कर दे कि मैं शरीर हू, पाप है।

कैसे स्मरण रखेगे? कैसे यह सब पता चलेगा? कैसे हम भूलेंगे यह बात कि हम शरीर है और जानेंगे यह सत्य कि मैं आत्मा हू?

मैने कहा, सतत अनुस्मरण से, इसे महावीर ने विवेक कहा है। महावीर ने कहा है साधु को विवेक से चलना चाहिए। तो कोई होगे जो समझते होगे कि विवेक का इतना ही अर्थ है कि उसको देखकर चलना चाहिए, कि कही पैर के नीचे कीडे-मकोडे तो नही आ गये! महावीर ने कहा, साधु को विवेक से लेटना चाहिए, तो कुछ होगे, जो सोचेगे कि करवट बदलते वक्त ध्यान रखना चाहिए कि नीचे कोई कीडा–मकोडा तो नही आ गया! महावीर ने कहा, साधु को विवेक से भोजन करना चाहिए, तो कुछ होगे जो सोचेगे कि पानी छना हुआ है, या गैर-छना हुआ है! ये विवेक के अत्यत क्षुद्र अर्थ है। विवेक का गहरा और महत्वपूर्ण अर्थ दूसरा है। वास्तविक सारभूत अर्थ दूसरा है।

विवेक का अर्थ है, चलते वक्त साधु को जानना चाहिए कि मैं नही चल रहा हू। क्षण भर को भी स्खलन न हो इस स्मृति में, क्षण भर को भी यह भ्रम

न आ जाय कि मैं चल रहा हूं। स्मरण होना चाहिए, देह चलती है, मैं देखता हूं। वासना चलती है, मैं देखता हू। मैं साक्षी हू। मन चलता है, मैं द्रष्टा हूं। शरीर चलता है, मन चलता है, मैं नही चलता, मैं स्थिर हू। सारे चलन के बीच, सारे परिवर्तन के बीच, सारी गति के बीच, वह जो स्थिर बिन्दु है हमारे भीतर, वह जिसे गीता मे कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा है, वह जो प्रज्ञा है हमारे भीतर ठहरी हुई, उसका बोध होना चाहिए, कि मैं रुका हू। चलते समय जिसे पता होगा कि मैं रुका हू। भोजन करते वक्त जिसे पता होगा कि मैंने कभी भोजन नही लिया। वस्त्र पहनते वक्त जिसे पता है कि मुझे कोई वस्त्र ढांक नही सकते। जब दुख उस पर आयेगा, उसे पता होगा, ये दुख मुझ पर नही आये। जब सुख उस पर आयेगा, उसे पता होगा, ये सुख मुझ पर नही आये। जब मृत्यु उसके द्वार-दरवाजा खटखटायेगी, तब वह जानेगा, यह मृत्यु मेरी नही है, यह बुलावा मेरा नही है। ऐसे विवेक को जीवन की प्रत्येक क्रिया मे, छोटी और बडी क्रिया मे विवेक को गूथ लेना, इसे महावीर ने साधक का आधारभूत कर्तव्य कहा है। जो इसे करता हो, वह पहली सीढ़ी पर कदम रखता है।

और स्मरण रखे, एक बार मे एक ही सीढ़ी चढनी होती है, बहुत सीढ़िया कोई नही चढ़ता है। एक सीढी आप चढ जाये, दूसरी सीढी आपके सामने आ जाती है। अगर विवेक की सीढी कोई चढ़ जाय, तो अपने आप दूसरी सीढ़िया उसके सामने उद्घाटित होती चली जाती हैं। मनुष्य को सीखने जैसा विवेक है, और कुछ भी सीखने जैसा नही है।

लेकिन हम विवेक नहीं सीखते, हम विचार सीख लेते है। विवेक और विचार मे भेद है। हम विवेक को नही सीखते महावीर से, महावीर के विचार सीख लेते हैं। महावीर के विचार पर खडे हुए शास्त्र है, उनको सीख लेते है। महावीर के विचार पर चलते हुए प्रवचन और पाण्डित्य हैं, उनको सीख लेते हैं।

मैं आपको कहू, महावीर के विचार को न सीखे, महावीर के विवेक को सीखे। अगर महावीर को पाना है तो महावीर के विवेक को सीखे। और अगर महावीर की बाते सीखनी हैं, तो महावीर को तो नही पा सकेंगे। उन बातो से महावीर को नही पा सकेंगे। महावीर के विचार का सग्रह न करें, महावीर के विवेक का जागरण करें अपने भीतर।

और दुनिया के समस्त सद्पुरुषो के दो ही जीवन के हिस्से हैं---उनका विचार और उनका विवेक। जो लोग उनके विचार को पकड़ते हैं, वे पण्डित

होकर समाप्त हो जाते हैं। जो उनके विवेक को पकड़ते हैं, वे प्रज्ञा औरमोक्ष को उपलब्ध होते हैं।

आज की सुबह, महावीर के विवेक को, महावीर के विचार को लें। महावीर जो भी कहते हैं, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महावीर जिस स्थान से कहते हैं, उस स्थान पर कैसे पहुंचें, यह महत्त्वपूर्ण है।

एक साधु हुआ। उससे किसी व्यक्ति ने आकर पूछा, कोई उसकी उलझन थी। उसने कहा, यह उलझन मेरी हल कर दें। साधु ने कहा, यह मैं तुम्हारी उलझन हल कर दूंगा, तो क्या तुम सोचते हो कि कल तुम्हारी दूसरी उलझन खड़ी नहीं हो जायेगी। वह बोला, यह कैसे सोच सकता हूं कि नहीं खड़ी हो जायेगी। जीवन तो उलझन है। साधु ने कहा, कल तुम फिर आओगे, फिर मैं तुम्हारी उलझन ठीक कर दूंगा। फिर तीसरे दिन आओगे। फिर आज मैं हूं, कल मैं समाप्त हो जाऊंगा, तो तुम्हारी उलझन कौन समाप्त करेगा? तो उस साधु ने कहा, अच्छा हो, तुम उलझन का समाधान मुझसे मत मांगो। तुम मुझसे वह अन्तर्दृष्टि मांगो, जिससे सारी उलझनें सुलझाने की स्वयं क्षमता मिल जाती है। उस साधु ने कहा, अच्छा हो, तुम मुझसे समाधान मत मांगो, तुम मुझसे वह रास्ता पूछो, जिससे कि स्वयं समाधान मिल जाता है और वह अन्तर्दृष्टि मिल जाती है, जिससे सारी उलझनें सुलझ जाती है।

एक अन्धा आदमी आकर मुझसे पूछे कि दरवाजा कहां है हाल के बाहर निकलने का? मैं उसे बता दूंगा। फिर कल यहां आयेगा, फिर कल पूछेगा कि दरवाजा कहां है। दूसरे मकान मे जायेगा, फिर पूछेगा दरवाजा कहां है। जिस मकान मे भी जायेगा, वही पूछेगा कि दरवाजा कहा है। अगर मेरी अनुकपा उस पर पूरी हो तो मुझे उसे दरवाजा नही बताना चाहिए, मुझे उसे आंख ठीक करने का उपाय बताना चाहिए। दरवाजा बताने से क्या फायदा होगा? दरवाजा बताना विचार देना है और आंख ठीक करना विवेक देना है। दरवाजा बताना एक विचार दे दिया, उससे एक हल हो जायेगा। लेकिन उससे सब हल नही हो जायेगा। असली हल तब होता है, जब भीतर अन्तर्दृष्टि जागती है और भीतर एक बोध, एक विवेक जाग्रत होता है।

तो महावीर ने विचार नही सिखाया, महावीर ने विवेक सिखाया है।

और जो आपसे कहता हो कि महावीर ने विचार सिखाया है, वह शत-प्रतिशत असत्य बात कहता है। महावीर ने अहिंसा का विचार नहीं सिखाया, अपरि-

ग्रह का विचार नहीं सिखाया, वह अन्तर्दृष्टि सिखायी, जिसके आने पर अहिंसा आ जाती है, अपरिग्रह आ जाता है । जिस व्यक्ति को यह दीखने लगे कि मैं शरीर नहीं हूं, वह परिग्रही कैसे होगा ?

जिस व्यक्ति को यह दीखने लगे कि मैं शरीर नहीं हूं, वह परिग्रही कैसे होगा ।

लेकिन आपको कहूं, वह तथाकथित अपरिग्रही भी नहीं होगा, जो आपको दिखायी पड़ते हैं । क्योंकि जिसको यह दिखायी पड़ने लगे कि मैं शरीर नहीं हू, उसमे चीजे इकट्ठी करने का मौजू नहीं रह जायेगा । चीजें छोड कर भाग जाने का प्रश्न भी उसे नहीं उठता । वह अस्पर्श को उपलब्ध हो जायेगा । चीजो के बीच होकर भी उसे चीजे छुयेंगी नहीं । चीजे उसके पास न हो, तो चीजो का स्मरण उसे नहीं होगा । वह अस्पर्श को उपलब्ध हो जायेगा ।

एक साधु हुआ । एक बादशाह ने उसे बहुत प्रेम किया और अपने घर मे मेहमान बना लिया । वह साधु उसके घर मेहमान हो गया । मेहमान होने के पहले एक दरख्त के नीचे पडा था, नगा फकीर था । मेहमान होने के बाद महल की सारी राज्य सुविधा उसे उपलब्ध हुई । उस रात वह बहुमूल्य पलग पर सोया । राजा को अपने बिस्तर पर सोते वक्त सदेह मन मे हुआ कि यह अजीब बात है, यह आदमी साधु नहीं मालूम होता । भीख मागता था दरवाजे पर, दरख्त के नीचे नगा पडा था, हम इसे आदर दिये, हमने कहा, महल चलो, इसने एक दफे इन्कार भी नहीं किया कि हम नहीं चलते ! अगर साधु होता तो इन्कार करता । ऐसा उस राजा ने सोचा । साधु होता तो वह कहता, हमको क्या मतलब राजमहलो से ? लेकिन जो कहे, हमको क्या मतलब राजमहलो से—जो कहे, हमको क्या मतलब राजमहलो से, उसका भी बहुत भाति मतलब है । राजा ने कहा, यह बोला नहीं कुछ भी ! हमने कहा, चलो, यह चला आया ! जरूर यह साधु-वाधु नहीं है, यह धोखा है । इसका कोई अपरिग्रह नहीं है । बिस्तर पर सुलाया, सो गया ! अच्छा खाना खिलाया, खा लिया !

सुबह होते ही राजा ने कहा, मुझे एक सदेह होता है । वह साधु हसने लगा । उसने कहा, तुम्हे अब होता है, हमे तभी हो गया था, जब तुमने कहा था, ऊपर चलो । राजा बोला, मतलब ? वह बोला हम उसी वक्त देख लिये थे कि तुम्हारी श्रद्धा विलीन हो गयी, सब खत्म हो गया । हम तुमसे कहते, हम फकीर है, हम कहा राजमहल मे जायेगे, हमने लात मार दी, तो तुम खुश होकर हमारे

पैर पकड़ते और हमारे चरणो में सिर रखते। क्यो? क्योंकि तुम्हारी जो आत्मा है, उसे जो छोड़ता हुआ मालूम पड़े, वह तुम्हें आदर योग्य मालूम होता है।

स्मरण रखना, जब भी आप किसी का आदर करते हो, तो उसका आदर कम है, आपकी वासना का सबूत ज्यादा है। अगर मैं सारा धन छोड़कर चला जाऊ और आप मेरे पैर पड़ो, तो मैं समझूंगा कि धन-लोलुप हो। मेरे पैर क्यो पड़ोगे? धन-लोलुपता आपकी मेरे पैर पड़ने को कहे, कि इसने सारा धन छोड़ दिया, और आप धन-लोलुप हो? हद् त्याग किया है, इसके पैर पड़ो। अगर मैं वस्त्र छोड़कर नग्न खड़ा हो जाऊ, तो आप मुझे नमस्कार करेगे, क्योकि आपकी वस्त्र छोड़ने की हिम्मत नही है।

तो जब आप किसी को आदर देते हो, वह आदर कम है, वह आपका अपमान ज्यादा है और आपके भीतर की असलियत का सबूत ज्यादा है। जो कामी है, वह ब्रह्मचर्य वाले को बहुत आदर देगा। जो भोगी है, वह त्यागी को आदर देगा। जो परिग्रही है, वह अपरिग्रही को आदर देगा। और इसलिए जो धोखेबाज है, वे अपरिग्रह साध लेंगे और आदर ले लेंगे और अहकार की तृप्ति कर लेगे।

उस साधु ने कहा, मैं उसी वक्त समझ गया, मामला खत्म हो गया। लेकिन हमने सोचा कि तुम्ही कहो, तब बात करेगे। उस राजा ने कहा, मुझे तो रात नीद नही आयी। मैं तो बहुत सोचता रहा, यह कैसा साधु है और रात मुझे यह ख्याल आता रहा कि अब मुझमे और आपमे क्या फर्क है। आप भी सोये हैं वही, मैं भी सोया हू वही। वही सुविधा मुझे है, वही सुविधा आपको है। तो फकीर बोला, मेरे साथ गांव के बाहर चलो, उत्तर रास्ते मे देंगे।

वे गाव के बाहर गये। जहा नदी पड़ती थी, गांव समाप्त होता था राजा ने कहा, अब बताये। वह फकीर बोला, थोड़ा और आगे। वह जब भी पूछता, बताये, वह कहता, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गयी, राजा ने कहा, क्या पागल-पन है, उत्तर देना हो दे—और आगे से क्या मतलब है? फकीर बोला, और आगे ही मेरा उत्तर है। हम लौटेगे नही। तुम भी मेरे साथ चलते हो? वह राजा बोला, मैं कैसे जा सकता हू, मेरे पीछे महल, मेरी रानी, मेरे बच्चे, मेरा राज्य है। वह फकीर बोला, अगर फर्क दिखे, तो देख लेना। फर्क है, हम जाते हैं, तुम नही जा सकते। हम जाते है, हमारा पीछे कुछ भी नही है। हम उस बिस्तर पर सोये थे। कोई बिस्तर हमारा पीछे नही रह गया है कि जिस पर हमे

फिर सोना है। कल जब दरख्त के नीचे सोयेंगे तो फिर सो लेंगे। और दरख्त से कोई मोह नही बन जायेगा।

यह है अस्पर्श योग।

चीजें छुए न, बस यही जीवन-साधना है।

चीजें छू ले, तो परिग्रह हो जाता है। चीजे न छुये तो अपरिग्रह हो जाता है। असली अपरिग्रह—चीजे न छुये, यह बोध साध लेना है। चीजे छोड़कर भाग जाना, न भाग जाना गौण बात है। उसका कोई मूल्य नही है। उनके विवेक को जो अपने भीतर स्थापित करेगा, वह धीरे-धीरे इस जीवन-स्थिति को उपलब्ध हो जाता है। तब वह जल मे—जल मे कमल के पत्तो की भाति जीता है।

ईश्वर करे, वैसी स्थिति आपको उपलब्ध हो। और अगर आकांक्षा हो वैसी स्थिति की, तो महावीर ने जिसे विवेक कहा है, उसे साधे। आकाक्षा हो तो सतत् इस बात का अनुस्मरण साधे कि मै देह नही हू। तो धीरे-धीरे, जैसे एक-एक बूद गिरकर सागर भर जाता है और एक-एक किरण गिरकर सारे जगत को आलोक से भर देती है, वैसे ही एक-एक क्षण अनुस्मृति का साधते-साधते एक दिन विवेक का जन्म होता है और मनुष्य परम सत्य को, परम शाति को, आनद को उपलब्ध होता है।

प्रभु करे, वैसी आकाक्षा आपमे उत्पन्न हो, वैसा सकल्प उत्पन्न हो, वैसा श्रम करने का साहस उत्पन्न हो। और जो जीवन, जिसको पाने के लिए आप जन्मे हैं, वह आपको सभव हो जाय।

इस कामना के साथ अपनी बात को पूरा करता हू। मेरी बातो को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हू। आप सबके भीतर जो सभावी महावीर है, उसके लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करे।

जैन-भवन, सायन, बम्बई, दिनांक १३ अप्रैल १९६२

आत्म-दर्शन की साधना

भगवान् महावीर के इस स्मृति दिवस पर, थोडी सी बाते उनके जीवन के सबध मे कहू, उसके लिए मुझे आनन्द होगा ।

भगवान महावीर, जैसा हम उन्हे समझते हैं और जानते हैं । जो चित्र हमने अपनी आखो में और हमारे हृदय में उनका बनाया हैं, जिस भांति हम उनकी पूजा और आराधना करते हैं, जिस भाति हमने उन्हें भगवान के साथ प्रतिष्ठित कर लिया है, उस चित्र मे मुझे थोडी भूल दिखायी पडती है और महावीर के प्रति थोडा अन्याय दिखायी पड रहा है ।

महावीर का पूरा उद्घोष, उनके जीवन का संदेश इस बात में निहित है कि इस जगत मे कोई भगवान् नही है । उनका उद्घोष इस बात मे निहित है कि किसी की पूजा और किसी की प्रार्थना आनद का और मुक्ति का मार्ग नही है । कोई आराधना, कोई प्रार्थना, कोई पूजा सत्य तक और आत्मा तक नही ले जाती है ।

महावीर को समझना है तो प्रार्थना को, आराधना को नही, ध्यान को और समाधि को समझना होगा । प्रार्थना और आराधना भगवान् की की जाती है, किसी ईश्वर की । ध्यान उस ईश्वर सहित किया जाता है । प्रार्थना और आराधना किसी भगवान् के लिए हैं । ध्यान वह तो भीतर सोया हुआ है, उसे जगाने के लिए है ।

महावीर किसी भगवान् के आराधक नही है, किसी भगवान् के पूजक नहीं हैं, किसी भगवान् के लिए प्रार्थना करने के पक्ष मे नही हैं । उनका कहना है कि

हमारे भीतर, हमारे भीतर प्रसुप्त और सोया हुआ है, उसको जगाना है। ईश्वर कही और दूसरी जगह विराजमान नहीं है, प्रत्येक चैतन्य के भीतर सोयी हुई शक्ति का नाम है। उसे उठाना, उसे आविर्भाव करना, उसे उपस्थित करना है। इसलिए किसी की प्रार्थना नही करनी है, क्योंकि प्रार्थना कौन करे? भगवान् अगर भीतर मौजूद है, तो प्रार्थना कौन करेगा और किसकी करेगा? जो प्रार्थना कर रहा है, वही तो भगवान् है, तो प्रार्थना किसकी होगी? प्रार्थना नहीं हो सकती। लेकिन जो भीतर है, उसे जगायें और उठायें। और उसे उपस्थित करने के प्रयास वे करते हैं।

महावीर का मार्ग भक्ति का मार्ग न होकर, ज्ञान का मार्ग है।

उनका मार्ग भगवान् के लिए प्रार्थना का न हो कर, वह जो परमात्म-शक्ति प्रत्येक के भीतर प्रसुप्त है, उसको जगाने, उसे जाग्रत करने का मार्ग है।

इस सूत्र को मैं प्राथमिक रूप से इसलिए कह रहा हू कि उसे समझे बिना महावीर का परिपूर्ण रूप, उनके व्यक्तित्व का पूरा रूप, उनका पूरा जीवन स्पष्ट नही होगा।

हमने उनके भी मदिर बनाये, उनकी भी मूर्तिया बनायी! और हमने उनकी पूजा और प्रार्थना भी प्रारभ कर दी है! और हम इस भ्राति मे है, और अनेक लोग इस भ्राति के समर्थक हैं कि उनकी पूजा और प्रार्थना से, उनकी आराधना से कल्याण होगा! अनेक-अनेक लोग इस समर्थन मे प्रतीत होगे कि उनकी पूजा और प्रार्थना से कल्याण होगा! जब कि महावीर की उद्घोषणा यह है कि किसी की पूजा से और किसी की प्रार्थना से कल्याण नही आ सकता है। कल्याण तो आत्म-जागरण से होगा। किसी के नाम स्मरण से नही। महावीर कहने से नही, या अरविंद अरविद कहने से नही, बल्कि उस स्थिति मे उतरने से, जहा सब कहना बद हो जाता है। किसी नाम के उद्घोष से नही—बल्कि उस चैतन्य मे प्रवेश करने से, जहा सब नाम छूट जाते है। किसी विचार का बार-बार आवर्तन करने से नही—बल्कि उस निर्विचार दशा मे, जहा समस्त विचार विसर्जित हो जाते है, वहा उसका दर्शन होगा, उसकी अनुभूति होगी, उसका जागरण होगा, जो प्रभु है।

तो महावीर को भगवान् मानकर जो हम चल पडते है, उसमे महावीर की प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं, उसमे हमारा अज्ञान और नासमझी है। उसमे उनका सम्मान नही, हमारा अज्ञान और हमारी कमजोरी और हमारी असहाय, हमारी हीनता की धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति इतना हीन अनुभव करता है कि बिना

किसी के कल्याण किये, मेरा कल्याण कैसे होगा! सारे जगत में, सारे लोगो में ईश्वर की जो सहायक की तरह धारणा विकसित हुई है, उसके पीछे मनुष्य के मन मे छिपी हीनता और दुर्बलता है। हमे लगता है, हम इतने कमजोर, हम इतने हीन—हम अपने से कैसे आनन्द को, मोक्ष को, ज्ञान को उपलब्ध हो सकते है? तो कोई सहारा चाहिए, कोई पथ-दृष्टा चाहिए। कोई हाथ चाहिए, जो हमें आगे बढाये।

महावीर की क्राति इसी बात मे है कि वह कहते हैं, कि कोई हाथ ऐसा नही है, जो तुम्हे आगे बढाये। और उसी काल्पनिक हाथ की प्रतीक्षा मे जीवन को व्यय मत कर लेना। कोई सहारा नही है सिवाय उसके, जो तुम्हारे भीतर है और जो तुम हो। कोई और सुरक्षा नहीं है, कोई और हाथ नही है, जो तुम्हे उठा ले जाय। सिवाय उस शक्ति के जो तुम्हारे भीतर है, अगर तुम उसे उठा दो। महावीर ने समस्त सहारे छोड दिये। महावीर ने समस्त सहारो की धारणा तोड दी। और व्यक्ति को पहली दफा उसकी परम गरिमा मे और महिमा मे स्थापित किया है। और यह मान लिया है कि व्यक्ति अपने ही भीतर इतना समर्थ है, इतना शक्तिशाली है—यदि अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियो को इकट्ठा करे और अपने समस्त सोये हुए चैतन्य को जगाये, तो अपनी परिपूर्ण चेतन और जागरण की अवस्था मे, वह स्वय परमात्मा हो जाता है।

व्यक्ति के भीतर हीनता, असहाय अवस्था के बोध का विसर्जन महावीर को समझने का पहला चरण है। वे कोई सहारा, कोई काल्पनिक सहारा नही देना चाहते।

यह अद्भुत क्रांति की बात है। यह अद्भुत क्राति की बात है कि महावीर कहते हैं, 'मुझे भी पकडो मत'। मै भी तुमसे बाहर हू, मैं भी तुमसे अन्य हू, मैं भी तुम्हारी आत्मा नही हू। ससार भी बाहर है, तीर्थंकर भी बाहर हैं। पकडो मत बाहर कुछ। बाहर सारी पकड छोड दो। जब बाहर की कोई भी पकड न होगी, तो भीतर उसका जागरण होगा, उसका दर्शन होगा, जो बाहर चीजो के पकड लेने के कारण दिखायी नही पडता है। जो बाहर की चीजो से छिप जाता, आवृत्त हो जाता है, उसकी अनुभूति होगी।

यह अद्भुत क्राति की बात है कि कोई शास्ता, कोई गुरु यह कहे कि मुझे भी छोड दो।

आमतौर से गुरु कहेगा, मुझे पकडो, मेरा अनुशरण करो, मैं हू मार्ग! मेरी शरण आओ, मैं हू सब कुछ! मैं तुम्हे पार कर दूगा, मैं तुम्हे द्वार दिखा दूगा

सत्य का! मैं तुम्हे परमात्मा तक पहुचा दूगा! आमतौर से गुरु कहेगा, मैं सब कुछ हूं, मुझे स्वीकार करो। तुम नही स्वीकार करते हो, वही कमजोरी है। पूरी तरह स्वीकार करो।

महावीर बडे उल्टे व्यक्ति मालूम होते हैं। वह कहते हैं, मुझे भी छोड़ दो! दुनिया में वैसा गुरु खोजना कठिन है, जो कहे मुझे भी छोड़ दो। मेरा अनुशरण मत करो, क्योकि मैं भी बाहर हू। अपनी ही आत्मा का अनुशरण करो।

जो फर्क मे समझाना चाह रहा हू   अगर मैं आपसे कहू, मेरा अनुकरण करो, तो मेरे पीछे आप चलेंगे। यह चलना बाहर चलता है। क्योकि किसी अन्य का अनुकरण करते हैं। महावीर कहते है, बाहर किसी का अनुगमन नही करना है। बाहर के सब रास्ते ससार मे ले जायेगे।

किसी का अनुगमन नहीं करना, अपनी ही आत्मा का अनुशरण करना।

किसी के शरण में नहीं जाना, आत्म-शरण बनना।

महावीर की साधना अशरण की साधना है।

किसी की शरण नही जाना, अपनी शरण मे आना है। इस मौलिक क्रांति-कारी बिन्दु को समझ लेना जरूरी है। इसको समझ कर, फिर महावीर की साधना की क्रांति समझ मे आ सकती है।

तो मैं पहली बात आपको कहू, महावीर को भगवान् के रूप मे स्थापित करके, हम महावीर के साथ अन्याय कर रहे हैं। महावीर नही चाहते कि उन्हे भगवान् की तरह स्थापित करो। महावीर चाहते है कि तुम अनुभव करो कि तुम भगवान् हो। महावीर चाहते हैं, उन्हे परमात्मा की तरह न पूजो—तुम अनुभव करो कि तुम्हारे भीतर परमात्मा मौजूद है।

'मनुष्य की अन्तरात्मा ही परिशुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है'—यह उनका सदेश है।

और इस बात को   . यदि ठीक से दिखायी पडे, कि हमारे भीतर कौन सी चीज है, कि जिसे हम परमात्मा कह सके? जिस देह को हम जानते है, उस देह मे तो कोई परमात्मा जैसा नही है। जिस मन को हम जानते है, उसमे तो कोई परमात्मा जैसा नही है। देह तो बिलकुल पशु है। देह मे क्या है, जो पर-मात्मा हो? देह मे तो सभी कुछ पशु है। एक मनुष्य की देह मे और पशु की देह मे कोई भेद नही है। देह के अन्दर वही है, जो पशु के अन्दर है। देह की

दृष्टि से आप, पशु से—कोई भी पशु से भिन्न नहीं हैं। अगर हम अपने को देह ही मात्र समझे हैं, अगर शरीर मात्र हैं, तो पशु हैं। तो देह में तो कोई परमात्मा नहीं हो सकता। मन में शायद परमात्मा हो। मन को थोड़ा खोजें तो वहा भी पायेंगे, वहां तो पशु से भी बदतर कोई मौजूद है। इस जगत मे कोई पशु उतना बदतर नहीं है, जितना मनुष्य का मन है। कितना पाप, कितनी घृणा, कितना द्वेष, कितनी हिंसा उसके मन में परिव्याप्त है!

एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि अगर प्रत्येक व्यक्ति के मन का सारा लेखा-जोखा इकट्ठा किया जा सके, तो ऐसा आदमी पाना कठिन होगा, जो अपनी जिन्दगी में अनेक लोगो की हत्या के विचार नही करता है। ऐसा आदमी पाना कठिन होगा, जो बड़े-बड़े डाके अपने मन में नही डालता। ऐसा व्यक्ति पाना कठिन होगा, जो अनेक रूपो मे व्यभिचार की कल्पना और योजना नही बनाता। वहा मन मे, एक दो पापी नही, अनेक पापी जैसे इकट्ठे हैं। मन भी परमात्मा नही हो सकता है।

यह, महावीर कहते हैं कि तुम्हारे भीतर परमात्मा है। वह कहा होगा? यह देह तो पशु है। इसके भीतर जो मन है, वह और भी पशु से बदतर है। इस देह और मन, दोनो मे परमात्मा नही हो सकता।

लेकिन हमारा जानना, हमारा पहचानना, हमारा बोध—हमारे शरीर और मन के बाहर है। हम अपने शरीर को जानते हैं। इनके पीछे भी किसी का तो अन्तर्दर्शन नही होता है। उस अन्तर्दर्शन को उपलब्ध हुए बिना, जो शरीर और मन के पीछे है, कोई व्यक्ति इस सत्य को नहीं समझ सकेगा कि हमारे भीतर परमात्मा है। मैं किसी से कहूं, तुम्हारे भीतर परमात्मा है, तो बात बड़ी भयावनी भर होती है। ऐसा हमारा जानना नही है।

सी इ एम जोड पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक ने लिखा है, मैं सुनता हू कि पूरब के लोग कहते है, प्रत्येक के भीतर परमातमा है! मैं अपने भीतर झाकता हू तो सिवाय पशु के, किसी को भी नहीं पाता हू। फ्रायड ने भी वही अनुभव लिये है, वही निष्कर्ष लिये हैं कि मनुष्य के भीतर पशु के सिवाय और कोई भी नही है। अभी यह जितना काम हो रहा है मन के ऊपर, उसका अनुभव यह है कि आप बहुत धोखे मे है। मन में कोई परमात्मा जैसी चीज नहीं हैं। वहां परमात्मा की झलक भी नही है। अगर आधा घण्टा अपने चित्त मे चलते हुए चेतन-अचेतन विचारों की पर्तों को निरखे, उनका निरीक्षण करें, उनका

अब्जर्वेशन करें, तो बहुत घबड़ा जायेंगे, बहुत तिलमिला जायेंगे, बहुत डर मालूम पड़ेगा, बहुत नर्क मालूम पड़ेगा कि यह मेरे भीतर क्या है ? यही मैं हू, यही मेरा होना है, यही मेरी सत्ता है ! बहुत घबडाहट मालूम होगी, और उसी घबड़ाहट के कारण हममें से कोई भीतर जाना नही चाहता है ।

लाख कोई कहे अपने को जानो—अपने को अपने को हम जानना नहीं चाहते, हम अपने को जानने से बचना चाहते हैं। हम चौबीस घंटे ऐसे उपाय कर रहे हैं कि अपने से कही मिलना न हो जाय । कही एनकाउण्टर न हो जाय, मुलाकात न हो जाय। हम उसको भुलाने के हर उपाय कर रहे हैं। हमारे मनोरजन, हमारी हंसी-खुशी, हमारे आमोद प्रमोद उसको भुलाने के हैं। हमारे नशे उसको भुलाने के हैं। सगीत मे, सेक्स मे, शराब मे, हम उसको भुलाने की कोशिश कर रहे हैं।

लेकिन उस भीतर मे देखा है अपने को, जाग जागकर। जब तक जागते हैं, भुलाये रखते हैं। फिर सो जाते हैं, फिर उठते हैं, फिर बैठ जाते है ! खाली आपको अगर छोड दे, आप बहुत तिलमिलायेंगे, बहुत घबडायेंगे। यह बहुत अजीब सी बात है। अगर एक महीने आपको कोई पलायन का, एस्केप का अपने से, मौका नही दिया जाय, तो आप पागल हो जायेंगे। एक ऐसी घटना हुई है।

इजिप्ट मे एक बादशाह हुआ था। एक फकीर ने उस बादशाह से कहा कि तुम सोचते हो कि तुम बहुत समझदार हो ! तुम बहुत अज्ञानी हो। तुम सोचते हो कि आत्म-ज्ञान की बातें करते हो ! तुम अपने भीतर जाने से डरते हो। उस फकीर ने कहा, अगर एक ही मिनट तुम्हे बद कर दू, तो एक मिनट मे पागल हो जाओगे।

अगर आपको मौका न दे अपने से बाहर भागने का, किन्ही कामो मे अपने को आक्युपाइड कर लेने का, व्यस्त कर लेने का, उलझा लेने का, और आपको बार-बार अपने को देखना पडे, तो आप विक्षिप्त हो जाओगे।

बादशाह बोला, अजीब सी बात है। मैं प्रयोग करके देखूंगा।

एक भला-चगा आदमी, जो उसके द्वार से रोज निकलता था सांझ को काम करके—भरा-पूरा परिवार था, पत्नी थी, बच्चे थे, खुश नजर आता था—सुबह दफ्तर जाना, साझ लौट आना। तो उसने एक शाम को उस लौटते आदमी को मार्ग से पकडवाकर बुला लिया। उससे कहा कि तुम्हे महीने भर हम बद करते है। कोई कसूर नही है, एक प्रयोग के लिए बन्द करते है। उसके घर खबर पहुचा दी।

फिर उसकी पत्नी को कहलाया कि हमने आपके पति को बंद कर दिया है, घब-ड़ाना मत, सब खर्च मिलेगा राज्य से और महीने भर बाद उसे छोड़ देंगे। उस आदमी को महीने भर बद रखा। वह एक दो दिन चिल्लाता रहा, मुझे क्यो बद कर रहे हैं, क्यो बद कर रहे हैं, मतलब क्या है आपका, मैंने कौन सा कसूर किया? कोई उत्तर उसे भी नहीं है। उसे खाना दिया गया, वह खाना उसने फेंक दिया। उसे पानी दिया गया, उसने पानी नही लिया। वह चिल्लाता रहा, दो दिन, ढाई दिन, फिर थक गया, फिर पानी पी लिया। फिर और थक गया, फिर खाना खा लिया। फिर और थक गया, फिर चिल्लाना भी बद कर दिया। फिर वह बैठा रहता था उस कमरे मे और उसका निरीक्षण वह बादशाह करता रहता था। दिन पर दिन बीतते चले गये। वह फिर अकेले बैठे-बैठे अपने से बातें करने लगा, जोर से बातें करना लगा। वह बातें करने लगा, अपनी पत्नी से भी बातें करने लगा, अपने बच्चो से खेलने लगा वहां। उस कमरे में न पत्नी है, न बच्चे हैं।

महीना पूरा हुआ, उसकी जाच की गयी, वह आदमी पागल हो चुका था। उसे अच्छा खाना दिया जाता था, कपड़े दिये जाते थे। उसे पहनने को दिया जाता था, खाना दिया जाता था, सब सुविधा थी, असुविधा कोई भी न थी। लेकिन अपने से भागने का कोई उपाय नही दिया गया। न कोई किताब थी, न कोई अखबार था, न कोई रेडियो, न कोई मित्र, न कोई और रास्ते, जहा वह अपने को भुलाये रखे। चौबीस घण्टे उसे अपने को देखना था। वहा सिवाय पशु के और कोई भी नही था। वहा सिवाय गलत, व्यर्थ के विचारो के और कोई भी नही था। वह विक्षिप्त हो गया। अगर आप अपने मन को देखें, तो सिवाय पागल होने के और कुछ भी नही है, वहां पागल मौजूद है।

तो महावीर कहते है, वहा परमात्मा ही हो, तो कहा होगा? शरीर मे परमात्मा हो नही सकता। यह मन है, इसमे परमात्मा नही है। महावीर कहते है, वह परमात्मा जरूर है, लेकिन शरीर को भी उस तक पहुचने के लिए पार करना होता है। शरीर की पर्त के पीछे तो मन है, मन की पर्त के पीछे जाओ तो वह है, जिसे परमात्मा उन्होने कहा है।

हम अपने मकान के, जिसके तीन खण्ड है—मेरी आत्मा, मेरा मन, मेरा शरीर—हम दो ही खण्डो मे जीवन गुजार देते हैं, तीसरे खण्ड से अपरिचित रह जाते है। हम उसकी दहलान मे घूम-घूम कर जीवन व्यतीत कर देते हैं, उस आतरिक तथ्य से अपरिचित रह जाते हैं, जहा हमारा वास्तविक होना है। और उससे अपरिचित व्यक्ति निश्चित दुख मे पड़ा रह जाता है, निश्चित पीड़ा मे पड़ा

रह जाता है। निश्चित सारे जीवन दुख को मिटाने की कोशिश करता है, लेकिन दुख को नहीं मिटा सकता है। जीवन भर सुख को पाने की चेष्टा करता है, लेकिन सुख को नहीं पा सकता। क्योंकि दुख एक ही बात के कारण है, और वह यह कि वह अपने केंद्र से च्युत है। अपने केंद्र पर नहीं है, यही उसका दुख है। वह सोचता है कि वस्तुओं के न होने से वह दुख है। वह दुख नही है, क्योंकि कितने ही वस्तुए मिल जाये, सुख नहीं आता। इस जमीन पर ऐसे लोग हुए हैं, जिनके पास सब था। खुद महावीर के पास सब था। लेकिन उस सब ने उन्हें सुख नही दिया।

आज तक एक भी आदमी मनुष्य के इतिहास मे नही हुआ, जिसने यह कहा हो कि मैंने सब पा लिया और मुझे सुख मिल गया। सब पा लिया, तब भी दुख उतना ही था, जब कि सब नही पाया था। दुख मे अन्तर नही पड रहा है। जो पा लिया, उससे दुख मे अन्तर नही पड़ता है। तो फिर उस बुनियाद मे बात दूसरी होगी। दुख का सम्बन्ध कुछ पाने से नही है। दुख का सबध, जो आतरिक केन्द्र है, वह सेन्टर खोजने से है।

हम अपने केन्द्र पर नही हैं, यह हमारी पीडा है।

हम अपने केन्द्र पर आ जाय, यह हमारा आनन्द हो जायेगा।

महावीर की समस्त साधना मनुष्य को वापस केन्द्र पर कैसे लिया जाय, इसकी साधना है।

दुख और पाप, और कुछ, नही है। एक ही दुख, एक ही पाप, एक ही पीडा है कि हम अपने केन्द्र पर नही हैं। जो हमारा वास्तविक होना है, जो हमारा अथेंटिक बीइग है, जो हमारी प्रामाणिक सत्ता है, उमसे हम सबधित नहीं हैं। हम बाहर कही घूम रहे हैं। हम अपने बाहर कही चक्कर काट रहे हैं। हम अपने से अजनबी और स्ट्रेंजर हो गये है। मनुष्य के जीवन मे एक ही दीवार है, वह अपने से अजनबी हो सकता है---यह अजनबीपन, यह अपने को न जानना, यह अपने से परिचित न होना। समस्त धर्म इस परिचय की ओर ले जाने के मार्ग के सिवाय और कुछ भी नही हैं। कभी इस पर विचार करें, कभी इसको अनुभव करे, कभी इस सत्य का निरीक्षण करे---इस सत्य की मिस्ट्री को कि मैं अपने को जानता हू।

महावीर को यही पीडा पकडी। सब उनके पास है। सब उनके पास था---सारी सुविधा, सारी व्यवस्था, सारी समृद्धि। एक ही पीडा थी---खुद अपने पास

नही थे। सब उनके पास था, स्वयं अपने पास नही थे। सब उनको उपलब्ध था, स्वय की सत्ता अनुपस्थित थी। सब को जीत हो गयी थी, लेकिन स्वयं अनजीता था। सब उन्होंने जान लिया था, एक केन्द्र अनजाना और अपरिचित था। जब सबको जानकर भी कुछ न मिला, जब सबको पाकर भी कुछ न मिला, जब सबको जीतकर भी शांति न मिली, तो स्वाभाविक था कि यह विचार उठे कि जो अनजीता एक बिन्दु है, शायद आनन्द और शांति का केन्द्र वही हो।

अगर मैं इस घर में सारे कोने कोने को तलाश लू और मुझे प्रकाश न मिले, तो शायद मैं सोचूं कि जो कोना अनजाना, अपरिचित रह गया, उसे और खोज लू। जो सब पा लिया—उसे अनुभव हुआ कि सब पाने मे आनन्द नही मिला। शायद जो मैं स्वयं अपने को अनपाया छोड़ दिया, उसे पाने मे आनन्द हो। और जिन लोगों ने उस स्वय को जानने की कोशिश की, उनको अनुभव हुआ, आनन्द वहा था। आनन्द पाना था, आनन्द वहाँ मौजूद था। केवल उद्घाटन करना था। आनन्द खोजना नही था, आनन्द स्वभाव था। क्योंकि वस्त्र, आवरण अलग करने थे।

मैं एक कुएं को खुदते देखता था। मिट्टी की पर्तें अलग की गयी और नीचे से पानी के झरने आ गये। पानी वहा मौजूद था। मिट्टी से आवृत्त था। पानी लाया नही गया, केवल ऊपर के आवरण अलग किये गये, नीचे झरने फूट पड़े। ये झरने फूट पड़ने को बहुत उत्सुक थे। मिट्टी हटी नही कि उन्होने फूटना शुरू कर दिया। वे बह पड़ने की आकांक्षा से भरे बन्द पड़े थे। मिट्टी हटी नहीं और वे बहने लगे। वैसा ही हमारे भीतर आनन्द उपस्थिण हैं। क्योंकि आवृत्त मिट्टी के थोड़े से आवरण अलग करने हैं। थोड़े से ऊपर जो आवरण हैं, उनको अलग करने है।

और यह भी मैं कहता हू कि यह जो महावीर ने कहा, बुद्ध ने, क्राइस्ट ने, कृष्ण ने कहा—यह जो कहा भीतर—वहा ज्ञान, अनत ज्ञान, अनत शक्ति, अनत आनद मौजूद है। शक्ति का आनद वहा मौजूद है, केवल आवरण अलग करने हैं। यह कोई सिद्धान्त नही है, यह कोई विचार नही है, यह अनुभूति है। इसे करके जाना है। इस भांति अपने आवरण को उठाकर सच्चिदानद को अनुभव किया है। उसकी अनुभूति को दूसरे लोग न भी देख सके हो, तो भी अनुभूति से फैली हुई सुगन्ध को दूसरे लोगो ने भी अनुभव किया है। महावीर को देखकर लाखो लोगो ने अनुभव किया है, कुछ हो गया है इस आदमी मे, जो हममे नही हुआ है। कोई आनन्द इसमे प्रकीर्ण हो गया है, कोई शान्ति इसमे अविर्भूत हो

गयी है। किसी दूसरे तल पर, किसी दूसरे डायमेंशन में, किसी दूसरे आयाम मे—किसी दूसरे आकाश का पानी हो गया है। उसकी सुगन्ध, उसका सगीत, उसकी जीवन से फैलती हुई किरणें अनेको को अनुभव हुई हैं। उसके सत्य को नही अनुभव किया जा सकता, लेकिन उसकी सुगन्ध का अनुभव किया जा सकता है।

इस जमीन पर अब तक, जब भी किसी ने आनद पाया है—अपने से बाहर नही, भीतर पाया है।

मैं एक छोटी सी कहानी पढ़ता था, एक बडी मीठी कहानी पढता था।

एक सूफी फकीर स्त्री हुई। वह अपने घर के भीतर कपडे सीती थी। साझ थी, अधेरा घना हो रहा था। घर मे प्रकाश न था, गरीब थी। वह सुई को खोजती हुई बाहर दहलान मे आ गयी। वहा थोडा-थोडा प्रकाश पडता था। सूरज आखिरी डूब रहा था। वहा अब भी थोडी रोशनी थी। करीब के पडोसी ने पूछा, क्या गुम गया है? उसने कहा, मेरी सुई गुम गयी है। उसने पूछा, यह पता चले कि वह कहा गुम गयी है, तो हम उसको ढूढे। तो उस बूढ़ी स्त्री ने कहा, यह मत पूछो, मेरे दुख को मत छेडो, मेरे घाव को मत छुओ। यह मत पूछो कि कहा गुमी है। खोजो, मिल जाय तो ठीक। वह बोला, यह बडा कठिन है, सुई है छोटी, पर यह पता न हो कि कहा गुमी है, तो कहा खोजा जा सकता है? उस स्त्री ने कहा, बडी तकलीफ है, सुई जहा गुमी है, वहा प्रकाश ही नही है। और जहां प्रकाश है, वहा सुई मेरी गिरी नही है। मेरी सुई भीतर गिरी है, लेकिन वहा प्रकाश ही नही है। यहा प्रकाश है, इसलिए यहा खोजती हू, क्योकि प्रकाश मे खोजा जा सकता है।

मनुष्य के साथ भी यही दुर्घटना हुई है। हमारी आखे बाहर देखती है। हमारे हाथ बाहर फैलते हैं। हमारे कान बाहर हैं। हमारी समस्त इद्रियो का प्रकाश बाहर है। इसलिए हम बाहर खोज रहे है। लेकिन कभी यह पूछा कि गुमा कहा है, किसको खोज रहे है? अज्ञानी ढूढ रहे है, मगर वे खोज रहे हैं बिना पूछे कि गुमा कहा है! हम मारे लोग आनद को खोज रहे हैं बिना यह पूछे कि गुमा कहा है! हम सारे लोग आनन्द को खोज रहे हैं! इस जगत मे और कोई कुछ भी नही खोज रहा है। कोई कुछ नही खोज रहा है। वह मूलत आनन्द को खोज रहा है। जिसने बिना यह पूछे कि यह आनद गुमा कहा है—जिसकी तलाश है, उसे खोया कहां है? निश्चित ही अगर उसे खोया न हो, तो तलाश ही नहीं हो मकती, क्योंकि उससे परिचय ही नही हो सकता है।

मैं आपको कहूं, हम आनन्द की तलाश कर रहे हैं। यह इस बात की सूचना है कि हम आनन्द को खोये हैं। क्योंकि जिसको खोया न हो, उसकी तलाश नहीं हो सकती है। जिससे परिचय न हो, जिसकी कहीं स्मृति न हो, उसको खोजा नही जा सकता। सारे लोग आनन्द को खोज रहे हैं, बिना इस बात को पूछे कि खोया कहा है! और जब तक हम यह न पूछें कि खोया कहा है, तब तक खोज सार्थक नहीं हो सकती है, मिलना नही हो सकता है। यह पूछ ले कि खोया कहा है। और इसके पहले कि दूसरे के घर में खोजने जायं, उससे बेहतर है कि अपने घर मे खोज ले। इसके पहले कि दूसरे से पूछने जाय, इससे पहले कि जिसे जमीन पर खोजने निकले, क्या यह योग्य और उचित नहीं है कि अपने घर में पहले तलाश कर ले। वहां न मिले तो फिर दुनिया मे खोजने जाय।

हम अजीब लोग हैं, हम दुनिया मे खोजेंगे, और जब दुनिया मे नहीं मिलेगा तो अपने मे खोजेगे। दुनिया बहुत बडी है और जीवन बहुत छोटा है। अनन्त-अनन्त जीवन भी बाहर खोजे, तो दुनिया का अन्त नही। हमारे अनत जीवन नष्ट हो जायेंगे। क्या यह बात सीधी सी गणित की नही है कि इसके पहले कि मैं एक विराट दुनिया मे खोजने जाऊ, इस छोटे से अपने घर मे खोज लू। अगर वहा न मिले, तो फिर खोजने बाहर निकल जाऊ।

महावीर उसी चिन्तन से अपने भीतर खोजने गये। नही पहले दुनिया मे खोजा। सोचा पहले अपने भीतर जान ले, अगर वहा हो तो ठीक, नही तो फिर और कही चले जायेगे। और जिन लोगो ने भी इस चिन्तन का उपयोग किया, अपने ही भीतर खोजा, उन मे से कोई फिर बाहर खोजने नही गया। आज तक ऐसा नही हुआ है कि किसी ने भीतर खोजा हो और फिर बाहर खोजने गया हो। ऐसा आज तक हमेशा हुआ कि जिन्होने बाहर खोजा, वे एक न एक दिन भीतर खोजने गये। लेकिन ऐसा कभी नही हुआ कि जिसने भीतर खोजा हो, वह फिर बाहर भी खोजने गया हो। ऐसा हमेशा हुआ है कि जिन्होने बाहर बहुत खोजा, एक दिन उन्हे भीतर खोजने जाना पडा। ऐसा आज तक नही हुआ कि जिन्होने भीतर खोजा, वे फिर कभी बाहर खोजने गये। जिन्होने भीतर झाका, उन्होने पा लिया। भीतर कुछ है। भीतर कुछ अद्भुत विराजमान है। भीतर कुछ हमारा खोया है। और मैं आपको कहू, सच भी है, कभी अपने जीवन का भी विचार करे, तो सत्य की अन्तर-झलके मिलनी शुरू हो जायेंगी।

मैं आपसे पूछू, आप दुख चाहते क्यो नहीं हैं? आप आनन्द क्यो चाहते हैं? इस जमीन पर कोई भी दुख क्यो नहीं चाहता है? महावीर ने कहा है, कोई भी

दुख नही चाहता। क्यो नहीं चाहता, कभी भी पूछा? हम भी दुख नहीं चाहते, लोग भी दुख नही चाहते, लेकिन क्यो लोग नही चाहते। बडी अजीब बात है, हम जीवन भर दुख नही चाहते, लेकिन यह नही पूछते कि हम क्यो दुख नही चाहते? अगर यह पूछें तो एक अद्भुत उत्तर आपको ज्ञात होगा। अगर आप दुख नही चाहते हैं तो उसका अर्थ यह हुआ कि दुख विजातीय है, दुख फॉरेन है। आपके स्वरूप के विपरीत है, इसलिए नही चाहते हैं। मेरा स्वरूप कही न कही आनन्द होगा, इसलिए दुख को नही चाहते। अन्यथा दुख की न-चाह पैदा न होती। दुख को न–चाहने का अर्थ है कि भीतर कही आपका स्वरूप आनन्द है, इसलिए दुख नही चाहते। सच तो यह है कि अगर आपका स्वरूप दुख होता, तो दुख का आपको पता भी नही चल सकता था। अगर मेरा स्वरूप दुख होता तो मुझे दुख का पता नही चल सकता था। बल्कि जब दुख आता, तो मैं और प्रेम से उसे ग्रहण कर लेता। वह तो मेरे स्वरूप को और समृद्ध करता। लेकिन कोई दुख को ग्रहण नही करना चाहता है। यह इस बात की सूचना है कि दुख स्वरूप को समृद्ध नही करता है, दुख स्वरूप को बढाता नही है। दुख स्वरूप के विपरीत है, अनुकूल नही।

अगर दुख स्वरूप के विपरीत है, तो स्वरूप आनन्द होगा। हम आनन्द को चाहते हैं, क्योकि हमारा स्वरूप आनद है। हममे से कोई मृत्यु को नही चाहता, क्योकि हमारा स्वरूप अमृत है। हममे से कोई अधेरे को नही चाहता, क्योकि हमारा स्वरूप प्रकाश है। हममे से कोई भय को नही चाहता, क्योकि हमारा स्वरूप अभय है। हममे से कोई दीन-हीन होना नही चाहता, क्योकि हमारा स्वरूप प्रभु है। अगर इस बात को समझें कि जो जो हम नहीं चाहते है, वह हमारे स्वरूप की ओर सकेत है, वह हमारे स्वरूप की ओर इशारा है। जो जो हम नही चाहते, उससे भिन्न हमारा स्वरूप होगा। यह चिन्तन जिसमे हो पाये, जिसका अन्तस्तल इस आन्दोलन से प्रमित हो जाय, यह पीडा और व्यथा जिसे पकड ले, यह सोच-विचार जिसे पकड ले—यह जीवन के एक-एक सत्य को पकड कर खीचना शुरू हो जाय कि मैं दुख क्यो नही चाहता। मैं आनन्द को खोज रहा हू, लेकिन मैंने आनन्द को खोया कही नही है।

अगर यह चिन्तन शुरू हो जाय, तो व्यक्ति के जीवन मैं इस सारे चिन्तन के परिणाम से एक अद्भुत त्याग शुरू हो जायेगा। उसकी जो वृत्ति बिना पूछे जो बाहर खोजती थी, पूछने की वजह से छिटक जायेगी, बाहर खोजने मे रूका-वट आ जायेगी और अतस्तल की तरफ, भीतर की तरफ झुकाव प्रारम्भ हो

जायेगा। इस सत्य का चिन्तन कि जो भीतर हमे मिला है, वह क्या है। इस जीवन की जो हमारी अनुभूतियां हैं, वे क्यों हैं। हम खोज रहे हैं आनंद को, क्या खोज रहे हैं, कहा खोज रहे हैं। ये प्रश्न अगर जीवंत होकर, अगर ये प्रज्ज्वलित होकर आपके सामने खड़े हो जाय तो आपमे पहली दफा धर्म की तरफ जिज्ञासा शुरू हो गयी।

धर्म की जिज्ञासा का सम्बन्ध, परमात्मा है या नहीं, इससे नही है। धर्म की जिज्ञासा का सबध, जगत को किसने बनाया या नही बनाया, इससे भी नही है। धर्म की जिज्ञासा का संबध, आत्मा एक है या अनेक, इससे भी नही है। धर्म की मूल जिज्ञासा का संबध इस सत्य से है कि जो दुख है, उसे मैं क्यो नही चाहता हूं, मैं दुख से सहमत क्यो नही हू ? और मेरी चाह आनद के लिए क्यो है ? ये बाकी जो बाते हैं, ग्रथ मे होगी, किताब मे होगी, जिदगी से इनका कोई सम्बन्ध नही है।

धर्म की जिज्ञासा जीवन के विश्लेषण से, निरीक्षण से शुरू होती है।

महावीर के जीवन–दर्शन और साधना मे सब से महत्वपूर्ण जो मुझे बात प्रतीत होती है, वह यह है कि महावीर का चिन्तन ग्रथो से शुरू नही हो रहा, जीवन से शुरू हो रहा है।

हमारा चिन्तन ग्रथो से शुरू होता है, जीवन से शुरू नही होता। इस सत्य का बहुत विचार कर लेना जरूरी है। मेरे पास लोग आते हैं। मुझ से कोई ईसाई आता है तो वह पूछता है कि क्या वह मरियम, जिनसे ईसा का जन्म हुआ था, कुआरी थी ? मैं उससे पूछता हू कि क्या फर्क पड़ेगा जानने से। यद्यपि ईसाई के सिवाय यह प्रश्न मुझसे कोई दूसरा नही पूछता है। जैन नही पूछता। जैन पूछते हैं कि निगोद क्या है ! क्योकि उसको निगोद का पता ही नही। एक मुसलमान मुझसे पूछता है कुरान किसलिए ? मुहम्मद के ऊपर ? वह किताब की किताब है। यह कोई दूसरा हिन्दू या बौद्ध नही पूछता ! क्यो ?

ये प्रश्न जिदगी के लिए किताबो के है। जो जिन्दगी का प्रश्न है, वह हिन्दू का, मुसलमान का, ईसाई का एक ही होगा। क्योकि जिन्दगी तो एक ही प्रश्न उठाती है, किताबें अलग-अलग प्रश्न उठाती हैं। और जो किताबो से प्रश्न पूछे, वे पण्डित भले हो जाय, प्रज्ञा को उपलब्ध नही होगे। वे बहुत सी बाते इकट्ठी कर लें, किताबें लिख डालें, भाषण करे, दूसरो को समझाने के योग्य अपने में दम्भ पैदा कर ले तो उसमे कोई हल नही होगा। जो प्रश्न किताबो से

उठते हैं, वे मुर्दा हैं। जो प्रश्न जिंदगी से उठते हैं, वे जीवित हैं। और जो प्रश्न जिन्दगी से उठते हैं, वे ही जिन्दगी को बदलने में समर्थ हो पाते हैं, ग्रन्थो से उठे हुए प्रश्न जिन्दगी को नही बदलते।

महावीर के लिए प्रश्न जिन्दगी से उठे। और जिन्दगी से उठे, यह पहली बात।

और दूसरी बात, उन्होने किसी के उत्तर स्वीकार नही किये, खुद उत्तर पाने की चेष्टा शुरू की। पहली बात प्रश्न जिंदगी से उठे और दूसरी बात अपने ही जीवन मे तलाश शुरू की। कही किसी से जाकर शिक्षा लेने का उपाय नही किया। जो प्रश्न किताब से उठेंगे, उनके उत्तर किताबो मे मिल जायेंगे। जो प्रश्न जीवन से उठेंगे, उनके उत्तर साधना मे मिलेंगे, यह समझ लेना जरूरी है। महावीर को जिन्दगी से प्रश्न उठे। दुख, अमुक्ति, बन्धन, एकमात्र प्रश्न है, जो महावीर के चित्त मे है। एकमात्र प्रश्न है कि दुख क्यो है, दुख का बन्धन क्यो है। और जब यह प्रश्न है, तब एक ही साधना है कि क्या दुख के बाहर हुआ जा सकता है? क्या दुख के बन्धन के ऊपर उठा जा सकता है? इसका कोई किताब उत्तर नही दे सकती। कोई रेडिमेड—किसी के उत्तर काम के नही हो सकते। इसे तो अनुभूति से जानना होगा।

जीवन से प्रश्न उठे, महावीर साधना मे गये।

किस साधना मे गये?

लोग देखते हैं, उन्होने घर-बार छोड दिया। राज्य सपत्ति छोड दी। तो लोग पूछते हैं, यही साधना थी? यह साधना नही है। जो बाहर घूमता है, उससे साधना का कोई सम्बन्ध नही है। साधना तो आतरिक है। मकान बाहर से छोड कर निकल जाना आसान है। सवाल मकान से निकल जाने का नही है, सवाल मेरी खोपडी से मकान निकल जाय उसका है।

महावीर ने महल छोडा, यह मूल्यवान नही है। महावीर के भीतर से महल छूट गया, यह सवाल है। महावीर ने धन छोडा, यह मूल्यवान नही है। महावीर के भीतर धन छूट गया, यह मूल्यवान है। महावीर जो छोड कर गये, वह मूल्यवान नही है। जो उनके भीतर से विसर्जित हो गया, वह मूल्यवान है। ससार बाहर नही है। ससार बिल्कुल बाहर नही है। ससार बडी मानसिक घटना है, बडी मेटलिटि है। यह जो दीवाल, मकान और रास्ते दिखायी पड रहे है, ये ससार नही हैं, क्योकि महावीर मुक्त होकर इन्ही रास्तो और सडको पर मे

निकलेंगे। ये संसार नहीं हैं, क्योंकि जब महावीर ज्ञान को उपलब्ध हो जायेंगे, तब भी रास्तो पर से निकलेंगे, तब भी ससार में होंगे, लेकिन आप उनको फिर सांसारिक नहीं कहते हैं! ससार मे होंगे, लेकिन सासारिक नही कहते! यह संसार नही है। ससार कुछ और है।

ससार मानसिक है, संसार भौतिक नही है।

वह जो भीतर हमारे एक संसार बन गया, वह जो हमने अपनी चेतना के इर्द-गिर्द एक दुनिया विचारों की और चित्रो की आबाद कर ली है। वह जो इल्यूजन और कल्पनाएं और स्वप्न वहां इकट्ठे हो गये हैं, वह मेरा ससार है।

ससार मेरे स्वप्नो का है, वस्तुओ का नही है।

इसलिए जो वस्तुओ को छोडने लगा है, नासमझ है। जो स्वप्नो को छोड़ने मे लगा है, समझदार है। वस्तुए नहीं बाधती हैं, वस्तुओ के प्रति देखे गये स्वप्न बाधते है। वस्तुए नही, वस्तुओ के प्रति, चीजो के प्रति कामनाए बांधती हैं। वस्तुए नही बाधती है, वस्तुओ के प्रति जगायी गयी आसक्ति बाधती है। वह मानसिक है।

क्राति ससार को छोडने मे नही है, क्रांति मन को परिवर्तित करने मे है।

अन्यथा घर-द्वार छोडकर भाग जाने से पायेंगे कि घर-द्वार पीछे चले आ रहे है। स्त्री को छोडकर पुरुष भाग जाय, पुरुष को छोडकर स्त्री भाग जाय, तो लौटकर पायेगी कि जिनको छोडकर आये है, वे साथ ही चले आये हैं। वे पीछे छूटे नही हैं। वे जरूर छूट गये होंगे—जो भौतिक पुरुष था, वह छूट गया होगा। क्योंकि वह जो कल्पना का पुरुष है, स्त्री है, वह साथ चली आयी है। पीड़ा—वह जो शरीर है स्त्री का या पुरुष का, वह थोडे दे रहा है।पीड़ा तो वह जो कल्पना है, जो स्वप्न है भीतर, वह दे रहा है। बधन तो उसका है। बधन तो उसका है, पकड तो उसकी है। वह जो भीतर विराजमान है, पकड उसकी है। उसे विसर्जित करना ससार को विसर्जित करना है। उससे मुक्त हो जाना सन्यस्त हो जाना है।

मैं स्मरण करता हू एक कथा कोरिया मे घटी। वह चित्र महावीर को समझायेगा। वह एक अन्तर्दृष्टि देगा और एक बहुत सड़ी-गली जो धारणा महावीर की साधना के पीछे बन गयी है परम्परा मे, उससे मुक्त होने मे सहयोगी होगी।

एक युवक भिक्षु और एक वृद्ध भिक्षु एक नदी के किनारे, नदी पार करते थे। एक युवती भी नदी पार करने को ठहरी थी। लेकिन पहाड़ी नाला था और

तेज धार थी और उसका साहस नही था कि नदी को पार करे। उस वृद्ध भिक्षु ने सोचा, हाथ का सहारा दे दू और नदी पार करा दू। लेकिन जैसे ही ख्याल आया, हाथ का सहारा दे दू, भीतर की सोयी हुई स्त्री के प्रति जो वासना और कामना है, वह जग गयी। हाथ की स्पर्श की कल्पना से भीतर के सोये बहुत से स्वप्न प्रगट हो गये। बहुत था दमन, बहुत था सप्रेशन स्त्री के प्रति, वह सब फिर से साकार होकर उठ आया। वह घबडाया बहुत कि वर्षों से स्त्री के प्रति विचार नहीं उठा था। अपने को देखा—मैंने भी कहा कि नासमझी की बात सोची! मुझे प्रयोजन? लोग नदी पार होगे, होते रहेगे, मुझे करना क्या है? मैं क्यो अपना जीवन इसको नदी पार कराने के कारण बिगाड दू। वह आख झुकाकर नदी को पार करने लगा। उसने उस लडकी को सहारा नही दिया। लडकी को सहारा इसलिए नही दिया कि लडकी को कोई सहारा देने मे दिक्कत होती। सहारा इसलिए नही दिया कि सहारे की कल्पना ने ही भीतर जो स्त्री का रूप था, उसे सजग कर दिया। उसने आखे झुका ली। आखे झुकाने से कोई रूप समाप्त होता है? आख झुकाने से तो वह और सुन्दर हो सकती है। आख बन्द करने से कोई रूप नष्ट होते है? आख बन्द करने से ता वह और स्वर्गीय हो जाती है। वह आख बन्द करके घबडाया, भगवान का स्मरण करने लगा और नदी पार होने लगा।

पीछे उसका साथी, एक युवक भिक्षु भी आता है। नदी पार करके उसे ख्याल हुआ, कही वह पागल लडका, वह भी उसी की तरह उस युवती की सहायता की धुन मे न पड जाय। तो उसने लौटकर देखा, वह लडका उसको कन्धे पर बिठाकर नदी पार कर रहा है! उसको सारे बदन मे आग लग गयी। वह तो कल्पना नही कर सका—कि मैं वृद्ध हुआ हू, वह तो युवा है और युवती को कन्धे पर बिठाकर पार कर रहा है! उसे कुछ समझ मे नही आया, कि क्या करे और क्या न करे। गुस्से मे बहुत देर तक बोला नही। जब दोनो आश्रम मे प्रवेश करते थे, सीढियो पर रुककर, उसने उस युवक से कहा कि सुनो, जाकर गुरू को कहूगा, और उसका तुम्हे प्रायश्चित और दण्ड देना पडेगा। उसने बोला, क्या! उसने कहा, उस लडकी को तुमने कन्धे पर क्यो उठाया? उस युवक ने कहा, मैं उसे नदी के किनारे कन्धे पर से उतार दिया था, आप तो उसे अभी भी लिए हुए हैं!

यह जो वृद्ध आदमी उसे कन्धे पर लिए हुए है, किस कन्धे पर लिए हुए है? और क्या हम अपने ससार को कन्धे पर नही लिये हुए हैं? क्या ससार कही बाहर है? क्या उन मकानो मे, और उन बच्चो मे और उन वृत्तियो मे ससार

है, जो बाहर हैं ? या कि संसार को—हम कहीं किसी काल्पनिक कन्धे पर लिये हुए हैं।

ससार को छोडकर नही भागना है, संसार को कन्धे से उतारना है।

तो महावीर जो छोड़े बाहर, वह मूल्यवान नहीं है। जो भीतर छोडा, जो कन्धे से उतारा, वह मूल्यवान है। वह कैसे कन्धे से उतारा, वही उनकी साधना है। वही उनकी बाहर तपश्चर्या मे वे कर रहे हैं। मैं सुनता हू उनकी तपश्चर्या के बाबत प्रवचन, ग्रथ देखता हूं तो मुझे बडी हैरानी होती है। उस तपश्चर्या में लोग वर्णन करते हैं कि उन्होने कितने धूप-ताप सहे, वे कितने दिन भूखे रहे, वे किस तरह से वस्त्र त्याग कर नग्न रहे। उनको किस-किस तरह की पीडा और परेशानी आयी। और किस-किस तरह लोगो ने सताया और वे कुछ न बोले, इसका वे वर्णन करते हैं। इस सबका साधना से कोई सबध नही है। यह नही है असली बात। असली बात यह नहीं है कि महावीर के बाहर क्या नाटक घटित हो रहा है। असली बात यह है कि महावीर के भीतर क्या हो रहा है? इस बाहर होने मे—महावीर धूप मे खडे हैं कि सर्दी मे, यह तो शरीर खडा है। यह सवाल नही है, सवाल यह है कि महावीर का चित्त कहा है। महावीर खुद धूप मे खडे है, या भूखे खडे हैं, उपवासे है, यह सवाल नही है—महावीर का चित्त कहा है। अगर महावीर उपवासे खडे है और चित्त भोजन पर है, तब उपवास तो व्यर्थ हो जायेगा। अगर महावीर धूप मे खडे हैं और चित्त अगर किसी छाया में कही हो, तो धूप मे खडा होना तो व्यर्थ हो जायेगा न ? महावीर कहा खडे हैं, यह सवाल नही है—महावीर का चित्त कहा है। महावीर क्या कर रहे है, वह सवाल नही है—महावीर का चित्त क्या कर रहा है।

हमारा चित्त कुछ न कुछ कर रहा है—कुछ न कुछ कर रहा है। महावीर की साधना इस बात की है कि चित्त ऐसी स्थिति मे हो, जहा वह कुछ भी नही कर रहा है। क्योकि चित्त कुछ भी करेगा—सब करना ससार को खडा करना होगा। वह पीछे से कुछ भी करेगा तो सिवाय चित्रो के बनाने के और कुछ भी नही कर सकता है। उसका एक ही काम है। चित्त जो है, चित्रकार है। मेरी समझ जो है—चित्त चित्रकार है। उसका एक ही काम है कि वह चित्र बना सकता है। और कोई काम नही कर सकता। और वही चित्त रहा तो संसार मे उलझा सकता है, और कोई काम नही कर सकता है। तो चित्र और स्वप्न खडे करना, स्वप्न का सृजन करना, चित्त का काम है। तो चित्त जब तक काम करेगा, तब तक वह स्वप्न और चित्र को खडे करेगा और मन को उलझायेगा।

ससार को भगवान् नहीं बनाता, ससार को चित्त बनाता है।

स्मरण रखें, ससार को भगवान नहीं बनाता, संसार को चित्त बनाता है।

यह चित्त जब तक सक्रिय है, तब तक ससार है। चित्त निष्क्रिय हो जाय, संसार से आप बाहर हो गये। चित्त सक्रिय है, तो बन्धन है, चित्त निष्क्रिय हो गया, तो मुक्ति है।

तो महावीर चित्त को ऐसी स्थिति में ले जा रहे हैं, जहा उसकी सक्रियता क्षीण से क्षीण होकर विलीन हो जाय, जहाँ सक्रियता कुछ नही होते-होते शून्य हो जाय।

साधना है चित्त को शिथिल करने की और सिद्धि है चित्त के शून्य हो जाने की।

ध्यान है चित्त को शिथिल करना, निष्क्रिय करना और समाधि है चित्त का निष्क्रिय और शून्य हो जाना।

महावीर की साधना चित्त को शिथिल करने की है और उपलब्धि चित्त को शून्य करने की है।

चित्त की सक्रियता से मैंने कहा, ससार मिलता है। और उसी समार के स्वप्न बिन्दुओ मे हम खोये-खोये उसे भूल जाते है, जो हम हैं! वह जो भीतर है, उसका विस्मरण हो जाता है!

आप कभी चित्र देखते हो, कभी फिल्म देखते हो, कभी नाटक देखते हो, एक अद्भुत बात अनुभव की होगी—फिल्म देखते-देखते आप इतने तल्लीन हो जायेंगे कि आपको यह पता नही रहेगा कि आप भी है! जब पर्दा वहा खाली होगा, तब अचानक आपको चौककर पता चलेगा, दो घण्टे बीत गये, हम भी थे इसका पता न रहा! उस चित्र मे, उस कथा मे हम भी एक पात्र हो गये! क्या कई दफा अनुभव नही हुआ कि उन पात्रो के साथ आप रोने लगे हैं और उन पात्रो के साथ आप हसने लगे हैं? तो पर्दा जब खाली हो गया और लोग उठने लगे, आपने अनेक बार अपने आसू भी छिपा लिये कि पडोस का आदमी न देख ले कि चित्र देखकर रोते थे? लेकिन चित्र को देखकर आप रोते थे, बडी हैरानी की बात हैं। चित्र इतने प्रभावी हैं कि उनमे आप रोते भी है हसते भी हैं, और जानते हैं भली–भाति कि वहा पर्दे के सिवाय कुछ भी नही है! भली-भाति जानते हैं, खुद ही पैसे दिये हैं, भली-भाति पता है कि वहा सफेद पर्दे के सिवाय कुछ भी नही है। और पीछे से केवल विद्युत की किरणें फिकने से चित्रो का भ्रम हो

रहा है, चित्र भी वहां नहीं है। लेकिन फिर भी रोते हैं और हंस लेते हैं! चित्र का बड़ा प्रभाव है।

चित्र का प्रभाव ही अज्ञान है।

चित्र के प्रभाव से मुक्त ज्ञान है।

वह रोज-रोज आप देखते रह जाते हैं, चौबीस घण्टे मन के पर्दे पर फिल्म चल रही है। आप अपने ही बनाये सिनेमा-गृह में रोज-रोज बैठे हैं—चौबीस घण्टे! मजा यह है कि आप ही तो पात्र हैं, आप ही देखने वाले, आप ही नाटक खड़ा करने वाले, आप ही प्रोजेक्टर, आप ही पर्दा, आपके सिवाय कोई भी नहीं है! इसलिए महावीर ने कहा, आत्मा ही बंधन है, आत्मा ही मोक्ष है। तो सारा बन्धन आपने ही बनाया हुआ है। आपकी ही प्रसुप्त कल्पना है—आपकी कल्पना का ही खेल है। तो वह आप सारा बनाये हुए हैं। महावीर उस पूरी साधना में उन चित्रो को पोछकर पर्दे को सफेद करने मे लगे हैं—कि ऐसी घड़ी आ जाय कि पर्दा सफेद हो जाय। पर्दे के सफेद होते ही एकदम याद आयेगा, अरे, मैं भी हू! मैं चित्रो मे भूल गया था। एक दफा चित्त शून्य हो जाय, आत्म-ज्ञान शुरू हो जायेगा। वहा चित्त शून्य हुआ, यहा आत्मज्ञान का उद्भावन्, जागरण शुरू हुआ।

महावीर की साधना चित्त को शून्य करके, चित्रो से मुक्त होकर, उसको जानने की है, जिसका नाम चैतन्य है। जो चित्रो को जानेगा, वह चैतन्य को नही जानेगा। जो चित्रो को विलीन कर देता है, वह चैतन्य का अनुभव करता है, उसका ज्ञाता बनता है। उस ज्ञान का उसे बोध होता है। उस बोध का, उस आत्म-दर्शन का महावीर की सपूर्ण साधना मे केंद्रीय स्थल है। लोग समझते हैं, महावीर की साधना अहिंसा की है। नही। लोग समझते हैं महावीर की साधना ब्रह्म जैसी है। नही। लोग समझते हैं महावीर की साधना सत्य की है। नही। महावीर की साधना आत्मा की है और आत्म-अनुभव के परिणाम मे सत्य, ब्रह्म-चर्य, अहिंसा भी उपलब्ध होते हैं। यह आत्म-अनुभूति के फूल हैं। जो आत्मा को जानता है, वह असत् से उसी क्षण मुक्त हो जाता है। जो आत्म को जानता है, वह अब्रह्म से मुक्त हो जाता है। जो आत्म को जानता है, वह हिंसा से मुक्त हो जाता है। आत्म-ज्ञान के परिणाम स्वरूप उसके जीवन मे अहिंसा, सत्य और ब्रह्म फलित होते हैं। लोग सोचते है, अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य साधन हैं, जिनसे आत्मा उपलब्ध होगी! मैं विपरीत सोचता हू। वे साधन नहीं है, साधन तो चित्त-विसर्जन है। साधन तो ज्ञान है, साधन तो समाधि है, साधन तो योग है।

साधन वे नहीं हैं, वे तो साधना के परिणाम हैं। वे तो जब आत्म-अनुभव होगा, तो उस अनुभूति के फूल हैं। उनसे पहचाना जायेगा कि ज्ञान उपलब्ध हुआ या नही। उनसे ज्ञान पाया नही जाता।

महावीर ने कहा है, अहिंसा ज्ञान का फल है। इस बात पर कोई विचार नही करता! महावीर कहते हैं, अहिंसा ज्ञान का फल है। अगर ज्ञान का फल है तो ज्ञान पहले होगा, कि अहिंसा पहले होगी? पहले ज्ञान है, फिर दया, फिर अहिंसा। महावीर कहते है, जो ज्ञान को उपलब्ध हो गया, वह आचरण को उपलब्ध है। जो ज्ञान को नही उपलब्ध है, उसका सब आचरण मिथ्या है। ये स्पष्ट सूत्र हैं। अगर थोडा विचार किया जाय तो यह दिखायी पडेगा कि महावीर की साधना, नैतिक साधना नही है, आत्मिक साधना है। अहिंसा तो, सत्य तो, ब्रह्मचर्य तो साधना नीति है। आज दुनिया में जो भ्रम पैदा हुआ है, वह वही भ्रम पैदा हुआ है कि नीति को साधो, तो धर्म मिल जायेगा। मैं ऐसा नही मानता। मैं मानता हू, धर्म को साधो, तो नीति मिल जायेगी। जो नीति को साधेगा, वह धर्म को नही पा सकता। वह नीति को साधकर केवल एक अहकार को भर उपलब्ध हो सकता है। मैं सत्यवादी हू, मैं ब्रह्मचारी हू, मैं त्यागी हू, मैं साधु हू, मैं मुनि हू, ऐसे किसी दम्भ को भले उपलब्ध हो जाय, लेकिन उस परम-साधुता को उपलब्ध नही होगा, कि जहा दम्भ का कोई निशान भी नही पाया जाता।

नैतिक-साधना अहकार को परिपुष्ट करती है, आत्म-साधना अहकार को विसर्जित करती है।

इसलिए नैतिक लोगो मे एक छिपे हुए अहकार का बोध आपको निरन्तर होगा। उस तरह के साधु मे एक प्रसुप्त दम्भ का बोध आपको निरन्तर होगा। उस तरह के साधु मे एक छिपे हुए क्रोध का आपको निरन्तर बोध होगा। उन ऋषियो को हम जानते हैं, जो क्रोध मे लोगो को अभिशाप दे दे। वह क्रोध उन्हे कहा से है? क्योकि जो अभिशाप दे सकता है, उसमे अत्यत प्रज्ज्वलित क्रोध होना चाहिए। वह क्रोध उनको इसीलिए है कि उनकी साधना आत्मिक नही, केवल नैतिक है। नैतिक-साधना के परिणाम मे आत्म-ज्ञान नही आता, यद्यपि धार्मिक-साधना के परिणाम मे नीति अवश्य आ जाती है।

नैतिक-साधना पुण्य की साधना है। धर्म की साधना पुण्य की साधना नही है, शुभ की साधना है। शुभ, पुण्य और पाप से पृथक है। न तो पुण्य पकडता

है, न तो पाप वहां पकडता है। जहां पाप और पुण्य दोनों पृथक होते है—और मैं अनुभव करता हूं कि मैं दोनों से मुक्त हू, उस अनुभूति में धर्म का जन्म होता है।

धर्म की साधना, शुभ की साधना है।

नीति की साधना पुण्य की साधना है। नीति की साधना केवल नैतिकता तक ले जा सकती है। धर्म की साधना मुक्ति तक ले जाती है। नैतिक धार्मिक नही हो पाता, लेकिन धार्मिक तो अनजाने, अनायास नैतिक हो जाता है।

महावीर कोई नैतिक पुरुष नही हैं। बडे से बडे लोगो को मैं देखता हू, वे लिखते हैं, महावीर बडे नैतिक पुरुष हैं। महावीर नैतिक पुरुष नहीं है, महावीर आत्मज्ञ है। महावीर आत्म को उपलब्ध हुए हैं। नीति तो उसका परिणाम है सहज। अपने आप आ जाती है, उसे लाना नही पडता है।

अगर हम महावीर के इस केन्द्रीय विचार को समझे—आत्म उपलब्धि को, इस पर थोडा चिन्तन करें, इस पर थोडा मनन करे और इस बात को समझे कि चित्त हमारा ससार है। चित्त को धीरे-धीरे बिसर्जित करे, चित्त को धीरे-धीरे शून्य की तरफ ले चले। एक घडी आयेगी, जब चित्त शून्य हो सकता है। अगर उसके साथ सहयोग न करें, जैसा मैंने सुबह कहा, नान-कोआपरेशन, अगर चित्त के विचारो के साथ नान-कोआपरेशन करें, चित्त के साथ सहयोग न करें। विचार आते हो, आने दे, आप सहयोग न दे, अपने को दूर खडा कर ले, जैसे आप केवल तटस्थ दृष्टा मात्र है। विचार को चलने दे, आप चुपचाप देखते रहे। कोई सहयोग न दे। आपका सहयोग ही विचार की शक्ति है। वह जो चित्त पर चित्र चलते हैं, उन्हे देखकर आप रोते हैं। चित्र आपको नही रुला रहे है, आप ही चित्रो से जो अपने को सयुक्त कर रहे है, उससे तादात्म्य कर रहे है। अगर आप होश से भरे हो और जाने कि पर्दे पर चित्र है, आपका तादात्म्य उनसे न हो, आप तटस्थ दृष्टा मात्र हो, भोक्ता न हो वहा, आप उस नाटक के हिस्से न हो जाय, साक्षी मात्र हो, केवल विटनेस मात्र हो तो आप हैरान होगे, चित्र चले जायेंगे पर्दे पर आकर, आप वैसे के वैसे बैठे हैं, कि जैसे बैठे थे। आप मे कोई राग, कोई द्वेष उदय नही हुआ। आपने कोई रुदन और हास्य नहीं पकडा, आप तटस्थ, दृष्टा मात्र है। जो इस भाति विचार को देखेगा, प्रति योग से, तटस्थ दृष्टा मात्र होकर, वह क्रमश विचार मुक्ति को उपलब्ध होता है, वह आत्म भय से निकल सकता है।

महावीर का एक शब्द है, एक ही शब्द है उनकी समस्त साधना का, और वह शब्द है आत्म-दर्शन। उस एक शब्द को जो उपलब्ध हो जाय, वह उसको अनुभव कर पायेगा। किस महत्वपूर्ण, किस वैज्ञानिक सत्य को उन्होने हमे दिया है! पर हम इतना कर रहे हैं कि उनको रखकर पूजा कर रहे हैं। और उनके ग्रन्थों को रख कर क्षेत्र चल रहे हैं! और उनके शास्त्र वचनो को दीवालो पर लिख रहे हैं! आश्चर्यजनक है कि हम अपने सद्पुरुषो के साथ कैसा अन्याय कर रहे हैं। हम सोचते हैं, हम उनका सम्मान कर रहे हैं! हमारा सब सम्मान उनका अपमान है। क्योकि वह जो कह रहे हैं, हम सब उसके विपरीत कर रहे हैं। महावीर का सम्मान एक ही बात से है कि आत्मज्ञानी बनो। महावीर के स्मरण मे महावीर का सम्मान नही है। मत करो स्मरण, उससे कोई सम्बन्ध नही है। अगर आत्मज्ञानी बनते हो तो स्मरण करो या न करो, महावीर के होगे ही। और तुम महावीर का लाख स्मरण करो और आत्मज्ञानी नही बनते, तो तुम महावीर के नही हो। जिसको महावीर का होना है, उसको महावीर की फिक्र छोड देनी चाहिए और उसकी फिक्र करनी चाहिए, जो भीतर बैठा है। और जिसने उसकी फिक्र छोड दी, वह महावीर को कितना ही लिये हो, वह महावीर का नहीं हो सकता है। इस एक सत्य को स्मरण रखें।

जगत मे जो लोग भी जागृत हुए हैं, जिन्होने अपने को जाना है, उनकी शिक्षा एक छोटी सी बात मे है, और वह यही है कि आनन्द भीतर है, भीतर लौटे। भीतर लौटने का उपाय है, चित्त को विसर्जित करे चित्त के प्रति तटस्थ दृष्टा बनें, दर्शक बनें। चित्त लीन, विलीन हुआ—आप अपने को जानेगे, अपना रास्ता खोजेगे। और कैसे आनन्द की ज्योति वहा अनुभव होती है, कैसे प्रकाश से वहा भर जायेंगे, कैसी घनीभूत शाति मे वहा उतर जायेंगे, इसे शब्द मे कहने का कोई उपाय नहीं है।

महावीर ने कहा है, उस अनुभूति को कहने मे पूरे शब्द चुक जाते है। महावीर ने कहा है, उसे कहने को कोई शब्द नही है। जिसे नि शब्द मे जाना जाता हो, उसे शब्द मे नही कहा जा सकता। जिसे चित्त को खोकर पाया जाता हो, उसे कहने का चित्त के पास कोई मार्ग नही है। मैं उस सम्बन्ध मे कुछ भी कहू, आज तक कभी किसी ने कुछ कहा नही है। लेकिन उस तरफ इशारे किये गये हैं। उस तरफ इगित किये गये हैं। और महावीर—इस जमीन पर इतिहास ने तो बडे से बडे इशारे किये हैं, उनमे से एक इशारे हैं। महावीर अगुली की तरह उठे हैं उस सत्य की तरफ। लेकिन हम नासमझ होगे, अगर उस अगुली

की पूजा करने लगें। और उस तरफ न देखें, जहा अंगुली उठी है। लोग महावीर की पूजा कर रहे हैं! महावीर केवल एक इशारे हैं, उस आत्म-सत्ता की ओर, जो सबके भीतर विराजमान है।

वहा जापान मे एक मदिर है, उसकी बात कहकर अपनी चर्चा को पूरी करूगा।

जापान मे एक मदिर है, उसमे बुद्ध की प्रतिमा नही है। उस मंदिर मे अन्दर केवल एक अंगुली बनी हुई है बुद्ध की, ऊपर एक चाद बना हुआ है। लोग जाकर हैरान होते हैं और लोग जाकर पूछते हैं कि यह क्या है? नीचे बुद्ध का एक वचन खुदा हुआ है। बुद्ध ने कहा है, मैंने अगुली दिखायी है चाद की तरफ, लेकिन मैं जानता हू कि तुम नासमझ हो, चाद तो न देखोगे, अगुली की पूजा करोगे।

महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट, कृष्ण इशारे है। उनकी पूजा नही करनी है, उस तरफ देखना है, जिस तरफ वे इशारे है। और उस तरफ कोई और नही, आप हैं। उस तरफ कोई और नही, मैं हू। वह इशारा किसी और की तरफ नही, हमारी अतरात्मा की ओर है।

अगर महावीर जयती के इस स्वर्ण स्मरण दिवस पर एक बात आपके भी ख्याल मे पैदा हो जाय कि भीतर को तरफ देखना है, तो सारा जीवन सार्थक हो गया। उसके पूर्व न कोई सार्थकता है, न कोई आनन्द है, न कोई शाति है, न कोई जीवन है। उसके पाने के बाद सारा जीवन अमृत मे, सच्चिदानद मे परिणत हो जाता है।

मेरी बातो को इतनी प्रीति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हू और सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हू, और आशा करता हू कि आज नही कल, वह जो प्रसुप्त है, जागेगा और हम आनन्द को, परम-जीवन के अनुभव को उपलब्ध हो सकेंगे।

सायन, बम्बई, दिनांक २४ अप्रैल १९६४

स्वरूप में प्रतिष्ठा

मेरे प्रिय आत्मन्,

मैं देश के कोने-कोने गया हू । हजारो आँखो, लाखो मे देखने का मौका मिला है । जैसे मनुष्य को देखता हू—ऊपर से हसने की, आनद की, सुख की झलक दिखायी पडती है, पर पीछे घना दुख दिखायी पडता है । इस दुख का फल यह हुआ है कि सारी पृथ्वी धीरे-धीरे दुख से भर गयी है । यदि एक भी व्यक्ति दुखी है तो परिणाम मे अपने से बाहर दुख को फेकता है । व्यक्ति का दुख ही फैलकर सारे जगत का दुख हो जाता है । एक व्यक्ति के भीतर से जो दुख का धुआ उठता है, वह सारी समष्टि को दुख और पीडा से भर देता है । आज जो सारे जगत मे दुख, पीडा और हिंसा मालूम होती है, वह जो विनाश के प्रति इतनी आकाक्षा मालूम होती है, वह जो विनाश के प्रति इतनी आकाक्षा मालूम होती है, उसके पीछे एक ही कारण है, व्यक्ति की अतरआत्मा दुखी है । जो दुखी है, वह किसी को भी दुख के अतिरिक्त कुछ भी नही दे सकता । मेरे भीतर जो है, वही मेरे बाहर, मेरे आचरण मे, मेरे व्यवहार में फैल जाता है । मेरे भीतर केन्द्र पर जो है, वही परिधि पर आ जाता है । ढाई अरब लोग अगर भीतर दुख और पीडा से भरे हो, तो परिणाम स्वाभाविक है कि सारा जगत दुख और पीडा से भर जायेगा । परिणाम मे स्वाभाविक है कि सारे जगत मे हिंसा और विनाश दिखायी पडे ।

पिछले पचास वर्षों मे दो महायुद्ध हमने लडे । दो महायुद्धो मे दस करोड लोगों की हत्या हुई । इससे मुझे कोई आश्चर्य नही होता और न मैं इससे हैरान हू कि दस करोड लोग मरे । इस जगत मे जो पैदा होता है, मर जाता है । हैरानी इस बात की है कि हम दस करोड लोगो को शान्ति से समाप्त कर सके । उनके

मरने का प्रश्न नहीं है। के दिन, दो दिन बाद मर जाने को थे। कोई भी जियेगा नहीं, लेकिन हम ये सभी दस करोड़ लोगो की हत्या शांति से कर सके, यह बहुत विचारणीय है। हमारे भीतर पशु इतना जागृत कैसे हो गया है? हमारे भीतर निकृष्टतम, हमारे भीतर अधेरा, इतना मुखर क्यों हो गया है? मनुष्य को क्या हो गया है, यह विचारणीय हो गया है। और अब, जब कि हम तीसरे विनाश की तैयारी मे हो, जो कि सभवत. अतिम विनाश होगा। आइन्स्टीन ने मरने के पहले कहा था—किसी ने पूछा था, तीसरे महायुद्ध मे किस अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग होगा? आइन्स्टीन ने कहा, तीसरे का तो मुझे पता नही, लेकिन चौथे के बाबत मुझे मालूम है। पूछने वाला हैरान हुआ होगा। तीसरे के बाबत ज्ञात नहीं है, चौथे के बाबत क्या ज्ञात है! उसने पूछा, क्या ज्ञात है? आइन्स्टीन ने कहा, अगर चौथा महायुद्ध हुआ, जिसकी कोई सभावना नही है, तो आदमी पत्थर के औजारो से लड़ेगा। क्योकि तीसरा उसके सारे विकास को, उसकी सारी समृद्धि को समाप्त कर देगा। सभावना तो इसकी है, उसको परिपूर्णतया नष्ट कर दे।

और जिस हिंसा के प्रति महावीर और बुद्ध ने और ईसा ने चेताया था—हिंसा की अतिम परिणति महामृत्यु हो सकती है, और कुछ भी नहीं। वह हिंसा धीमी थी, अल्प थी, चलती गयी। उस हिंसा के कारण जीवन चल रहा था, हिंसा टोटल नही थी। हिंसा आशिक थी, शेष अहिंसा थी जीवन मे। इसलिए हिंसा के साथ भी मनुष्य चलता रहा। पहली बार हम ऐसे स्थान पर आये हैं, जहा हिंसा टोटल हो सकती है, जहा हिंसा समग्र हो सकती है। समग्र हिंसा के बाद जीवन की कोई सभावना नही है। हिंसा पूर्ण हो जाय, तो स्वय अपना आत्मघात कर लेगी। वे हिंसक प्रवृत्तियां, जिनका सारे धर्मों ने विरोध किया है, विशेषतया श्रमण धर्मो ने, जिस हिंसा के लिए पच्चीस सौ वर्ष पहले आवाज उठायी थी, वह भविष्यवाणी पूरे होने के करीब पहुच रही है। जो आने वाला, सभावी युद्ध होगा, वह किसी तरह के प्राण को जमीन पर नही बचने देगा।

मैं पढता था, पानी को हम गर्म करते है, सौ डिग्री पर पानी भाप हो जाता है। लोहे को अगर गरम करे, पद्रह सौ डिग्री पर लोहा पिघल कर पानी हो जाता है। पच्चीस सौ डिग्री पर लोहे का जो तरल रूप है, वह भाप बनकर उड जाता है। एक हाईड्रोजन बम कितनी गर्मी पैदा करेगा, आपको ज्ञात है? दस करोड डिग्री! पच्चीस सौ डिग्री पर लोहा भाप होकर उड जाता है। हाईड्रोजन बम दस करोड डिग्री गर्मी पैदा करेगा! क्या बचेगा उस उष्णता मे? उस उतप्तता में ऐसा प्रतीत होगा, जैसे सूरज जमीन पर उतर आया हो। किसी तरह के

जीवन की कोई सभावना न रह जायेगी। एक हाईड्रोजन बम पैंतालीस हजार वर्गमील क्षेत्र को प्रभावित करता है। इग्लैंड, फ्रास, या पश्चिम जर्मनी जैसे देश को नष्ट करने को केवल पद्रह हाईड्रोजन बम पर्याप्त हैं। और आपको ज्ञात है, सारी दुनिया में इस समय तैयार हाईड्रोजन बम की सख्या पचास हजार है। ये पचास हजार हाईड्रोजन बम इस तरह की तीन जमीनो को नष्ट करने को पर्याप्त हैं। और प्रति घण्टा—मैं घण्टे भर बोलूगा, प्रति घण्टा पचास करोड रूपया इस तरह के विनाशक अस्त्रो को तैयार करने मे सारी दुनिया मे खर्च हो रहा है! प्रति-घण्टा! दो घण्टे मे एक अरब रूपया! चौबीस घण्टे मे बारह अरब रूपया! जबकि हर तीन आदमियो मे दो आदमी भूखे हैं! जबकि हर तीन आदमियो मे दो आदमी पूरी जमीन पर भूखे हैं! तो हम जरूर कुछ पागल हो गये हैं। हम जरूर विक्षिप्त हो गये हैं। हम सभी होश मे नही हैं। हम कुछ नशे मे हैं और जैसे हमे कुछ पता नही कि हम क्या कर रहे है! हमारे हाथ हमारी मौत का आयोजन कर रहे हैं, और हमे कुछ भी ज्ञात नही है!

एक छोटी सी कहानी आपसे कहू—एक बिल्कुल काल्पनिक कहानी, कही सुनी थी, बहुत प्रीतिकर लगी।

ईश्वर ने यह देखकर कि मनुष्य को यह क्या हुआ जा रहा है, यह मनुष्य अपने हाथ से अपनी मृत्यु के आयोजन मे इतना उत्सुक क्यो हो गया है, दुनिया के तीन बडे राष्ट्रो के प्रतिनिधियो को अपने पास बुलाया। मैंने कहा, कहानी काल्पनिक है, झूठी, कही कोई ईश्वर ऐसा बुलाने को नही है, पर कहानी मे एक सत्य बहुत उभर कर जाहिर हुआ है। उसने अमरीका को, ब्रिटेन को, रूस को बुलाया। इन देशो के प्रतिनिधि उससे मिलने गये थे। ईश्वर ने कहा, मेरे मित्र, बहुत सदिया देखी। मनुष्य का लबा इतिहास देखा। पर इतना विक्षिप्त—इतनी समृद्धि के बीच, इतनी शक्ति के बीच, अपने को ही आत्मघात करने वाला कोई जमाना मैंने नही देखा है! मैं हैरान हुआ हू कि यह क्या कर रहे हो? तुम्हारे किये का अतिम परिणाम क्या होगा? अगर मैं कुछ सहायक हो सकू और मनुष्य बच सके, तो मुझसे वरदान माग लो। मैं अगर मनुष्य के भविष्य के लिए कुछ कर सकूं, तो वरदान देने को तैयार हू। तुम तीनो माग लो तीन वरदान। मनुष्य बच जाय, यह मेरी आकाक्षा है।

अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, मेरे मालिक, इससे सुखद और क्या होगा, एक वरदान दे दें। और हमे कुछ भी नही चाहिए, एक ही आकाक्षा है हमारी

कि जमीन तो हो, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाय। ईश्वर ने वरदान दिये होंगे बहुत, बहुत मांगें पूरी की होंगी, ऐसी मांग कभी उसके सामने आयी नहीं। उसने उदास घूमकर रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा। वह बोला, महानुभाव, एक तो हमें आप पर कोई विश्वास नही है। इसे हम नही मानते कि कही ईश्वर है। लेकिन मान लेंगे तुम्हें भी और उन चर्चों मे भी जहां से तुम्हारे सब निशान मिटा दिये गये है, वापस तुम्हे प्रतिष्ठित कर देंगे, यदि एक ही बात, एक ही आकाक्षा पूरी हो जाय। ईश्वर ने पूछा, कौन सी आकांक्षा? रूस के प्रतिनिधि ने कहा, नक्शे तो हो जमीन पर, पर अमरीका के लिए कोई रग-रेखा न रह जाय। ईश्वर ने घूमकर ब्रिटेन के प्रतिनिधि को देखा। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने कहा, मेरे प्रभु, हमारी अपनी कोई आकाक्षा नही है, इन दोनो की आकांक्षाए एक साथ पूरी हो जाए, तो हमारी आकाक्षा पूरी हो जायेगी।

ऐसी सदी को होश में कहियेगा? ऐसे मनुष्य को जागा हुआ कहियेगा? ऐसे युग को स्वच्छ कहियेगा?

विक्षिप्त है यह युग। और इस सत्य को जितना शीघ्र समझ ले, उतना उचित है, अन्यथा अपने ही विक्षिप्त आयोजन हमारी मृत्यु बन जा सकते हैं। यह विक्षिप्तता कैसे पैदा हो गयी है? यह पागलपन कैसे आ गया? और क्या ऊपर का कोई उपचार—अहिंसा पर दिये गये प्रवचन और अहिंसा पर लिखा गया साहित्य और अहिंसा के पक्ष मे बोली गयी बातें इस विक्षिप्तता को तोड सकेगी? यह विक्षिप्तता टूट जानी इतनी आसान नही है। यह विक्षिप्तता ऊपर से आरोपित नही है, यह विक्षिप्तता कही भीतर से विकसित हुई है। इस विक्षिप्तता की कही मनुष्य के मन मे, बुनियाद मे जड़े हैं। मनुष्य की प्रकृति मे कुछ है, जहा से यह विक्षिप्तता फैलती और विकसित होती है। जब तक उसकी प्रकृति मे परिवर्तन करने का विचार, विवेक, जागृति पैदा न हो, जब तक उसकी प्रकृति मे जो पशु है, उसके विनाश का कोई आयोजन न हो, तब तक मनुष्य के भीतर प्रकाश को और प्रभु को पैदा नही किया जा सकता। मनुष्य यो भी हिंसक नही है। उसकी हिंसा मे—उसके चित्त मे जड़े हैं, उन जडो को अलग कर देना जरूरी है, तो ही हम एक अहिंसक मनुष्य का निर्माण कर सकते हैं। अहिंसक मनुष्य का निर्माण ही इस जगत के लिए एकमात्र प्राण हो सकता है।

महावीर ने कहा था, अहिंसा एकमात्र प्राण है। यह बात इतनी सच कभी भी नही थी। यह बात पहली बार परिपूर्ण सत्य हुई है। अहिंसा के अतिरिक्त

आज कोई मार्ग नहीं। मैं अभी कहा एक जगह---महावीर या महाविनाश, इन दो के अतिरिक्त कोई विकल्प नही है। पहली बार इतिहास ने हमें ऐसी जगह लाकर खड़ा कर दिया, जहा महावीर और उनकी अहिंसा एकमात्र जीवन का पर्याय बन गयी है। हिंसा को चुनना, अब मृत्यु को चुनना है। अब हिंसा और मृत्यु में कोई फासला और फर्क नही है। अब अहिंसा को चुनना जीवन को चुनना है। वे लोग जो जीवन का भविष्य चाहते हैं, उन्हे अहिंसा अपने मे जन्माये बिना कोई चारा नहो है। इस अहिंसा के लिए क्या हम करे? कैसे यह पैदा हो जाय? कहां है मनुष्य मे हिंसा की जड ? कहा है मनुष्य मे वह प्यास और वह सुख, जो दूसरे की पीड़ा और दूसरे के विनाश से तृप्त होता है? कौन है मनुष्य के भीतर ऐसा भूखा, जो दूसरे के विनाश मे रस लेता है? उसे पहचानना है, उस भूख को पकड लेना जरूरी है।

मनुष्य पूर्ण इकाई नही है। मनुष्य परिपूर्ण विकसित प्राणी नही है। मनुष्य केवल सक्रमण है। मनुष्य केवल बीच की एक कडी है---पशु और प्रभु के बीच। मनुष्य के भीतर दोनो सभावनाए हैं---नीचे गिरकर पशु हो सकता है, ऊपर उठकर प्रभु हो सकता है। और इसे मैं मनुष्य की गरिमा और गौरव मानता हू। मैं अभी कहा एक जगह, मैंने लोगो से कहा कि तुम पाप कर सकते हो, यह तुम्हारी गरिमा है, यह तुम्हारा गौरव है। तुम पाप कर सकते हो, इसलिए तुम पवित्र भी हो सकते हो। जो पाप नही कर सकता, वह पवित्र भी नही हो सकता। तुम आत्मघात कर सकते हो । दुनिया में कोई पशु मनुष्य के सिवाय आत्मघात नहीं कर सकता। कही स्वीसाइड नही हो सकती मनुष्य को छोडकर। अकेला मनुष्य आत्महत्या कर सकता है। मैं मानता हू कि गौरवशील हो कि आत्महत्या कर सकते हो, क्योंकि जो आत्महत्या कर सकता है, वह परिपूर्ण जीवन पा सकता है। जो नीचे गिर सकता है गहराइयो मे, अधेरे की गर्तों मे, और पाप की और नर्क की सडाध मे, वही केवल पवित्रता के धवल शिखरों को छू सकता है। नीचे गिरने की हमारी क्षमता हमारे स्वातन्त्र्य की महिमा का प्रतीक है। इसलिए मैं यह नही कहता कि नीचे गिर जाने की क्षमता बुरी है। वह केवल स्वातन्त्र्य है, चुनाव की बात है।

मनुष्य अकेला प्राणी है सारी जमीन पर, जो अपने जीवन के निर्माण के लिए स्वतन्त्र है। इतना स्वतन्त्र है कि निम्नतम् हो सकता है, इतना स्वतन्त्र है कि श्रेष्ठतम हो सकता है। मनुष्य केवल एक सक्रमण है, सारे पशु पूर्ण इकाइया हैं। किसी पशु मे पशुता के ऊपर उठने की क्षमता नही है, किसी पशु मे पशुता के

नीचे गिरने की भी क्षमता नहीं है। वह थिर इकाई है, रुकी हुई। प्रवाहमान् नहीं, तरल नहीं। मनुष्य तरल इकाई है। मनुष्य तरलता है, लिक्वीडिटी है। उसके भीतर प्रवाह की, नीचे-ऊपर उठने की क्षमता है। और यह हमारे हाथ में है, यह हमारे सकल्प पर निर्भर है कि यह प्रवाह क्या दिशा ले।

पिछली कुछ सदियों ने मनुष्य की श्रेष्ठतम् दिशा को खण्डित कर दिया है। सारे पुराने प्रतिमान्, सारी पुरानी प्रतिमाए खण्डित हो गयी हैं। हम बहुत मूर्तिभजक हैं। मंदिरो की मूर्तिया टूट जायें, कुछ नुकसान नहीं होगा। मनुष्य के जीवन की वह प्रतिमा, जिसे उसे पाना है, टूट जाय तो जीवन नष्ट हो जायेगा। हम इस अर्थ मे मूर्तिभजक हैं। हमने सारी पुरानी प्रतिमाए तोड दी, जो हम होने की आकाक्षा करते थे। महावीर और बुद्ध और राम, वे सारी प्रतिमाएं हमारी आंखो से हट गयी है। हम जो हैं, उस पर तृप्त हो गये हैं। जो तृप्त हो जायेगा, मर जायेगा। जो तृप्त हो जायेगा और समझ लेगा कि हम जो हैं, काफी हैं—और ऊपर उठने की आकाक्षा और प्यास जहा विलीन हो गयी, वही मृत्यु है। पिछले दो तीन सौ वर्षों मे हम निरन्तर मरते चले गये हैं। मनुष्य मनुष्य होने से तृप्त हो गया है। मनुष्य का मनुष्य से तृप्त हो जाना ही उसकी भूल और भ्राति है। इस सदी का सारा दुख यह है। इस सदी की सारी विकृति इससे पैदा हुई है कि मनुष्य मनुष्य होने से तृप्त हो गया है।

मैं आपको तृप्त हुआ नही देखना चाहता हू। मैं किसी को नहीं कहता, तृप्त हो जाओ सतुष्ट हो जाओ। मैं कहता हू, जलने दो अतृप्ति की आग। मनुष्य से तृप्त मत होना।

और बडे आश्चर्य का नियम यह है इस जगत मे कि कुछ भी थिर नही है। जो आगे बढने से रुक जायेगा, वह रुका नही रहेगा, प्रवाह उसे पीछे फेक देता है। जो आगे नही बढ रहा है, वह पीछे सरकता चला जायेगा। इस जगत में थिर कुछ नही है। जेम्स जीन्स ने एक बात कही थी कि मैंने सारे शब्दकोश के अध्ययन के बाद अनुभव किया कि रेस्ट, टिकाव ठहराव, थिरता इस शब्द की वास्तविकता जगत मे कही भी नही है। कही कोई चीज थिर नही है। जो विकास में नही है, वह ह्रासमान् हो जायेगा। जो आगे नही बढ़ रहा है, पीछे हट जाएगा। ठहर नही सकते हैं। जिस दिन हमने मनुष्य के ऊपर भावी प्रतिमा को अलग कर दिया, जिस दिन मनुष्य के भीतर आदर्श को विसर्जित कर दिया, जिस दिन हमारे भीतर वह आकांक्षा, जो प्रत्येक का महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट बनाना चाहती थी, विलीन हो गयी, धूमिल हो गयी, उसी दिन हम पशु की तरफ पीछे

हटने शुरू हो गये। परमात्मा की प्रतिमा हटी आपसे, अनिवार्यतया पशु की प्रतिमा उसकी जगह प्रतिष्ठित हो जाती है। ईश्वर को छोडने मे कुछ हर्ज न था, लेकिन मदिर रिक्त नही रहता है। जिस सिंहासन पर से ईश्वर को उतार लिया, वहा कब रात के अन्धेरे में पशु बैठ गया, पता नही पडता। मैं इससे दुखी नही हू कि हम ईश्वर को अस्वीकार कर दे—कर दें, लेकिन यह तो स्मरण रखे कि सिंहासन पर फिर कौन विराजमान हो गया। और हमारे पूजा करने वाले हाथ, जो बहुत पुराने आदी हैं—अंधे की तरह पशु की पूजा मे सलग्न हो गये है! ईश्वर को अस्वीकार केवल वही कर सकता है, जो ईश्वर के जैसा हो, उसके पहले नही। धर्म को अस्वीकार वही कर सकता है, जो धर्म को उपलब्ध हो जाय, उसके पहले नही। अन्यथा विपरीत प्रतिष्ठित हो जाता है। मनुष्य के भीतर दोनो हैं—मनुष्य के भीतर दोनो हैं।

एक कहानी कहू।

पढता था एक चित्रकार के बाबत। एक चित्र उसने बनाना चाहा था मनुष्य के भीतर दिव्य का, डिव्हाइन का। गया था खोज मे। खोज लिया था एक व्यक्ति को, जिसकी आखो मे आकाश के जैसी नीली शाति थी। जिसके नक्श मे, जिसकी रेखा-रेखा मे कुछ था अलौकिक, सवेदित, जिसको देखकर लगता था कि मनुष्य के ऊपर का कुछ प्रगट हुआ है। उसने उसके चित्र को बनाया। चित्र बना, पूरा हुआ, लाखो प्रतिलिपिया बिकी, गाव-गाव। चित्र के द्वारा पहुच गया, प्रतिष्ठित हुआ, आदृत हुआ। बहुत हुई थी प्रशसा।

बीस वर्ष बाद उस चित्रकार ने दूसरा चित्र बनाना चाहा था, मनुष्य के भीतर जो पशु है उसका। सोचा था, दो मनुष्य की तस्वीर पूरी हो जायेगी इन दो चित्रो मे। गया था खोजने—वेश्यालयो मे, कारागृहो मे, पागलखानो मे। खोज लिया था आखिर एक कारागृह मे एक व्यक्ति को, जिसकी आख तो आदमी की थी, लेकिन जो झाकता था भीतर से, वह पशु था। जिसका चेहरा तो आदमी का था, लेकिन पारदर्शी था चेहरा और पीछे कोई खूखार बैठा हुआ था। चित्र को बनाया। दूसरा चित्र भी बनकर जिस दिन पूरा हुआ था, एक घटना घटी बहुमूल्य, स्मरणीय। अपने पुराने चित्र को लेकर गया था कारागृह मे, दोनो को रखकर करीब यह देखने, कौन सी कृति श्रेष्ठ बनी है। मत्रमुग्ध होकर देख रहा था, तय करना मुश्किल था, कौन सा चित्र ठीक बना। तभी पीछे कैदी रोने लगा, जिसका चित्र उसने दूसरा बनाया था। लौटकर देखा था, कहा, मित्र मेरे चित्रो से तुम्हे दुख का कारण? तुम्हारे आसू का कारण, तुम क्यो राते हो? उस कैदी

ने कहा, इतने दिन कितनी मुश्किल से अपने भाव को छिपाया था, आज मुश्किल हो गया। पहला चित्र भी मेरा ही चित्र है। बीस वर्ष पहले मेरे ही चेहरे और आंखो को देखकर पहला चित्र बनाया था। दोनो चित्र मेरे हैं, इसलिए रोता हू।

कहानी बहुत काल्पनिक सी लगती है, काल्पनिक नही है। और काल्पनिक भी हो तो भी प्रत्येक व्यक्ति के संबध में सत्य है। ये चित्र उस आदमी के ही नही थे दोनो, चित्र हमारे भी दोनो हैं। ये प्रत्येक के दोनो हैं। जो भी आदमी इस जमीन पर है, उसके भीतर ये दोनो छिपे हैं। उसके भीतर दोनो विराजमान है। उसके भीतर दोनो के बीच निरन्तर सघर्ष, निरन्तर दोनो किनारो के बीच आदमी टकराता रहता है।

कभी देखना, कभी विचार करना, कभी होश से भरना, घडी भर पहले तुम्हारे भीतर हो सकता है प्रभु रहा हो, घडी भर बाद हो सकता है, कि पशु विराजमान हो। कितनी तीव्रता से हम इन दोनो तटो के बीच घुमते रहते हैं। और अगर प्रभु की धारणा ही विलीन हो जाय, अगर आत्मिक जीवन मे बैठने की, उठने की आकाक्षा की विलीन हो जाय, तो फिर हम पशु के तट पर लगे रह जाते हैं। हमारी नौका वही लगी रह जाती है। फिर स्वाभाविक है . जबकि एक-एक आदमी के भीतर का पशु ही केवल प्रवृत्तिमान होता हो, जबकि पशु को तृप्त करना ही जीवन रह गया हो, तब स्वाभाविक है कि ढाई अरब पशुओ का इकट्ठा संघर्षण, ढाई अरब पशुओ की इकट्ठी विकृत आकाक्षाएं सारी सस्कृति की मृत्यु बन जाय।

कहा हम स्वप्न देखे थे मनुष्य के भीतर परम शक्ति के जागरण का और कहा निकृष्ट को उपलब्ध करके बैठ गये हैं! कहा बुद्ध, कहा महावीर, कहा क्राइस्ट—जो कहते हैं, तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है! और कहा हम, जो भीतर झाककर देखते हैं तो सिवाय पशु की आहट के, उसके चलने के कुछ भी वहां नही पाते!

मेरा मानना है, अहिंसा ऊपर से शिक्षित नही की जा सकती। हिंसा हमारी पशु प्रकृति का सहज परिणाम हैं। जब तक हम पशु के तट से बधे हैं, तब तक सहज परिणाम हिंसा होगी। लाख-चेष्टा ऊपर से आरोपित करने की व्यर्थ है। अहिंसा का अभिनय हो सकेगा, अहिंसक नही हुआ जा सकता। अहिंसक होना हो, तो क्रियाए नही बदलनी हैं, भीतर चैतन्य का तट बदलना होगा। लाख उपाय करे, उसी तट पर बंधे हुए कही पहुचना न होगा।

सुनता था, एक साधु नदी मे नहाने उतरा था। सुबह भोर होने के करीब थी और थोडा-थोडा प्रकाश हो गया था। सूरज निकलने के करीब थी, प्राची लाल हो गयी थी। देखा उस पार उसने, चार व्यक्ति एक नाव मे बैठकर जोर से डाड़ चला रहे हैं। नाव की जजीर तट से बधी है! उसने पूछा, मित्र कहा जा रहे हो? वे चारो नशे मे थे और रात नशे मे आकर नाव चलाना शुरू कर दिये थे। रात भर इस ख्याल मे रहे कि बहुत यात्रा हो रही है। उस साधु ने उनसे कहा, पागल हो! यह तो देख लेते पहले कि नाव तट से छोडी भी या नही? जजीर तो वही बधी है, डाड खेने से कुछ न होगा!

ऊपर सारे कर्म अहिंसक होने के, उन नशाखोर नाविको जैसे हैं। भीतर तट से जजीर छूटी या नही? और जजीर छूट जाय, भीतर तट परिवर्तित हो जाय, भीतर चैतन्य का केन्द्र परिवर्तित हो जाय, तो जैसा पशु के तट से बधे हुए हिंसा सहज बाहर निकलती है, आचरण हिंसक हो जाता है, वैसे ही तट परिवर्तन से अहिंसा सहज निकलती है।

महावीर ने कहा है, परिभाषा की है अहिंसा की, कहा है, स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाना अहिंसा है।

अहिंसा का कोई सम्बन्ध ही दूसरे से नही है। जो कहते हैं, दूसरे को दुख न देना अहिंसा है, नासमझ है। दूसरे का कोई वास्ता अहिंसा से नही है। स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाना अहिंसा है, स्वरूप के बाहर होना हिंसा है। जो स्वरूप के बाहर है, कुछ भी करे—कुछ भी करे, सबमे हिंसा प्रवाहित होगी। जो स्वरूप मे प्रतिष्ठित है, कुछ भी करे, सबमे अहिंसा प्रवाहित होगी। अहिंसा क्रिया का परिवर्तन नही, डूइग का परिवर्तन नही, बीइग का, सत्ता का, होने का परिवर्तन है। जैसे ही सत्ता परिवर्तित होगी और तट बदल जायेगा, वैसे ही उसके जीवन मे सहज—सहज अहिसा प्रतिफलित हो जाती है।

अहिंसा साधना नहीं है। कोई अहिसा को साध नही सकता। साधना आत्म-ज्ञान को पडता है। अहिसा अपने आप चली आती है, जैसे पौधो मे फूल चले आते हैं। अहिंसा सहज परिणाम है, कान्सीकुएन्स है—साधना नही है। अहिंसा परमो धर्म का अर्थ यही है कि जब जीवन मे आत्मज्ञान उपलब्ध होता है तो अतिम परिणति मे, परम धर्म की तरह, परम विकास, विकसित फूल की तरह अहिसा आ जाती है। अहिंसा को लाना नही होता, अहिंसा आती है। लाना होता है स्व स्थिति को—लाना होता है स्व स्थिति को।

अहिंसा के संबंध में सबसे भ्रांत धारणा जो व्याप्त है, वह यह है कि अहिंसा को हम एक नैतिक उपकरण, एक नैतिक साधन समझते हैं। अहिंसा नैतिक साधन नहीं है। और नैतिक साधक की अहिंसा में और महावीर की अहिंसा मे जमीन-आसमान का अन्तर है। नैतिक साधक यह सोच-सोच कर कि दूसरे को दुख देना बुरा है, अहिंसक होने की चेष्टा करता है। इस तरह जो चेष्टित, कल्टीवेटेड अहिंसा है, वह कृत्रिम है थोथी है, बाहय है। महावीर की अहिंसा नैतिक अहिंसा नहीं है। महावीर की अहिंसा यौगिक अहिंसा है। महावीर का मानना है, स्वय मे प्रतिष्ठित हो जाओ। स्वय ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ, तो तुम पाओगे बाहर दूसरे को दुख देना असभव हो गया। क्योंकि जिसके भीतर दुख नही है, वह दूसरे को दुख नही दे सकता। जिसके भीतर आत्मज्ञान का प्रकाश और आनन्द उपलब्ध हो गया, अनायास उससे आनन्द ही बहेगा। प्रकाश ही बहेगा। कोई वास्ता न रहा कि उसके भीतर से आनन्द के विपरीत कुछ बह जाय।

सच, अगर विचार करे, हम दूसरे को इसलिए दुख दे पाते हैं कि हम दुखी हैं। हम दूसरे के प्रति इसलिए हिंसक हो पाते हैं कि हम अपने प्रति हिंसक है और भीतर हिंसा से भरे हैं। दूसरे का प्रश्न नही है, एकात का प्रश्न नही है। अहिंसा का प्रश्न वैयक्तिक जागरण का प्रश्न है। मनुष्य अपने भीतर जाग जाय और उसे अनुभव कर ले, जो वहा बैठा है हिंसा विसर्जित हो जाती है।

वहा पश्चिम मे पदार्थ के विश्लेषण पदार्थ के खण्डन, पदार्थ के आतरिक रहस्य की खोज के द्वारा अणु को उपलब्ध करके पाया कि विराट शक्ति हाथ मे आ गयी। विनाश की अद्भुत शक्ति पर नियत्रण हो गया। पूरब ने भी प्रयोग किये हैं। पश्चिम ने पदार्थ की सत्ता पर प्रयोग किये, पूरब ने मनुष्य की चेतना की सत्ता पर प्रयोग किये। महावीर का प्रयोग मनुष्य की चेतन सत्ता के विश्लेषण का प्रयोग है।

पदार्थ के विश्लेषण से उपलब्ध हुआ है अणु, मनुष्य की चेतना के विश्लेषण से उपलब्ध हुई है आत्मा।

पदार्थ के विश्लेषण से जो अणु उपलब्ध हुआ, वह विनाशक साबित हुआ। पदार्थ की सब शक्तियां अधी है। और अधो के हाथ मे आ जायं, तो परिणाम बुरे होने स्वाभाविक है। चैतन्य के विश्लेषण से, चैतन्य के जागरण से, चैतन्य मे उतरने से जो उपलब्ध हुई आत्मा है, वह सारे जीवन को, सारे दृष्टिकोण को बदल देती है।

महावीर ने कहा है, केवल वही अहिंसक हो सकता है, जो अभय को उपलब्ध हो।

अभय को कौन उपलब्ध होगा? जो आत्मज्ञानी नही हैं, वह अभय को उपलब्ध हो सकता है? कोई भय को जबरदस्ती निकालकर अभय को पा सकता है?

असभव है, असभव है। कोई भय को निकाल नही सकता। भय है मृत्यु का। अतिम भय के पीछे मृत्यु बैठी हुई। प्रतिक्षण चारो तरफ जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है। जब तक अमृत न दीख जाय, जब तक यह न दीख जाय कि मेरे भीतर कोई है, जो नही मरेगा, नही मर सकता है, तब तक व्यक्ति अभय को उपलब्ध नही हो सकता। जब तक मृत्यु से घिरे हैं, जब तक हम नही जानते है, तब तक जो भी हमारे आसपास है, सब मृत्यु में समा जायेगा।

और मैं तो कहता हू, जीवन हमारे पास है ही नहीं, हम तो प्रतिक्षण मर ही रहे है। मृत्यु अनायास थोडे ही एक दिन घटित हो जाती है। जिस दिन हम जन्मे, उसी दिन मृत्यु शुरू हो गयी। जिस दिन जन्म हुआ, उसी दिन मरना शुरू हो गया। जिसको हम मृत्यु कहते है, वह उसी मरण की शुरूआत की अतिम पूर्णाहुति है। कोई अचानक थोडे ही मर जाता है। अचानक इस जगत मे कुछ भी नही होता है। हम प्रतिक्षण मर रहे है। हम प्रतिक्षण मरते जा रहे हैं, हमारा सब मरता जा रहा है। हम प्रतिक्षण अधेरे मे और मृत्यु मे चले जा रहे है। इस मृत्यु मे और अधेरे मे दबता हुआ व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो सकता है? कोई तलवार अभय न देगी। और जो हाथ मे तलवार लिये खडे हैं, वे भय-भीत हैं, तलवार केवल इसकी ही सूचना देती है। किसी दिन शायद वक्त आये, कि जिनकी तलवार हाथ मे लिये हम तस्वीरे, मूर्तिया बना रहे है, लोग हसे और समझें कि बहुत कमजोर, बहुत भयभीत रहे होगे। जो भयभीत नही हैं, उसके हाथ मे तलवार होने का कोई कारण नही है। जिनको हम बहादुर कहते है, वे केवल भय की एक परिणति हैं, भय का ही एक रूप हैं। मर्त्य के बोध के भीतर अभय असभव है। जो मरने से डरा हो, जिसे मृत्यु दीख रही हो और जैसा मैंने कहा, हमारा सब तो मरण के करीब पहुच रहा है। हमारे पास कुछ भी तो नही है, जो न मर जायेगा।

नानक एक गाव मे ठहरे हुए थे, लाहौर मे। एक व्यक्ति उनके पास बहुत बार आया, बरसो आया, उसने अनेक बार नानक से कहा, मेरे सेवा योग्य कुछ

मिल जाय, मैं कुछ आपकी सेवा कर सकूं। नानक टालते गये कि मुझे तो कोई जरूरत नहीं, तुम्हारा प्रेम है, पर्याप्त है, प्रभु ने सब दिया है। एक दिन नानक ने कहा, तुम बहुत बार कहे, आज तुम्हारे लिए काम खोज लिया है। अपने कपड़े में छिपा रखी थी एक सुई, कपड़े को सीने की। उस व्यक्ति को दी, इसे रख लो, मृत्यु के बाद मुझे वापस कर देना। काम खोजा तो ऐसा खोजा! वह आदमी घबड़ाया, एक क्षण सोचा, मृत्यु के बाद वापस कर देना? जब मृत्यु होगी तो मुट्ठी तो बधी रह जायेगी सुई पर, लेकिन सुई साथ नहीं जा सकती। रात भर चिन्तित रहा, सुबह आकर नानक के पैरो पर गिर पड़ा, कहा कि क्षमा कर दें। मेरी कोई समृद्धि, मेरी कोई सामर्थ्य, मेरी कोई शक्ति मृत्यु के पार इस सुई को नही ले जा सकती। नानक ने पूछा, फिर तुम्हारे पास क्या है, जिसे मृत्यु के पार ले जा सकते हो?

और क्या यही प्रश्न मैं आपसे न पूछूं? क्या यही प्रश्न प्रत्येक को सारे जगत में अपने से नही पूछ लेना है? एक न एक दिन क्या यह प्रश्न मृत्यु के वक्त खड़ा न हो जायेगा, कि क्या है मेरे पास, कि जिसे मैं ले जा सकता हू। जिसके पास मृत्यु के पार ले जाने को कुछ भी नही है, वह अभय को कैसे उपलब्ध होगा? जिसे यह भी पक्का नही कि मैं भी बचूंगा, इन लपटो के पार या नही, वह कैसे अभय को उपलब्ध होगा? जिसके पैर के नीचे सारी जमीन खिसकी जाती हो, जिसकी सारी मुट्ठियो की पकड़ किसी चीज को पकड़े न रखती हो, जिसके सब सहारे डूब गये हो और मझधार मे जिसकी नौका डूबती ही हो और कोई तट और किनारा न मिलता हो, वह कैसे अभय को उपलब्ध होगा?

आत्म-ज्ञान के बिना अभय असभव है।

महावीर ने कहा है जो अभय को उपलब्ध है, वही केवल अहिंसक हो सकता है। और अद्भुत शर्त लगा दी है, उस शर्त ने सारा भय इकट्ठा कर दिया है। आत्म-ज्ञानी ही अभय को उपलब्ध हो सकता है, क्योकि जो अपने को जानता है, वह जानता है कि मृत्यु नही है। सब मरेगा, मैं नहीं मर सकता हू। सब विसर्जित हो जायेगा, सब मिट जायेगा, भीतर जो चैतन्य सत्ता बैठी है, उसकी मृत्यु नही है। जिस क्षण यह दर्शन होता है, जिस क्षण अमृत का दर्शन होता है, उसी क्षण जीवन से भय विलीन हो जाता है। जिसका स्वय का भय विलीन हो गया, वह अहिंसक हो जाता है, वह हिंसक नही रह जाता। अहिंसक होने की सीढ़ी, अहिंसक होने का मार्ग आत्म-ज्ञान का मार्ग है।

अपने को जानना होगा, अपने से परिचित होना होगा। सारे जगत को जाने और अपने से अपरिचित रहे, तो दो कौडी का है ज्ञान फिर। उसका कोई मूल्य नहीं है। मैं सारी दुनिया को जान लूं और मेरे भीतर अंधेरा बना हो—इस जानने का क्या होगा ? क्या है प्रयोजन ? क्या हुआ अर्थ, क्या पाया ? धोखा है, प्रवचना है, अपने को समझा लेना है। यह पाण्डित्य और यह ज्ञान किसी काम का नहीं है। महावीर के बाबत सब कुछ जान लू, राम के बाबत सब कुछ जान लू, कृष्ण के बाबत सब कुछ जान लू, और वह जो भीतर बैठा है, उससे अपरिचित रह जाऊ, तो दो कौड़ी की है यह सब जानकारी। यह नाहक का मनोरंजन है अपने समय को खराब करने को शास्त्र पढ डालू और भीतर जो शास्त्रो का पढने वाला बैठा है, वह अनपढा रह जाये, तो कुछ नही किया मानना होगा, कुछ नही पाया मानना होगा।

महावीर कहते है, एक को जान लेने से सब जान लिया जाता है।

उस एक को जानना जरूरी है, उस एक के जानने का परिणाम अहिंसा होती है।

कैसे जानें ?

जानते तो हैं अपने को। नाम परिचित है, कितना धन है, बैंक बैलेंस कितना है, वह भी परिचित है। किसका लडका हू, वह भी परिचित है। किसका भाई हू, किसका पति हू, वह भी सब परिचित है। लेकिन यह सारा परिचय शरीर का परिचय है। यह शरीर किसी का लडका होगा, यह शरीर किसी का पति होगा, यह शरीर जवान होगा या बूढा होगा। इस शरीर का कुछ नाम होगा, लेकिन शरीर के पीछे जो बैठा है, वह किसी से सबधित नही है। जो भी किसी से सबधित है, वह मैं नही हू। भीतर एक चेतना है असग और असबधित, जिसका न कोई जन्म है, न मृत्यु है। उसका जानना होगा। उसका परिचय ही आत्म-ज्ञान बनेगा। हम शरीर पर ठहर जाते है! जीवन शरीर पर केंद्रित होकर घूम लेता है और समाप्त हो जाता है! शरीर की वासनाए, शरीर की दौड, शरीर की आकाक्षा और शरीर की प्यास, उसी मे व्यय हो जाता है! उसको देख ही नही पाते है, जो शरीर के, इस काया के पीछे खडा है। जो शरीर का मालिक था, जो शरीर मे बसा था, निवासी था, उस अदेही को, जो देह मे बैठा हुआ है, हम नही जान पाते हैं! देह की दौड ही सब रिक्त कर देती है!

महाराष्ट्र मे एक साधु हुआ है एकनाथ। एक व्यक्ति ने एकनाथ से एक सुबह पूछा था, नाथ जी, आपको देखते हैं, एक प्रश्न बार-बार उठता है। क्या

आपके मन में पाप पैदा नहीं होता ? वासना नही उठती ? विकार नही जगते ? विक्षिप्त पशु आपके भीतर गति नहीं करते ? नाथ जी ने कहा, उत्तर अभी दू ? एक मिनट ठहर जाओ, एक बहुत जरूरी बात कह दू । फिर उत्तर दे दूगा, कहीं भूल न जाऊं । कल अचानक तुम्हारे हाथ पर नजर पडी, देखा मृत्यु की रेखा टूट गयी है । सात दिन और, और तुम समाप्त हो जाओगे । सात दिन बाद सूरज का डूबना, तुम्हारा भी डूबना है । यह बता दिया, ताकि कही भूल न जाऊ । अब पूछो, क्या पूछते हो ? उस आदमी के हाथ-पैर कंप गये । सात दिन और ! केवल सात दिन ? उसके भीतर तो अचानक उदासी और अवसाद घना हो गया । वह बोला, फिर मैं आऊंगा प्रश्न पूछने, अभी प्रश्न नही पूछूगा । नाथ जी ने बहुत कहा, रुको, बडा कीमती प्रश्न था, अच्छी चर्चा होती । वह बोला, फिर आऊंगा । अभी चर्चा करने में कोई रस न रहा । मृत्यु ने सारा रस विरस कर दिया है ।

उठा, राह पर चलना था, पैर कपने लगे ! मृत्यु का भाव घना हो गया ! द्वार पहुचा, गिर पडा ! चेहरा काला पड गया, इतने से मार्ग मे ! लोगो ने उठा कर घर पहुचाया, पूछा क्या हुआ ? बताया कि सात दिन और—आवाज ऐसी आती थी, जैसे दूर बाहर से आती हो ! डूब गयी आवाज ! लेट गया बिस्तर पर । दूसरे दिन सबसे क्षमा मांगने आया किसी तरह चलकर ! पैर छू आया, जिनसे कभी भूल-चूक हुई थी, दो कडुवे शब्द कहे थे । बिस्तर पर लग गया ! रोज घडी-घडी मौत करीब आने लगी । एक-एक क्षण लबा हो गया, बीतना कठिन हो गया ! एक ही प्रतीक्षा रह गयी ! कमरे मे आसन्न मृत्यु की छाया घनी हो गयी ! मृत्यु करीब से करीब उसकी खाट पर चली आती थी ! मृत्यु ही रह गयी थी, और कुछ न था । सारी वासनाए, सारे विकार, सबकी जगह मृत्यु खडी हो गयी ! मृत्यु ही उपस्थित थी ! हाथ हिलाता था तो मृत्यु लगती थी, अनुभव होती थी ! आख खोलता था तो मृत्यु दीखती थी ! श्वास लेता था तो मृत्यु ही श्वास मे भीतर-बाहर हो रही थी ! सब मृत्युमय हो गया था !

सातवे दिन सूरज डूबने के घडी भर पहले एकनाथ उसके घर गये । भीतर गये, घर के लोग रोने लगे थे । उसकी आख से आसू टपक रहे थे । करीब आ गयी थी घडी, और थोडी देर थी । और थोडी देर थी, और कुछ क्षण सरकेंगे, और फिर सब समाप्त हो जायेगा । सब बनाया हुआ, सब इकट्ठा किया हुआ, सब जिसे जाना कि अपना है, सब जो मेरे 'मैं' को भरता था, सब विसर्जित हो जायेगा । सारी दौड-धूप स्वप्न हुई जाती थी । नाथजी ने जाकर पूछा, मित्र, एक बात पूछने आया हूं । उसने आख खोली । मरणासन्न व्यक्ति, आख डूब गयी थी,

जीवन की ज्योति डूब गयी थी। नाथजी ने पूछा, एक प्रश्न पूछने आया हूं, सात दिन में कोई पाप, कोई विकार, कोई वासना मन मे उठी? उस आदमी ने कहा, क्यो मजाक करते हैं नाथजी? मृत्यु इतने करीब थी कि मेरे और उसके बीच किसी पाप के उठने की गुंजाइश न थी। मृत्यु इतने करीब थी कि विकार उठ आये, उसके लायक भी फासला मेरे और उसके बीच नही था। नाथजी ने कहा, तेरी मृत्यु अभी आयी नही, केवल तेरे प्रश्न का उत्तर दिया है।

सात दिन बाद मृत्यु हो सत्तर वर्ष बाद, क्या अन्तर पडता है? सात दिन बाद समाप्त हो जाता हो या सत्तर वर्ष बाद यह शरीर, तो क्या अन्तर पडता है? सच ही सात दिन मे और सत्तर वर्ष मे कोई अन्तर है? एक स्वप्न सात दिन का देखा या सत्तर वर्ष का, कोई भेद पड़ेगा? नाथजी ने कहा था, तू अभी मरने को नही है, उत्तर दिया है! मुझे मृत्यु दीखती है। यह शरीर मरेगा। जिस दिन मैं देखा कि यह शरीर मरेगा, उसी दिन से शरीर से सारी आसक्ति विलीन हो गयी।

मृत्यु के प्रति कोई आसक्त नही हो सकता है। मृत्यु के प्रति आसक्त होना असभव है। केवल हम जीवन के प्रति आसक्त हो सकते हैं। हम शरीर को जीवन मानते हैं, इसलिए आसक्त हैं। लेकिन अगर हम दोहराये, समझाये अपने को कि हम शरीर नही हैं, यह शरीर तो मरेगा, हम तो अमृत हैं, हम तो नित्य आत्मा हैं, अगर हम ऐसा समझायें, विचार करें, चिन्तन करे, तो क्या कुछ उपलब्ध हो जायेगा? इस चिन्तन से कुछ भी न होगा, यह तो भ्रम है। इस तरह का चिन्तन कोई धोखा न दे पायेगा आपको। किसी को कभी धोखा नही दे पाया। वरन् जब मैं यह कह रहा हू और अपने को समझा रहा हू, कि अरे शरीर तो मरेगा, इसको छोडो, तब जानना चाहिए कि मैं जान नही रहा कि शरीर मरेगा। जो जानेगा कि शरीर मरेगा, एक क्षण भी जान लेगा, उसे समझाने का प्रश्न बाकी नही रह जाता। अल्प-ज्ञान मे केवल समझाना है। ज्ञान से खुल जाती है आख, भेद स्पष्ट हो जाता है, समझाना नही होता है। मैं आपको नही कहता कि अपने मन मे इसका चिन्तन करें कि मैं देह नही हू। वह इस चिन्तन को करेगा ही, जो जानता है कि देह है। मैं चिन्तन को नही कहता। यह चिन्तन गलत है। मैं जानने को कहता हू।

महावीर का मार्ग चिन्तन का मार्ग नही है। महावीर का मार्ग विचार का मार्ग नही है। जानने का, आख खोलकर देख लेने का मार्ग है। महावीर का

मार्ग श्रद्धा का मार्ग नहीं है। अभी श्रद्धा का मार्ग नहीं है, बहुत वैज्ञानिक है। जिसे जान लेना, देख लेना, उसे मान लेना। इसके पहले कोई मान्यता किसी काम की नहीं है। वे सब डूबते हुए आदमी की अपनी थोथी धारणाएं हैं आलम्बन की, झूठे आसरो की, झूठे सहारो की। कोई झूठा सहारा काम न देगा। कोई इस तरह की झूठी शरण काम नही देगी, जानना होगा।

और जाना जा सकता है। इसी जानने की प्रक्रिया को हम दर्शन कहते हैं। भारत ने जो पैदा किया है, वह फिलासफी नही है। और नासमझ हैं वे, जो फिलासफी और दर्शन को पर्यायवाची समझते हैं। फिलासफी है चिन्तना, सोचना, विचारना। जो अज्ञात, है, उसके सम्बन्ध मे सोच-विचार करना। लेकिन जो अज्ञात है, उसके सम्बन्ध में सोचियेगा क्या? जिसको देखा नही, जाना नही, जिससे परिचित नही, उसके सम्बन्ध में चिन्तन क्या करियेगा? सब चिन्तन गलत होगा। भारत सोच-विचार को नहीं, देखने को, आख खोलने को कहता है।

भारत कहता है, सत्य देखा जाता है, विचार नहीं।

महावीर की पूरी धारणा दर्शन की है, चिन्तन की नही।

दर्शन हो सकता है। उसका दर्शन हो सकता है, जो भीतर बैठा है। उसका दर्शन—उसकी शक्ति है, उसकी क्षमता है, उसका स्वरूप है। यह सारे जगत को कौन देख रहा है? मै आपको देख रहा हू, मैं सारे जगत को देख रहा हू। देखना मेरी क्षमता है, फिर जिस देखने की क्षमता से मैं सबको देख रहा हू, उसका उपयोग मैं अपने पर करना नही जानता हू। जो देखना सारे जगत पर प्रतिफलित हो रहा है, वह मैं अपने पर प्रतिफलित करना नही जानता हू। जो आख सब पर खुली है, वह मैं अपने पर खोलना नही जानता हू—इतनी ही दिक्कत, इतनी ही परेशानी है।

रास्ता है—महावीर कहते है, जो दृश्य को देख रहा है, वह दृष्टा को देख सकता है। और उस दृष्टा को देखते ही जीवन का सारा दुख, सारी पीडा, सारा अज्ञान गिर जायेगा।

मैं देख रहा हू, इतना तो तय है। स्वप्न ही सही, देख रहा हू, इतना तो तय है। रात मैंने स्वप्न देखा, सुबह उठा, पाया, स्वप्न झूठा था। होगा स्वप्न झूठा, लेकिन मैंने देखा तो सही है। होगा यह जगत माया, होगा यह ससार व्यर्थ होगा यह असार, लेकिन मैंने देखा। देखना तो सत्य है। दृश्य हो सकता है असत्य, दृष्टा असत्य नही हो सकता है। दृश्य हो सकता है भ्रामक, हो सकता है

मृग-मरीचिका, देखने वाला मृग-मरीचिका नहीं हो सकता है। दृष्टा एकमात्र सत्य है, जीवन के केन्द्र पर खड़ा हुआ जो देख रहा है। लेकिन उस देखने की क्षमता 'पर'से घिरी हुई है। उस देखने के सामने 'पर' खड़ा हुआ है, विजातीय खड़ा हुआ है। अगर मैं 'पर'को अलग कर दू, देखने की क्षमता के सामने से, अगर दृष्टा के सामने से 'पर'को अलग कर दू, तो देखने की क्षमता, जो 'पर' को देखती थी, 'पर' को न पाकर, 'पर' के आलबन के आधार को न पाकर 'स्व' आधार पर लौट आती है। अगर बाहर कुछ देखने को न रह जाय, तो जो स्वय देखता था, वह स्वय को देख लेता है।

दृष्टा के सामने से 'पर' का विसर्जन ध्यान है, मामायिक है।

दृष्टा के सामने से पर का विसर्जन, पर का अलग कर देना, पर का हटा देना, स्वय मे प्रतिष्ठित हो जाना है।

आख खोलता हूं, आपको देख रहा हू। आख बन्द कर लूगा तो भी आपको देखूगा। आपके चित्र, आपके प्रतिबिम्ब, आपकी स्मृतिया घूमेगी। आख खोलता हू तो बाहर हू, आख बन्द करता हू तो भी बाहर हू। बाहर मे बने हुए चित्र बाहर से बने हुए इम्प्रेशन, बाहर से आये हुए सस्कार फिर मुझे घेरे रहते है। अभी वास्तविक वस्तुए घेरे हैं, फिर आख बन्द करता हू तो वस्तुओ के विचार घेरे रहते है, लेकिन बाहर ही हू। आख खोलकर भी आख बन्द करते हैं। यह मेरा निरन्तर बाहर होना, मेरा बन्धन है। थोडी देर को वस्तुओ से आख बन्द की है, विचार से भी आख बन्द कर लेनी है। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है। जो बाहर से मुझ पर आया है—जो भी बाहर से मुझ पर आया है, उसी विजातीय ने मुझको घेरे मे बन्द किया है। उम बाहर से आये हुए प्रभाव का विसर्जित कर देना निर्जरा है। बाहर का बाहर छोड देना है, तो भीतर वही बच जायेगा, जा बाहर से नही आया—तत्क्षण, उसी क्षण दीखेगा, जो सब बदल जाता है, सब परिवर्तित कर जाता हे। कुछ नये आयाम मे, नये डायमेन्शन मे, नयी भूमि मे उठना हो जाता है।

महावीर की यह वैज्ञानिक धारणा निर्जरा की अद्भुत है। और वही है मार्ग, वही है योग, वही है सब कुछ, वही है विज्ञान, वही है प्रयोगशाला व्यक्ति का अपने मे जाने की। स्मरण करे, कुछ भी है हमारे मन मे, जो बाहर से न आया हो ? कुछ भी है हमारे चित्त मे, जा बाहर का प्रतिफलन न हो ? कुछ भी है ऐसी चीज, जा बाहर की धूलि की तरह हम पर नहीं जम गयी है ? जो भी

बाहर से आया, उस पर आंख बन्द कर लेनी है। उसे देखना है, लेकिन जानना है, वह 'पर' है, और बाहर से आया है, और वह मैं नहीं हू। अगर व्यक्ति अपने भीतर थोड़ी देर भी बैठकर सिर्फ इस विवेक को जागृत करता रहे कि क्या बाहर से आया है, वह मैं नही हू। सिर्फ इस होश को भीतर पैदा करता रहे कि यह बाहर से आया है, यह मैं नही हू। यह बाहर से आया है, यह मैं नहीं हू। यह बाहर से आया है, यह मैं नही हू। निषेध करता चले उस क्षण तक, जब तक बाहर से आया हुआ कुछ भी डोलता न हो चित्त मे। और हैरान होगे, मैं उसे अपना मान लेता था, इसलिए वह आता था। वह बाहर से आये हुए सस्कार इसलिए ठहर जाते थे कि मैं उन्हे अपना मान कर ठहरा लेता था। जिस क्षण मैंने उनके साथ यह जाना कि वे मेरे नहीं हैं, वे बाहर से आये हुए यात्री हैं, आयेगे और चले जायेगे। मैं अतिथि नही, मैं आतिथेय हू, मैं होस्ट हू, गेस्ट नही। वे जो गेस्ट आये हैं, चले जायेंगे, मैं तो उनका मेजबान हू। अतिथि मे और आतिथेय मे फर्क कर लेना ज्ञान है।

अतिथि मे, आतिथेय मे, गेस्ट मे और होस्ट मे फर्क कर लेना आत्म-ज्ञान है।

जो बाहर से आया है, वह अतिथि है। उसे मैं जानू, देखू, परिचित होऊ और होश रखू कि वह मैं नही हू। और इसको महावीर ने भेद-विज्ञान कहा है। यह भेद का विज्ञान है। इस भेद को धीरे-धीरे थिर करना, इस भेद मे स्थित होना। धीरे-धीरे जिसको मैं अतिथि जानूगा, उससे झगड़ने का कोई कारण नही है, जानना पर्याप्त है। जान ले कि मेरा नही है, मेरे भीतर से नही आया है। आये, चला जाये, मैं दर्शक बना रहू, मैं तटस्थ दृष्टा रह जाऊ। धीरे-धीरे इस तटस्थ दृष्टा का बोध, यह सम्यक दृष्टा का बोध 'पर' को विसर्जित कर देगा, 'पर' का विलीन कर देगा। दृश्य विलीन होते चले जायेंगे, स्वप्न गि ते चले जायेगे और एक दिन अचानक अनायास जहां जगत दीखता था, वहा शून्य खड़ा रह जायेगा। जैसे अचानक प्रोजेक्टर बन्द हो गया हो, पीछे फिल्म को बनाने वाली मशीन, चलाने वाली मशीन बन्द हो गयी हो, पर्दा खाली रह जाय, चित्र न हो, सफेद, वैसे ही धीरे-धीरे किसी दिन सामायिक के प्रयोग से, तटस्थ दृष्टा के इस प्रयोग के माध्यम से प्रोजेक्टर बन्द हो जायेगा। सामने जगत विलीन, कोरा आकाश रह जायेगा—शून्य।

इस शून्य की परिपूर्ण स्थिति को महावीर ने शुक्ल-ध्यान कहा है। जिस क्षण कुछ भी न रह गया, दृश्य सब शून्य रह गया, उसी क्षण—तत्क्षण ज्यादा

ठीक होगा कहना—ठीक उसी क्षण, जैसे ही वहां शून्य हुआ, जो सबको देखता था, वह अपने पर लौट आता है। जो दूसरो के घरों पर उडता फिरा, जिसने दूसरों के डेरो को अपना आधार बनाया, जो दूसरी भूमि मे विचरण किया, कोई आधार न पाकर, निराधार शून्य मे छूटकर—और शून्य में कुछ भी नहीं रह सकता है—शून्य मे आधार न पाकर 'स्व-आधारित' हो जाता है, स्वय में प्रतिष्ठित हो जाता है, स्वय मे लौट आता है। आत्मा, आत्मा पर लौट आती है। इस क्षण दीखता है अमरत्व, जिसकी कोई मृत्यु नही। इस क्षण दीखता है, जिसमें कोई भय की सभावना नही। जैसे गीता मे हमने कहा है, "न हन्यते हन्यमाने शरीरे"—जो, शरीर मर जायेगा, तब भी नही मरेगा। जिसे चिता में लपटे नही जला सकती, जिसे कुछ भी नष्ट और विकृत नही कर सकता—अच्युत, शाश्वत, नित्य—उसके जब दर्शन होगे, अनायास, सहज—इस दर्शन के कारण जीवन अहिंसक हो जाता है। इस दर्शन के कारण जीवन मे अहिंसा फैल जाती है। इसके अतिरिक्त और अहिंसा तक पहुचने का कोई रास्ता नही है।

आत्मज्ञान है मार्ग अहिंसा का।

और अगर विश्व को बचा लेना है, और अगर मनुष्य को कोई भविष्य और नियति देनी है, तो एक-एक व्यक्ति तक आत्म-ज्ञान की इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को पहुचा देना जरूरी है। महावीर को उनके विचार को, घेरो को तोडकर सब तक पहुचा देना जरूरी है। महावीर अहिंसक होने को नहीं कह रहे हैं, महावीर आत्मज्ञानी होने को कह रहे हैं—अहिंसा तो अपने से चली आयेगी। आत्म-ज्ञान जागे, लोग अपने को जानें, अमृत को पहचाने, नित्य को पहचाने, प्रबुद्ध को पहचाने। उसको, जो कभी बन्धन से नही गिरा, उस मुक्त को पहचाने तो हम सारे जगत को एक नयी मनुष्यता मे परिवर्तित कर सकते हैं।

अणु का उत्तर आत्मा है, विज्ञान का उत्तर धर्म है।

फैली हुई विकृति और विकार का उत्तर सस्कृति है।

केवल आत्म-ज्ञानी सस्कृत होता है।

अज्ञानी प्रकृत होता है और अज्ञानी अगर अज्ञान मे तृप्त हो जाय तो विकृत हो सकता है। अज्ञानी प्रकृत होता है और अगर अज्ञानी ऊपर उठने की आकाक्षा छोड दे तो विकृत हो जाता है। और अगर ऊपर उठने की आकाक्षा से भरे तो सस्कृत होता चलता है। जिस दिन भीतर परिपूर्ण आत्म-ज्ञान उदय होता है, उसी दिन व्यक्ति सुसस्कृत होता है। जगत को सस्कृति देनी है और सस्कृति तो

हिंसक नहीं हो सकती, केवल विकृति हिंसक हो सकती है। जगत को संस्कृति देनी है, तो आत्म-ज्ञान की आकांक्षा देनी जरूरी है, प्यास को जगाना जरूरी है—एक-एक आदमी के भीतर जो सोया है, वह जो प्रदीप हो सकता है, लेकिन प्रसुप्त है, वह जो जाग सकता है, लेकिन सोया है, नींद में है। वह जो अमूर्छित, अप्रमत्त हो सकता है, लेकिन मूर्छित और बेहोश है—उसे पुकारना जरूरी है। एक-एक व्यक्ति के भीतर पुकार देनी जरूरी है कि जागो और जगाओ अपने को। तुम्हारा जागरण सारे जगत की रक्षा हो सकता है। एक-एक व्यक्ति का जागरण सारे जगत की रक्षा हो सकता है। एक-एक व्यक्ति का अपने मे प्रतिष्ठित हो जाना, विश्व की विकृति के संस्कृति मे बदलने का मार्ग बन सकता है।

यह थोडी सी बाते मैं कहा हू। बहुत प्रीति से, आनन्द से आपकी आखों को देख रहा हू, पहचान रहा हू। बहुत प्यार से इन बातो को सुना, इसलिए बहुत बहुत अनुगृहीत हू।

अन्त मे एक ही प्रार्थना करता हू—जगायें, अपने भीतर पुकारें उसको, जो सोया है। अगर वह महावीर मे जग सका, बुद्ध मे जग सका, तो कोई कारण नही है कि हमारे भीतर नही जगेगा। ठीक ऐसी ही हड्डी-मांस के वे लोग थे, ठीक इन्ही विकृतियो, इन्ही सीमाओ से घिरे हुए थे, जो हमारी हैं। अगर वे जाग सके, तो अपमान है हमारा कि हम न जाग सकें। तिरस्कार है हमारा, अगर हम न जाग सके। अगर एक भी मनुष्य कभी जागा है, तो प्रत्येक दूसरा मनुष्य जाग सकता है। क्यो न वह दूसरा मनुष्य मे हो जाऊ? यही प्रार्थना है कि वह दूसरा मनुष्य होने का प्रत्येक प्रयास करे। प्रत्येक आकांक्षा से भरे, प्रत्येक अतृप्त हो जाय, प्यास से पुकारे अपने भीतर—निश्चित जागरण हो सकता है।

इस प्रार्थना के साथ अपनी बात को पूरा करता हू और आप सबके भीतर बैठे, उस सोये हुए को प्रणाम करता हू, जो जाग जाय, तो प्रभु हो सकता है और सो जाय तो पशु हो सकता है।

मेरे प्रणाम स्वीकार करे।

व्यक्ति है परमात्मा

महावीर जयती के अवसर पर थोडी सी बाते आपसे कहू, इससे मुझे आनन्द होगा। आनन्द इसलिए होगा कि आज मनुष्य को मनुष्य के ही हाथो से बचाने के लिए सिवाय महावीर के और कोई रास्ता नही है।

मनुष्य को मनुष्य के ही हाथो से बचाने के लिए महावीर के सिवाय और कोई रास्ता नही है।

ऐसा कभी कल्पना मे भी सभव नही था कि मनुष्य खुद के विनाश के लिए इतना उत्सुक हो जायेगा। इतनी तीव्र आकाक्षा और प्यास उसे पैदा होगी कि वह स्वय समाप्त कर ले, इसकी हमने कभी कल्पना भी नही की थी। लेकिन विगत् पचास वर्षों से मनुष्य अपने को समाप्त करने के सारे आयोजन कर रहा है! उसकी पूरी चेष्टा यह है कि एक दूसरे को हम कैसे समाप्त कर दें, कैसे विनष्ट कर दें! पिछले पचास वर्षों मे दो महायुद्ध हमने लडे है और दस करोड लोगो की हत्या की है। और ये युद्ध बहुत छोटे युद्ध थे, जिस तीसरे महायुद्ध की हम तैयारी में है, सभव है वह अतिम युद्ध हो, क्योकि उसके बाद कोई मनुष्य जीवित न बचेगा। मनुष्य ही जीवित नही बचेगा, वरन् कहा जा सकता है, कोई प्राण जीवित नही बचेगा।

मैं एक छोटी सी, छोटी सी गणना आपको दू—अगर सौ डिग्री तक पानी गर्म किया जाय और उस गरम उबलते पानी मे आपको हम डाल दे, तो क्या होगा? शायद आपका बचना मुश्किल हो। अगर हम पन्द्रह सौ डिग्री तक लोहे को गरम करें तो पिघलकर पानी हो जायेगा। उस पिघले हुए लाहे में अगर हम आपको डाल दें तो क्या होगा? आपका बचना असभव हो जायेगा। अगर हम

पच्चीस सौ डिग्री तक लोहे को करें तो वह भाप बनकर उड़ने लगेगा। उस पच्चीस सौ डिग्री गर्मी में किसी भी प्राणी के बचने की कोई संभावना शेष नहीं रहेगी।

लेकिन यह कोई गर्मी नही है, यह कोई उत्ताप नही है। एक हाइड्रोजन बम के विस्फोट से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है दस करोड डिग्री। दस करोड डिग्री की गर्मी मे किसी तरह के प्राणी के बचने की कोई सभावना नहीं होगी। और ऐसे हाइड्रोजन-बम आज जमीन पर पचास हजार की सख्या में निर्मित हैं। ये पचास हजार उद्जन-बम इस जमीन को सात बार मिटाने में समर्थ होगे। इसको वह पश्चिम मे ओव्हर किलिंग केपीसिटी कहते हैं। वे कहते हैं कि अगर एक आदमी को हमें सात-सात बार मारना पडे, तो भी हम जमीन को नष्ट करने मे समर्थ हैं। यह बहुत आश्चर्य की बात है। एक आदमी तो एक बार मे ही मर जाता है, उसे सात बार मारने की कोई जरूरत नही है।

लेकिन जो सदी लोगो को विनाश करने के लिए इतनी शक्ति पैदा कर रही है, उस सदी के सम्बध मे विचार करना होगा। सोचना होगा, क्या कोई पागल हो गया है? क्या मनुष्य पागल हो गया है? और मैं आपको आज यह कहना चाहूगा कि जो मनुष्य धर्म से सयुक्त नही होता, वह आज नही कल पागल हो जाता है। और एक आदमी पागल हो जाय, यह बहुत बडा खतरा नही है—कोई पूरी कौम पागल हो जाय, कोई पूरी सदी पागल हो जाय, पूरा मनुष्य समाज पागल हो जाय तो क्या होगा?

मैं एक छोटी सी कहानी आपको कहू, वह मुझे बडा प्रीतिकर रही है और मुल्क के न मालूम किन-किन लोगो के बीच जाकर उसे कहा है।

ईश्वर ने यह देखकर कि मनुष्य को यह क्या हो गया है, उसने दुनिया के तीनो बडे प्रतिनिधि राष्ट्रो के लोगो को अपने पास बुलाया। ऐसा कोई ईश्वर कही है नही। ऐसा ईश्वर कही भी नही है, जो किसी को बुलाये। एक काल्पनिक और झूठी कहानी आपसे कह रहा हू।

ईश्वर ने दुनिया के तीन बडे राष्ट्रो के प्रतिनिधियो को अपने पास बुलाया—अमरीका को, रूस को, ब्रिटेन को। और उसने उनसे कहा कि तुम इतनी शक्ति तो पैदा कर लिये हो, लेकिन उस शक्ति से तुम कोई सृजन नही कर पाते। तुमने इतनी शक्ति पैदा की है, लेकिन उससे जीवन के लिए तुम सहयोगी नही बन रहे हो! तुम्हारी शक्ति तुम्हारी मृत्यु बन जाय, यह बहुत आश्चर्यजनक है।

अगर मैं तुम्हारे कुछ सहयोग का बन सकू, अगर मेरा कोई वरदान तुम्हारे काम आ सके, तो वरदान माग लो।

अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, एक ही वरदान हम मांगते हैं—एक छोटा सा वरदान पूरा हो जाय, और हमारी सब तृप्ति हो जायेगी। ईश्वर ने प्रफुल्लित होकर कहा, मागो। और अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, एक हमारी आकाक्षा है कि जमीन तो रहे, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाय। ईश्वर ने बहुत वरदान दिये होगे। कहानिया है हजारो ईश्वर के वरदान देने की, लेकिन ऐसा वरदान कभी किसी ने मागा नही था! उसने बहुत उदासी और दुख से रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा। उस प्रतिनिधि ने कहा, महानुभाव, एक तो हमारा विश्वास नही है कि आपकी कोई सत्ता है। हम मानते ही नही हैं कि ईश्वर है। और पच्चीसो वर्ष हुए हमने अपने मदिर और मस्जिदो मे, और अपने गिर्जाघरो से आपका निकालकर बाहर कर दिया है। लेकिन हम आपको वापस प्रतिष्ठा देंगे, और फिर आपकी मूर्तियो के सामने धूप और दिये जलायेगे, अगर एक छोटी सी बात पूरी हो जाय, तो वह प्रमाण देगी कि ईश्वर है। ईश्वर ने कहा, कौन सी बात? रूस के प्रतिनिधि ने कहा, एक छोटी सी बात, जमीन के नक्शे पर अमरीका के लिए कोई रग और रेखा न रह जाय। ईश्वर ने बहुत हैरान होकर और घबडाकर ब्रिटेन के प्रतिनिधि की तरफ देखा और उसने जो कहा, वह मन मे रख लेने जैसा है। उसने कहा, मेरे प्रभु, हमारी अपनी कोई आकाक्षा नही है। इन दोनो की आकाक्षाए एक साथ पूरी हो जाय, तो हमारी आकाक्षा पूरी हो जाती है।

यह बात हमें हसने जैसी लगती है। यह बात हसने जैसी नही है, यह बात रोने जैसी है। और इसमे बडी बात रोने जैसी दूसरी नही हो सकती है। और अगर आप इसपर हसते है, तो आप गलती करते हैं। मैंने बहुत सोचा कि मैं भी इस पर हस पाऊ, लेकिन नही हस पाया। मैंने इस कहानी को अपने से बहुत बार कहा है और मैंने चाहा कि मैं हसूं, लेकिन मैं नही हस पाया और मेरा हृदय आसुओ से भर गया है। और यह कहानी बिल्कुल झूठ है, मैंने कहा, लेकिन यह कहानी झूठ नही है, यह कहानी बिल्कुल सच है।

यह कहानी इसलिए सच है कि हमारी ये आकाक्षाए आज हैं। आज हम चाहते हैं कि नष्ट हो जाय, दूसरे मिटा दिये जाय। हम यह समझ रहे है कि हमारे जीवन का रहस्य इस बात मे है कि दूसरे को मृत्यु मिल जाय! हम नासमझ

और पागल हैं। जीवन का रहस्य इसमें है कि दूसरो को और महान जीवन मिल जाय। अगर हम जीवन चाहते हैं खुद, तो जीवन हमे बांटना होगा। जो मौत को बांटेगा, वह स्वय मौत मे गिर जायेगा।

यह कहानी जो मैंने कही, इसलिए मैंने कही कि यह रोने जैसी है, क्योंकि यह आज दुनिया की हालत है। और यह दुनिया की हालत है, इससे यह मत समझना कि आपकी हालत नही है। आपका भी आनन्द इसमे हैं कि आपका पड़ोसी मर जाय! आपकी भी खुशी इसी मे है कि कोई समाप्त हो जाय! आप चौबीस घण्टे इस प्रयत्न मे लगे हैं विचार से, मन से, वाणी से कि किसी को नष्ट कर दें! हम सब इसमे सम्मिलित हैं, जो दूसरे के नष्ट होने का विचार करते हैं।

और धर्म की शुरुआत इस बात से होती है कि जो अपने निर्माण का विचार करता है। धर्म की शुरुआत इस बात से होती है कि जिसका ध्यान इस बात मे है कि मैं जीवन को उपलब्ध हो जाऊ। अधर्म की शुरुआत इस बात से होती है, जिसे इस बात का ध्यान है कि दूसरा मृत्यु को उपलब्ध हो जाय, दूसरा मिट जाय, दूसरा गिर जाय। धर्म की शुरुआत इस बात मे है कि मैं जीवन को उपलब्ध हो जाऊ। और धर्म की सिद्धि इस बात मे है कि सब जोवन को उपलब्ध हो जाय।

ऐसी जो स्थिति है, ऐसे जो विनाश का चिन्तन है—ट्रूमैन को, जब वह अमरीका का प्रेसिडेंट था और जब उसकी आज्ञा से हिरोशिमा पर और नागासाकी पर पहला अणु बम गिराया गया था, और वहा लाख लोग सोते-सोते समाप्त हो गये थे। दूसरे दिन सुबह ट्रूमैन जब उठे, तो पत्रकारो ने उनसे पूछा, कि रात आपको नीद आयी? यह पूछने जैसा था। अगर मेरी आज्ञा से एक लाख लोग साफ हो जाय तो फिर अनन्त काल तक इस जगत मे मैं सो नही सकता हू। और अगर मैं सो जाऊ तो मुझे आदमी कहना मुश्किल है, मुझे पत्थर कहना होगा। पत्रकारो ने उससे सुबह-सुबह पूछा, रात आपको नीद आयी? ट्रूमैन ने कहा, बहुत वर्षों के बाद पहली दफा सोया! उसने कहा, बहुत वर्षो के बाद पहली दफा सोया, मामला खत्म हो गया! हम जीत गये!

एक लाख आदमी रात सोये हुए समाप्त हो गये हैं, इसकी पीडा जहा न छूटी हो, ऐसे मनुष्यो के समाज और युग को विक्षिप्त कहने की मुझे आज्ञा नहीं देगे? ऐसे समय को पागल कहने की मुझे आज्ञा नही देगे? और स्मरण रखें, यह किन्ही और के लिए मैं नही कह रहा हू, यह मैं आपसे कह रहा हू। यह मैं हरेक

से कह रहा हू। क्योकि हम हैं, जो इसे बनाते हैं। हम हैं, जो इस समाज को बनाते हैं, इस सभ्यता को बनाते हैं। समाज और सभ्यता आसमान से नही उतरते। हम उन्हे निर्मित करते हैं। हम उनके निर्माता हैं।

हर आदमी जो मौजूद है इस जमीन पर, इस जमीन पर जो हो रहा है, उसका सहयोग उसमे है। अगर दुनिया मे दस करोड लोग मारे गये हैं, स्मरण रखें, उस हत्या का जिम्मा आप पर है। कोई यह भूल से न समझे कि उस हत्या का जिम्मा मेरे पर नही है। जो सोचता हो कि मैं चीटियो को बचाकर निकल जाता हू, जो सोचता हो कि पानी छानकर मैं पी लेता हू, इसलिए मुझ पर हिंसा का क्या भार है, वह नासमझ है। उसे पता नही, हिंसा बहुत गहरी और बहुत सामूहिक है। अगर मेरे मन मे थोडा सा भी क्रोध उठता है, अगर मेरे मन में थोडी सी भी घृणा उठती है, अगर मेरे मन मे दूसरे को नष्ट करने का थोडा सा विचार उठता है, तो नागासाकी मे जो अणु बम गिरा, उसमे मेरा हाथ है। और भविष्य मे भी अगर किसी मुल्क पर किसी का दुर्भाग्य होगा और अणु बम गिरेंगे तो उसमे मेरा हाथ होगा। वह मेरे छोटे से क्रोध की चिनगारी इकट्ठी होती है, तो युद्ध मे परिणत हो जाती हैं। बडे युद्ध आकाश से नही लडे जाते हैं, लोगो के हृदय मे लड जाते हैं। अगर आपके हृदय मे क्रोध उठता है, तो सारे युद्धो के लिए आप जिम्मेवार होगे। अगर आपके हृदय मे घृणा उठती है, तो सारे युद्धो का भार और उसका दायित्व आपको अनुभव करना होगा। और जब तक यह अनुभव न हो, जब तक इस सारी जमीन पर जो हो रहा है, उसमे अपने को सहयोगी अनुभव न करू, तब तक मैं धार्मिक नही हो सकता हू।

यह जो स्थिति है समय की, यह जो रुख है चीजो का, यह जो प्रवाह है समय का, इसे बदलना होगा, अगर मनुष्य को बचाना है। अगर मनुष्य को बचाना है, तो मनुष्य को बदलना अपरिहार्य हो गया है। और अगर हम थोडी देर भी चूक गये और मनुष्य को हम नही बदल सके तो मनुष्यता को बचाना असभव हो जायेगा। यह प्रकाश-वर्ष भी मुश्किल है कि आदमी बच जाय। यह मुश्किल है कि हम सन् दो हजार देख पायें। हम बीसवी सदी को पूरा होते देख पायें, यह असभव है मालूम होता है, अगर जैसा मनुष्य है, अगर वैसा ही वह रहा। यह मुश्किल है कि मनुष्य के बचने की कोई सभावना मानी जाय। मनुष्य का भाग्य, मनुष्य का जीवन और भविष्य समाप्त हो गया है। एक ही आशा की किरण है कि मनुष्य परिवर्तित हो सके। और वह मनुष्य के परिवर्तन की किरण महावीर से मिल सकती है।

जब मैं यह कहता हूं कि महावीर से मिल सकती है, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि वह क्राइस्ट से नही मिल सकती है। मेरा यह मतलब नही है कि वह कृष्ण से नहीं मिल सकती है। मेरा यह मतलब नही है कि वह बुद्ध से नहीं मिल सकती है। जब मैं कहता हू, महावीर से मिल सकती है, तो मेरा मतलब महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट—सबसे है। मुझे यह दिखायी नही पडता कि एक दिये मे जो रोशनी जलती है, वह दूसरे दिये की रोशनी से भिन्न होती है। अगर मैं कहता हू कि इस दिये से रोशनी मिल सकती है, तो मैं यह कहता हू कि रोशनी केवल दिये से मिल सकती है। और वे दिये कही भी जले हो। वह महावीर के नाम से जले हो, वह बुद्ध के नाम से जले हो, वह कृष्ण के नाम से जले हो, इससे कोई फर्क नही पडता। रोशनी को पहचाने और शरीर को छोड दें। मिट्टी के दियो को छोड दें और प्रकाश की ज्योत को पहचाने।

महावीर मे वह ज्योति है। और जो लोग उस ज्योति को प्रेम करेंगे और जो लोग उस ज्योति को आमंत्रित करेंगे अपने भीतर, उनके भीतर भी जल सकती है। जिनके दिये बुझे हो, वे उन दियों के करीब जाये, जहा रोशनी जल रही है। और जिनके भीतर के प्राण सो गये हो, वे उन प्राणो के स्रोतो से सबधित हो जाये, जहा अनन्त जीवन उपलब्ध हुआ है। उनके भीतर भी घटना घट सकती है।

इस विचार से मैं आनदित हू कि महावीर के सबध मे थोडी सी बाते आपसे कहूगा। आनदित इसलिए नही हू कि महावीर के स्मरण का कोई मूल्य है, आनदित इसलिए हू कि सहज वह स्मरण आपके भीतर कोई प्यास पैदा कर दे। शायद वह स्मरण आपके भीतर कोई अपमान पैदा कर दे। शायद आपको लगे कि जो महावीर के भीतर सभव हो सका, वह जब तक मेरे भीतर संभव न हो जाय, तब तक मेरी मनुष्यता अपमानित है। तब तक मैं अपनी ही आखो मे गिरा हुआ और पतित हू। और इस जगत मे अपनी आखो में गिर जाने से बडी दुर्घटना दूसरी नही है। हम अपने सबध मे विचार करेंगे, अन्तर्दर्शन करेंगे, तो हमे दिखायी पडेगा—हम क्या हैं और हम क्या हो सकते है ?

हम क्या हो सकते हैं, इसके सबूत हैं महावीर, इसके सबूत हैं बुद्ध, इसके सबूत है कृष्ण। हर मनुष्य क्या हो सकता है, इसके प्रतीक है वे। मुझे ऐसा लगता है आपको भी मैंने कहा—मुझे ऐसा लगता है कि जब मैं आपकी तरफ देखता हू तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसे बीजो का एक ढेर लगा हो। और हर

बीज वृक्ष हो सकता है, ऐसा मुझे लगता है। इस सारी जमीन पर महावीर भरे हैं, लेकिन बीज की शक्ल मे और अगर वे चाहे, और सकल्प की ऊर्जा उनमे जागे और अग्नि उनमे प्रज्वलित हो साधना की, तो शायद उनके बीज भी फूट जाय और उनसे भी वृक्षो का जन्म हो जाय।

महावीर अगर वृक्ष हैं, तो आप भी उसी वृक्ष के बीज हैं। अगर यह स्मरण, उनकी स्मृति का दिन आपके भीतर यह भाव पैदा कर दे, अगर यह ख्याल पैदा कर दे, अगर यह सपना पैदा कर दे कि जो उनके लिए सभव हुआ है, वह मुझे भी सभव हो सकता है, तो यह घटना आनन्द की बन जायेगी। इसलिए मैंने कहा, मैं आनंदित हू। महावीर के सम्बन्ध मे कुछ कहू, इसके पहले थोडी सी बाते मुझे और कह देनी है।

मैं यहां आया, आते से मुझे पता चला, आते से मुझे बताया गया कि कुछ लोगो ने कहा है कि अगर मै बोलूगा, तो वे मुझे पत्थर मारेंगे। वह इसलिए पत्थर मारेगे कि मेरी बाते महावीर के विपरीत हैं। मैने उनसे कहा, अगर वे पत्थर मुझे मारेंगे तो वे साबित करेंगे कि वे महावीर के प्रेमी नही हैं। अगर मेरी बाते महावीर के विपरीत है, तो भी मुझे पत्थर मारने का कोई कारण पैदा नही होना। और जो मुझे पत्थर मारेगा, वह अगर सोचता हो कि महावीर का प्रेमी है, तो वह पागल है, वह नासमझ है। महावीर के प्रेम की पहली शर्त यह है कि जब तुम्हे कोई पत्थर मारे तो तुम उसे प्रेम देना।

महावीर के प्रेम की पहली शर्त यह है कि जब तुम्हे काई पत्थर मारे, तो तुम उसे प्रेम दना।

मैंने पूछा कि वह मुझे क्यो पत्थर मारेगे? तो मुझे बताया गया, मुझे कुछ बाते बतायी गयी, जिनका मैं उल्लेख करू, उनके माध्यम से महावीर का समझना आसान हागा।

मुझे बताया गया कि जब मै कहता हू महावीर, तो मैं भगवान् नहीं जोडता। मैंने कहा, मेरा प्रेम भगवान् जैसे औपचारिक शब्द को जोडने को राजी नही होता। जिनको हम प्रेम करते हैं—जितना हम उनको प्रेम करते हैं, उतनी ही औपचारिक बातें उनके सम्बन्ध मे व्यर्थ हा जाती है। अगर महावीर को स्मरण करते वक्त इतना प्रेम न भरता हो कि हम उन्हे तू कह कर बुला सकें, तो हममे प्रेम ही नही है। मैंने कहा, मैं तो उन्हे भगवान् नही कहूगा। भगवान् न कहने का मतलब यह है कि मैं उनको भगवान् जानता हू। भगवान् न कहने

का मतलब यह है कि मैं उनको भगवान् जानता हूं। भगवान् न कहने का मतलब यह है कि मैं पहचानता हूं कि वह भगवान् हैं। इसे कहने और दोहराने की बात नहीं है, इसे हृदय में समझने और पहचानने की बात है। जो इसे कहेंगे केवल, इसे दोहराते रहेंगे मंत्र की तरह, उनके दोहराने से कुछ भी नहीं होगा।

मुझे कहा गया है कि जो मैं कहता हू, वह शास्त्र के विपरीत है। मैंने कहा, महावीर की आस्था शास्त्र में नही है। महावीर की आस्था स्वय मे है। और अगर महावीर की कोई क्रान्ति है बहुमूल्य तो वह यह है कि उन्होने इस मुल्क को शास्त्र से मुक्त करने की कोशिश की। महावीर के समय मे शास्त्र सब कुछ थे, वेद सब कुछ थे। महावीर ने कहा, वेद नही, शास्त्र नही, स्वय का अनुभव अर्थपूर्ण है। महावीर ने कहा, हम शब्दो को न मानेगे, हम तो अनुभूतियो को मानेंगे।

लेकिन हम ऐसे पागल हैं कि जिस महावीर ने यह कहा हो कि शास्त्र नही है मूल्यवान, स्वय का अनुभव और स्वाद मूल्यवान है, हम उनकी ही वाणी को शास्त्र बना लेगे और उसको पूजेगे! यह घटना सारी जमीन पर घटी है—महावीर के अनुयायियो मे, मुहम्मद के अनुयायियो मे।

मुहम्मद ने कहा है, शान्ति और मुहम्मद के इस्लाम-धर्म का अर्थ भी होता है, शाति का धर्म। लेकिन भक्तो ने क्या किया? उनके भक्तो ने जितनी अशांति दुनिया मे फैलायी, और किसी ने नही फैलायी!

क्राइस्ट ने कहा है, कोई तुम्हारे एक गाल पर चाटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देना। लेकिन क्राइस्ट के मानने वालो ने जितने गालो पर चाटे मारे हैं, उनका कोई हिसाब नही है! क्राइस्ट के मानने वालो ने जितने गालो पर चाटे मारे हैं, उनका कोई हिसाब नही है! और क्राइस्ट के मानने वालो ने जितनी छातियो पर सगीने कोची है और जितनी छातियो पर पैर रोदे हैं, उसका कोई मुकाबला नही है! बहुत आश्चर्यजनक मालूम होता है।

महावीर ने कहा है प्रेम, और अगर महावीर का कोई भक्त कहता हो कि हम किसी को पत्थर मारेंगे, तो विचारणीय हो जायेगा। और महावीर ने कहा है अपरिग्रह और महावीर के भक्तो के पास परिग्रह इकट्ठा हो, तो विचारणीय हो जायेगा। और महावीर ने कहा है, वेद-शास्त्र छोड़ने का अनुभव और कोई महावीर की वाणी को ही वेद बना दे तो गल्ती हो जायेगी, विचारणीय हो जायेगा।

मैं आपको कहू कि दुनिया मे जितने धर्म के मानने वाले हैं, उनमे से मुश्किल से कोई अनुयायी है। जिनकी आप पूजा करते हैं, उनके ही आप दुश्मन हैं, उनके ही आप शत्रु हैं! नीत्शे ने एक वचन कहा था, उसने कहा था पहला और अंतिम क्रिश्चिअन सूली पर लटका कर मार डाला गया—पहला और अंतिम क्रिश्चिअन! उसने कहा था, क्राइस्ट पहला और अन्तिम क्रिश्चिअन था। उसके बाद कोई क्रिश्चिअन नही हुआ। मैं आपको स्मरण दिलाऊ, महावीर के बाद भी कोई जैन नही हुआ।

तो बुद्ध के साथ, कृष्ण के साथ, सबके साथ वैसी घटना घटी है। जो उनके पीछे दिखायी पडते हैं, वे उनके पीछे नही हैं। जो उनके पीछे मालूम पडते है, वे उनके पीछे नही है। महावीर के पीछे होना आसान नही है। और इस भूल मे कोई न पड जाय कि मैं जैन के घर मे पैदा हो गया तो महावीर के पीछे हो गया। पागल हैं, ये बाते इतनी सस्ती नही होती है। अगर मान ले इतना आसान है, तो सब हल हो गया होता।

धार्मिक होना इस जगत मे सबसे बडे दुस्साहस की बात है।

धार्मिक होना पैदाइश से सम्बन्धित नही है। धार्मिक होने के लिए तो दूसरा जन्म खुद लेना होता है। एक जन्म जो मा बाप से मिलता है, वह केवल शरीर का जन्म है। एक दूसरा जन्म है, जो केवल खुद के सकल्प और साधना और श्रम से उत्पन्न करना होता है। वही वास्तविक जन्म है। उसके बाद ही व्यक्ति धार्मिक बनता है। तो कोई इस भूल मे न रहे कि महावीर के मानने वालो के घर मे पैदा हो गये हैं, तो हम जैन हो गये हैं।

महावीर के घर मे पैदा होने से कोई जैन नही होता है।

उपनिषदो में एक ऋषि हुआ है, उद्दालक। उसका पुत्र जब अध्ययन करके शास्त्रो का घर वापस लौटा—सारे शास्त्रो का अध्ययन करके वापस लौटा तो गर्व से और अहकार से भरा हुआ आया। पण्डित से ज्यादा प्रगाढ अहकार और किसका होता है? वह गरूर और अहकार से भरा हुआ घर मे आया। पिता ने देखा, अहकार की सीमा नही है! पिता ने पूछा सब पढ आये? उसने कहा, मैं सब पढ आया, जो भी पढने योग्य था सब पढ आया। जो भी पढने जैसा था, सब पढ आया। सब शास्त्र, सब वेद पढ़कर लौटा हू। उसके पिता ने आख नीची कर ली और उसने कहा, जहा तक मैं देख रहा हू तुम्हे, मुझे दिखायी पडता है कि जो पढना था, वही तुम छोडकर सब पढ आये हो। तो पूछा क्या है वह?

उसके पिता ने कहा, जो शास्त्रों में नही लिखा है, जो वेदो, पुराणों में नही लिखा है, जो कभी लिखा नहीं जा सका, जो कभी लिखा नही जा सकेगा, उसे जो पढ़ लेता है, वही तो पढ़ता है। और उसे जो पढ़ लेता है, उसे जो जान लेता है, वह सब जान लेता है। तो तुम अगर किताब ही पढ़कर लौटे हो, तो अभी पढ़ना तुम्हारा शुरू भी नहीं हुआ। उसने कहा, उसे मैं कैसे जानू, और उसको जानना क्या जरूरी है ? उसके पिता ने कहा, हमारे परिवार में अब तक ब्राह्मण होते रहे हैं, ब्राह्मण-बन्धु नही। उसके पुत्र ने पूछा, इसमे फर्क क्या है ? उसने कहा, जो ब्राह्मण के घर मे पैदा होने से ब्राह्मण कहलाये, वह ब्राह्मण-बन्धु है। और जो ब्रह्म को जानने से ब्राह्मण कहलाये, वह ब्राह्मण है।

मुझे बात ठीक लगती है। जो क्रिश्चिअन के घर मे पैदा होने से क्रिश्चिअन कहलाये, वह क्रिश्चिअन-बन्धु है। जो जैन घर मे पैदा होने से जैन कहलाये, वह जैन-बन्धु है। जैन होना, क्रिश्चिअन होना, बड़ी दूसरी बाते है।

तो मैंने उनको कहा कि मुझे तो यह दिखायी पड़ता है कि महावीर की क्राति शब्द के विपरीत है और आत्मा के पक्ष मे है। शास्त्र के विपरीत है और स्वय के पक्ष मे है। सारे शास्त्रो के और सारे सिद्धान्तो के जाल से महावीर मुक्त करना चाहते हैं, ताकि आपको अन्तर्दर्शन हो सके।

शास्त्र बाहर है और सत्य भीतर है।

जो शास्त्रो मे खोजेगा, वह खो देगा, पा नही सकेगा। और जो भीतर ढूढेगा, वह पा लेगा।

एक बात और कहू, जो भीतर पा लेता है, वही शास्त्र को समझ भी पाता है। क्योंकि जो भीतर अनुभव कर लेता है, अनुभव ही उन शब्दो के अर्थों को स्पष्ट कर जाता है। जो स्वय को जानता है, वह शास्त्र को समझ पाता है। जो शास्त्र को ही समझता रहता है, वह कभी स्वय को नही जान पाता है।

महावीर की बुनियादी क्राति शब्द के, प्रतीक के, सिम्बल के विपरीत है। और अगर वे कहते हैं कि मेरी बात शास्त्र के विपरीत मालूम होती है। तो मैंने कहा, हो सकता है, मेरी बात महावीर के पक्ष मे हो, इसलिए शास्त्र के विपरीत पड़ जाती है। अब तक सारे शास्त्र---जिन्होने सत्य जाने हैं, उनके विपरीत पड़ जाते हैं। यह बड़ी आश्चर्य की बात है। यह बहुत आश्चर्य की बात है, ऐसा हो जाता है और इसका कारण है।

मैंने एक बाउल फकीर का एक गीत पढ़ा था। उसने अपने गीत में कहा है कि जब कोई व्यक्ति धर्म की ज्योति को उपलब्ध होता है, तो उसके हाथ मे ज्ञान की मशाल आ जाती है। उसकी मशाल से प्रभावित होकर न मालूम कितने अन्धे और आखहीन लोग उसके पीछे हो जाते हैं। उसके अनुग्रह मे, उसके प्रेम मे, उसके प्रकाश की सभावना मे बहुत लोग उसके पीछे चलने लगते हैं। फिर वह आदमी एक दिन समाप्त हो जाता है। और जब वह आदमी गिरता है तो उसकी मशाल भी गिर जाती है और तब कोई अन्धा उनमे से, जो उनके पीछे हो गये थे, उस मशाल को उठा लेता है। लेकिन दुर्घटना यहा हो जाती है। उस मशाल मे जो ज्योति थी, वह डडे मे नहीं थी। उस मशाल मे जो ज्योति थी, वह उस आदमी के प्राणो मे थी, जो उसे पकड़े था। उस ज्योति को अपने प्राणो से वह जलाये था। उसके गिरते ही ज्योति तो गिर जाती है, डडा हाथ मे रह जाता है। और अन्धे उस डण्डे को लेकर चलते है। वह जो धर्म का डण्डा है, उसे लेकर चलते हैं, जिसकी ज्योति बुझ जाती है। इसलिए ये डण्डे आपस मे टकराते हैं।

बहुत से अन्धे हैं जमीन पर। बहुत से अन्धे उन डण्डो को लिये हैं और वे सारे अपने-अपने डण्डो को लेकर अन्धेरे मे चल रहे हैं। इसलिए उनकी आपस मे टक्कर हो जाती है। धर्मों की कही टक्कर हो सकती है? दो धर्म कही लड सकते हैं? लेकिन धर्म लडते हुए मालूम पडते है। इसका अर्थ है, वहा धर्म नही होगा, वहा डण्डे रह गये हैं अन्धे आदमियो के हाथो मे। और अन्धे अन्धो का नेतृत्व करते हैं। यह दुर्भाग्य है, और यह सदा होता रहा है, और इसके पीछे कारण है।

इसके पीछे कारण है। जो व्यक्ति भी यह सोचता हो कि दूसरे की ज्याति से मैं चल सकता हू, गलती मे है। अपनी ज्योति से ही केवल चलना हाता है।

एक साधु एक सध्या को अपने मित्र को विदा करता था। रात अन्धकार से भरी थी। उसके मित्र ने कहा, इस अन्धेरे मे कैसे जाऊ? उसके दोस्त साधु ने कहा, मैं दीया जला देता हू। उसने एक दीया जलाया और अपने मित्र के हाथो मे दिया। लेकिन जैसे ही वह मित्र दीये को लेकर सीढिया उतरने लगा, उस साधु ने उस दीये को फूककर बुझा दिया। घुप्प-अन्धकार, और भी गहरा हो गया। उसके मित्र ने कहा, यह क्या किया? दीया दिया और बुझा भी दिया? उसके मित्र ने कहा, दूसरे का दीया काम नही करता। अपनी ज्योति हो तो ही अन्धकार से बचना हो सकता है। अपनी ज्योति न हो, तो दूसरे के दीये काम नही पडते हैं।

मैं आपको कहूं, महावीर का दीया भी आपके काम नहीं पड़ सकता, जब तक कि आपके भीतर दीया अपना न जल जाय।

इस बात को महावीर ने बड़े अद्भुत ढग से कहा। इस बात को उन्होंने बड़े गहरे ढग से कहा, बड़े गहरे ढग से प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा, परमात्मा के प्रसाद से भी कोई सत्य को नही पा सकता है। उन्होने कहा, किसी गुरु-कृपा से कोई सत्य को नही पा सकता है। किसी के आशीर्वाद से, किसी से भिक्षा मे, किसी से दान में, किसी से चोरी मे सत्य को नही पाया जा सकता। सत्य को पाना हो तो स्वय का श्रम करना होगा। इसलिए महावीर की परपरा श्रमण-परपरा कहलायी। उसका अर्थ है, अपनी मेहनत—और अपनी मेहनत के सिवाय और कोई रास्ता नही है। और जो अपनी मेहनत के सिवाय कोई रास्ता सोचता है, उसके मन में चोरी है, उसके मन मे भिक्षा है। और सब मिल जाय चोरी से, सत्य नही मिल सकता है। जो न चुराया जा सकता है, जो न मागा जा सकता है, जो न छीना जा सकता है, उसे तो केवल अपने श्रम से ही उपजाना होता है। ऐसे सत्य को पाने की जो परपरा है, वह श्रमण-परम्परा है। और मेरा मानना यह है कि सारी दुनिया मे, जब भी किन्ही ने सत्य पाया है, तब वे श्रमण रहे है, तब उन्हे श्रम करना पडा है। मुफ्त मे सत्य किसी को उपलब्ध नही हुआ।

तो जिस महावीर ने यह कहा हो कि अपने ही श्रम और अपनी ही प्रतिष्ठा और अपने ही आधार पर खडे होकर, अतरग—सारी तरग छोडकर जो व्यक्ति अपनी साधना मे सलग्न होता है, वह सत्य को पाता है। इसलिए मानने वाला कोई कहता हो कि मेरी बात शास्त्र के विपरीत पड जाती है—तो मैंने कहा, सोचना तुम, मेरी बात शास्त्र के विपरीत नही पडती होगी, तुम्हारी विपरीत पड जाती होगी। और जिस दिन जानोगे भीतर, तो पाओगे, जो मैं कह रहा हू, वह मैंने चाहे शास्त्र देखा हो या न देखा हो, उससे भेद नही पडता। अगर सत्य कुछ है—तो आपने कोई भी शास्त्र न देखे हो और अपने भीतर प्रविष्ट हो गये हो तो सारे शास्त्र देख लिये हो जायेगे। और आपकी वाणी और आपके विचार और आपकी अनुभूति की गवाही सारे शास्त्र बन जायेगे। और जिसने शास्त्र सीखे हो उनको दोहराकर रट लिया हो, उनको स्मरण कर लिया हो, उनको सूत्रो को दोहराकर समझाना शुरू कर दिया हो, उसका कोई मूल्य नही है। इसलिए मैंने कहा, शास्त्र नही, स्वय—महावीर की प्रतिष्ठा है। स्वय-प्रवेश का उनका आग्रह है।

और यह आग्रह इस पूरे मनुष्य के इतिहास मे अलौकिक है, असाधारण है। इससे ज्यादा सम्मान मनुष्य को और किसी ने नहीं दिया है, जितना महावीर ने दिया है। इससे ज्यादा सम्मान और गरिमा, और गौरव, और किसी ने नही दिया है मनुष्य को, जितना महावीर ने दिया है। क्योंकि महावीर ने कहा, परमात्मा कहीं ऊपर नही है, परमात्मा प्रत्येक के विकास का अन्तिम चरण है।

परमात्मा प्रत्येक के भीतर है।

क्षुद्रतम मनुष्य को, जिसने परमात्मा कहा, क्षुद्रतम, न्यूनतम पाप मे गिरे मनुष्य को, जिसने परमात्मा की घोषणा की—उसका और सम्मान क्या हो सकता है? और जिसने कहा, स्वय परमात्मा है व्यक्ति, उसके ऊपर कोई शास्त्र नहीं हो सकता, उसके ऊपर कोई गुरु नही हो सकता, उसके ऊपर कोई सम्प्रदाय नहीं हो सकता। ये सारे बन्धन हैं, और व्यक्ति इनको छोडकर स्वय मे प्रविष्ट हो जाय तो वह अपने परमात्म-तत्व को, अपनी आत्मा को जानने मे समर्थ होता है।

इसलिए मैंने कहा, अगर बात शब्दो के विपरीत भी पडती हो, तो पड जाने दें।

मुझे यह भी बताया गया कि मैं यह कहता हू कि महावीर ने मूर्तियो का विरोध किया है—मैं यह कहता हू कि महावीर ने मूर्तियो का विरोध किया है, और परम्परा तो मूर्तियो को पूजती है। मैंने कहा, मुझे मूर्तियो से क्या लेना-देना है, लेकिन इतना ही कहूगा, महावीर ने मूर्त का विरोध किया है और अमूर्त मे प्रवेश का आग्रह किया है।

महावीर का आग्रह क्या है?

महावीर का आग्रह है कि जो दिखायी पडता है, वह मूल्यवान नही है। जो नही दिखायी पडता है, जो पीछे छिपा है, जो अदृश्य है, जो दृश्य नही बनता, वह मूल्यवान है। महावीर यह कहते हैं, जिसका रूप है, उसका कोई मूल्य नही है, जिसका रूप नही है, उसका मूल्य है। यह मेरी देह दिखायी पड रही है, यह मेरी मूर्ति है, लेकिन यह मैं नही हू। और अगर मेरी इस देह को आकर कोई पत्थर मारे तो उसने मेरी मूर्ति को पत्थर मारे, मुझे पत्थर नही मारे। और अगर मेरी इस देह को कोई काट दे, टुकडे-टुकडे कर दे, तो उसने मेरी मूर्ति को खण्डित किया, मुझे खण्डित नहीं किया।

जो दिखायी पड रहा है, वह मूर्ति है।

जो नहीं दिखायी पड़ता, जो कभी दिखायी नहीं पड़ सकता, क्योंकि जो हमेशा देखने वाला है, जो हमेशा दृष्टा है और दृश्य नहीं हो सकता, उस आत्मा के लिए महावीर का आग्रह है। महावीर का तो पूरा आग्रह अमूर्त के लिए है। लेकिन पागल हम हो सकते हैं कि महावीर की मूर्ति बनाकर हम पूजे। महावीर की जो मूर्ति है, वह महावीर के शरीर की मूर्ति होगी, महावीर की मूर्ति कैसे हो जायेगी ?

महावीर की जो मूर्ति बनायी है, वह उनकी देह की मूर्ति होगी, महावीर की मूर्ति कैसे हो जायेगी। महावीर की कोई मूर्ति बना सकता है ? यह असभव है और यह कभी सभव नही हुआ है और न कभी होगा। जिसको देखा भी नही जा सकता—जिस आत्मा को, उसकी मूर्ति क्या बनायी जा सकेगी ? और महावीर का असली शरीर खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो गया और मिट्टी मे मिल गया, तो तुम्हारी मूर्तियों को तुम कब तक सम्हाले रखोगे ? और पागल हो, अगर मूर्तियो को सम्हाले रखते हो। असली मूर्ति जब खण्ड-खण्ड होकर मिट्टी हो जाती है तो अगर मैं तुम्हारी मूर्तियो को कहू कि तुम छोड दो—जो खण्ड-खण्ड हो जाता है, उसका कोई मतलब नही है—तो मुझसे नाराज मत हो जाना।

और यह मत समझ लेना कि महावीर के प्रति मेरी दृष्टि अश्रद्धा की है। मैं जानता हू, अश्रद्धा आपकी है, जो महावीर को पत्थर मे खोजते हैं। मेरी तो श्रद्धा है, क्योकि मैं उन्हे चिन्मय मे खोजता हू—अमृत मे और अमूर्त मे खोजता हू। फिर मैंने कहा, ठीक ही है, जो मूर्तिपूजक हैं, अगर वे यह सोचे कि हम पत्थर मारेंगे, तो ठीक ही सोचते हैं, उनकी विचार-सरणी गलत नही है, पत्थर से ऊपर वे सोच भी नही सकते। पत्थर से ऊपर उनकी धारणा हो नही सकती। अपने मित्र को मैंने सुबह कहा कि उनसे कहो कि वे पत्थर मारे, उससे उनका मूर्तिवादी होना जाहिर होगा। और मुझे मौका मिलेगा। अगर उनके पत्थर मुझे लगे और फिर भी मेरे हृदय मे उनके प्रति प्रेम हा, तो मैं समझूगा कि महावीर के प्रति मैंने श्रद्धाजलि अर्पित कर दी। मैंने उनसे कहा, कि कहो कि पत्थर मारें। वे गल्ती करेंगे, अगर पत्थर मुझे नही मारेंगे, क्योकि उससे जाहिर होगा कि उनकी श्रद्धा क्या है और मुझ भी मौका मिलेगा कि मैं जाहिर कर सकू कि मेरी श्रद्धा क्या है। ईश्वर वह मौका दे कि मुझ पर पत्थर गिरें। ईश्वर मुझे मौका दे कि मैं देख सकूं कि मेरे भीतर उन पत्थरो के बीच प्रेम उठता है या नहीं। अगर प्रेम नही उठा, तो फिर प्रेम की बात करना बन्द कर दूगा। फिर उसका

कोई मतलब नहीं रह जायगा। तो मैं निमन्त्रण देता हू कि अगर किसी के भी मन मे पत्थर मारने का कोई ख्याल आता हो, तो जरूर उसका उपयोग कर ले।

और यह मैं कहना चाहता हू कि महावीर की शिक्षा में, महावीर की बुनियादी शिक्षा मे मुझे दो ही बाते दिखायी पडती हैं, और उनमें प्रेम प्रथम है। जिसको महावीर ने अहिंसा कहा है, वह प्रेम है। जिसको महावीर ने अहिंसा कहा है, वह प्रेम के सिवाय और क्या है?

महावीर की जीवन साधना पर मैं विचार करता हू, तो मुझे दो बात दिखायी पडती हैं। एक तो बात मुझे यह दिखायी पडती है कि महावीर सत्य को पाने को उत्सुक हैं। सत्य का वे अनुसधान कर रहे हैं। और दूसरी बात मुझे यह दिखायी पडती है, कि वे प्रेम का विस्तार कर रहे है। सत्य को भीतर खोज रहे है और प्रेम को बाहर फैला रहे हैं। सत्य को भीतर पाया जाता है और प्रेम बाहर फैलाया जाता है। जब अपने अतिम अणु की आखिरी इकाई मे कोई व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता है, तो वह सत्य को उपलब्ध होता है। और जब इस विराट जगत के अतिम प्राणी तक कोई अपने प्रेम को पहुचा देता है, तो वह प्रेम को उपलब्ध होता है। सत्य का विकास उतरता है—अपने भीतर प्रविष्ट हो, आतरिक गहराई में, ज्ञान उपलब्ध होगा, और समस्त के भीतर प्रविष्ट हो जाय, तो आतरिक गहराई मे प्रेम या अहिंसा उपलब्ध होगी। जैसे कोई वृक्ष बढता है, तो नीचे उसकी जडे गहरी जाती हैं, चारो तरफ वह पौधा बढता चला जाता है।

जिस व्यक्ति की सत्य मे जितनी गहराई बढ़ेगी, उसके जीवन के बाहर के पौधे मे प्रेम उतना ही बढता चला जायेगा।

प्रेम परीक्षा और कसौटी है।

इसलिए महावीर ने कहा, अहिंसा परम-धर्म है।

महावीर ने कहा, अहिंसा ज्ञान की कसौटी और परख है।

अगर ज्ञान के बाद अहिंसा न आ जाय, तो वह ज्ञान झूठा होगा, वह मिथ्या होगा।

हम ज्ञान को तो नहीं जान सकते, हम तो प्रेम को जान सकते हैं।

महावीर के ज्ञान को अपने देखा है? महावीर के ज्ञान को कैसे देखियेगा? महावीर को जो सत्य उपलब्ध हुआ है, वह कैसे दिखायी पडेगा? क्राइस्ट को जो सत्य उपलब्ध हुआ, किसी ने देखा? वे तो हमारे अनुमान हैं कि उनको सत्य

उपलब्ध हुआ। हमने देखा है उनका प्रेम, हमने पहचाना है उनका प्रेम। और वह अन्तस् के प्रेम ने हमे यह गवाही दी है कि भीतर सत्य उपलब्ध हुआ होगा। अगर भीतर सत्य उपलब्ध न हुआ हो तो इतना आनन्द और प्रेम कैसे हो सकता है ?

प्रेम परीक्षा और प्रणाम है—उसे महावीर ने अहिंसा कहा है।

अहिंसा का मतलब इतना नही है कि दूसरे को दुख मत पहुचाओ। जबरदस्ती दूसरे को कोई दुख पहुचाने से रूक जाय, तो वह आपने को दुख पहुचाना शुरू कर देता है। दुख पहुचाने की इतनी इच्छा रहती है कि अगर दूसरे को दुख पहुचाने से जबरदस्ती रूक जाय, तो आप अपने को दुख पहुचना शुरू कर देंगे। ऐसे फकीर और साधु हुए है, जो अपने शरीर को इसलिए सता रहे हैं कि सताने का जो मजा वह दूसरो से ले सकते थे, वह मजा उन्होने बन्द कर दिया है। अब वे अपने शरीर को सता रहे हैं। ऐसे फकीर हुए हैं कि जो अपने पेट पर अपनी कमर मे काटो के पट्टे पहने रहेंगे, ताकि काटे उनकी कमर मे घुसते रहे और घाव बने रहे। ऐसे फकीर हुए है, जो जूतो मे उल्टी खीलिया लगा लेंगे, ताकि पैरो में घाव बने रहे, और उन घावो मे से हमेशा रक्त बहता रहे! ऐसे फकीर हुए हैं, जो अपनी जननेंद्रिया काट लेंगे, अपनी आखें फोड लेंगे! इन पागलो को कोई साधु कहेगा ? ये वे लोग हैं, जिन्होने हिंसा की वृत्ति को बाहर जबरदस्ती रोक लिया है। लेकिन वेग रुकते नही है। अगर बाहर जाने से रोक लेंगे, तो खुद पर लग जाते हैं। जो आदमी जबरदस्ती बाहर हिंसा रोकेगा, वह आत्म-हिंसा मे लग जाता है। वह अपने पर हिंसा करना शुरू कर देगा।

महावीर आत्म-हिंसा को नही कह रहे है। इसलिए महावीर हिंसा त्याग को नही कह रहे हैं।

महावीर से किसी ने पूछा, अहिंसा क्या है ?

तो महावीर ने कहा, आत्मा अहिंसा हैं।

बडा अद्भुत उत्तर दिया। और इससे गहरा कोई उत्तर जमीन पर आज तक नही दिया गया है। बडा अजीब असगत मालूम होता है! हम पूछते हैं, अहिंसा क्या है ? महावीर कहते है आत्मा अहिंसा है! मतलब क्या है ? मतलब यह है, जो आदमी अपनी आत्मा मे प्रतिष्ठित हो जायेगा, वह आदमी अहिंसा को उपलब्ध हो जायेगा। और जो आदमी अपनी आत्मा मे प्रतिष्ठित नही है, वह केवल हिंसा निरोध कर सकता है, अहिंसा को नहीं पा सकता है। हिंसा छोड

देनी एक बात है, अहिंसा पा लेनी बिल्कुल दूसरी बात है। अहिंसा बहुत पॉजेटिव है, बहुत विधायक है। और विधायक है, इसलिए मैंने कहा प्रेम है।

तो महावीर की साधना दो शब्दो में बंटी है · सत्य और अहिंसा।

सत्य को पाना हो, तो महावीर कहते हैं, सब छोडकर अपने भीतर प्रविष्ट हो जाओ। महावीर कहते हैं, जो भी मूर्त है, उसे छोड दो। आख से जो दिखायी पडता है, आख मे इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहा कुछ दिखायी न पडे। कान से सुनायी पडता है, कान मे इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहा कुछ सुनायी न पडे। पाचो इद्रियो से जो घटित होता है, उसमे इतने गहरे प्रविष्ट हो जाओ कि वहा किसी इद्रिय का कोई प्रभाव न पहुचता हो। उस अवस्था मे, जहां इद्रियो का कोई प्रभाव नही पहुचता, अतीन्द्रिय चेतना मे प्रवेश शुरू होता है। जहां सब मूर्त प्रभाव क्षीण हो जाते हैं, जहा कोई मूर्त खबर नही पहुचती, जहा जगत का कोई समाचार नही पहुचता, वहां व्यक्ति अपने से सबधित और अपने मे प्रतिष्ठित होता है। वहा वह स्वय को जानता है। स्वय को जानना है तो समस्त 'पर' से विमुक्त हो जाओ। समस्त 'पर' से दूर हट जाओ। भीतर प्रविष्ट हो जाओ। उस एकान्त तनहाई मे अपने को जाना जा सकता है।

मैंने एक साधु के सम्बन्ध मे पढा है। एक साधु एक पहाड के किनारे खडा था। कुछ यात्री वहा से निकले, उन्होने रास्ते मे साचा, यह साधु उस पहाड पर खडा-खडा क्या करता होगा? एक व्यक्ति ने कहा, कभी-कभी उसके मित्र कुछ साथ आते हो, वे शायद पीछे छूट गये हो, वह उन्हें देख रहा होगा, उनकी प्रतीक्षा करता होगा। दूसरे मित्रो ने कहा, हमे विश्वास नही आता कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। उसे देखकर प्रतीक्षा का बोध नही होता। एक ने कहा, कभी-कभी उसकी गाय खो जाती है। वह अपनी गाय को शायद पहाडी पर खडा होकर खोजता हो। तीसरे मित्र ने कहा, ऐसा भी मालूम नही पडता। तीसरे ने कहा, ऐसा प्रतीत होता है, शायद वह प्रभु का चिन्तन और ध्यान कर रहा है। वे निर्णय नही कर सके। उन्होने कहा, हम चले और पूछ ले।

वे गये और उन्होने उस साधु को पूछा। उससे पूछा आपका कोई मित्र आया है, जो पीछे छूट गया है, और आप प्रतीक्षा करते हैं? उस साधु ने कहा, नही। उन्होने पूछा आपकी गाय खो गयी है क्या, जिसे आप पहाडी से देख रहे हैं? उस साधु ने कहा, नही। उन्होने पूछा क्या आप प्रभु का चिन्तन कर रहे हैं, प्रभु की प्रार्थना कर रहे हैं? उस साधु ने कहा, नही। वे बहुत हैरान हुए।

उन्होंने कहा, फिर आप क्या कर रहे हैं? उस साधु ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। सब करना छोड़कर खड़ा हुआ हूं।

महावीर ने इस अवस्था को सामायिक कहा है, इसको ध्यान कहा है। जब मैं कुछ भी नही कर रहा हू और सब छोड़कर चुपचाप रह गया हू। उस मौन की अवस्था मे जब मैं कुछ भी नही कर रहा हू, मात्र दृष्टा हू, साक्षी हू, उसे महावीर ने सामायिक कहा है, ध्यान कहा है।

और जो व्यक्ति स्वय मे प्रविष्ट हो जाता है, उसे अद्भुत अनुभव होता है। उसे अनुभव होता है पहला, उसे दिखायी पडता है कि जो मेरे भीतर है, वह सबके भीतर है। अब जैसे ही उसे यह दिखायी पडता है कि जो मेरे भीतर है, वह सबके भीतर है, उसका जीवन प्रेम से आपूरित हो जाता है, उसके जीवन में अहिंसा आ जाती है। जैसे ही उसे जीवन मे दिखायी पडता है कि मेरे भीतर है, उसे यह भी दिखायी देता है कि वह जो भीतर है, उसकी कोई मृत्यु नही है। उसका सारा भय विलीन हो जाता है। भय के साथ परिग्रह चला जाता है, क्योंकि परिग्रह वे करते हैं, जो भयभीत हैं। परिग्रह मूल बीमारी नही है, मूल बीमारी भय है। जो जितना भयभीत हो, उतना परिग्रह करता है। कजूस के ऊपर दया करो, वह भयभीत है, इसलिए परिग्रह कर रहा है। जो जितना अभय होता है, उतना ही सुरक्षा का विचार छोड देता है। जो जितना अभय होता है, उतना परिग्रह छोड देता है।

मुहम्मद जिस रात मरने को थे। उनका रोज का नियम था, साझ तक लोग, जो उन्हे देकर जाते, साझ को खाने के बाद जो बचता, वे बाट देते। एक भी चावल का दाना घर मे न रखते। जिस रात वह मरने को थे, बीमार थे, और वैद्यो ने कहा, मर जायेगे, तो उनकी पत्नी को डर हुआ, उसने पाच दिनार, पाच रुपये बचाकर रख लिये कि शायद रात, असमय बीमारी बढ जाय और वैद्य को बुलाना पडे। मुहम्मद आधी रात को बोले कि मुझे ऐसा लगता है कि मेरे घर मे कोई परिग्रह किया गया है। उनकी पत्नी ने कहा, तुम्हे यह कैसे पता चला? मैंने पाच रुपये रखे हैं, लेकिन तुम्हे यह पता कैसे चला! मुहम्मद ने कहा, तू इतनी भयभीत मालूम हो रही है कि मुझे शक हुआ। इतना भयभीत आदमी अपरिग्रही नही हो सकता। मुहम्मद ने कहा, तू इतनी भयभीत है मेरे मरने से इसलिए। इसलिए यह मैं समझ सकता हू कि तूने रुपये बचाये होगे। रुपये बांट दे, ताकि मैं निश्चित मर सकू, और यह नाम मेरे पीछे न रहे कि मुहम्मद के मरते वक्त पाच रुपये पास मे थे। वे रुपये बांट दिये गये, मुहम्मद ने

चादर ओढ़ ली और लोगो ने देखा, उनकी श्वास विलीन हो गयी। मुहम्मद ने कहा, तू इतनी भयभीत है, इसलिए मैं जानता हू कि तूने जरूर कुछ रोका होगा।

यह मैंने इसलिए कहा कि जिसके भीतर भय है, वह परिग्रही होगा। इस-लिए मैं आपसे परिग्रह छोडने को क्या कहू। परिग्रह छोडने के लिए पागल कहते होगे। मैं आपसे भय छोडने को कहता हू। भय जड है। परिग्रह कोई जड नही है। और भय तब छूटेगा, जब आपको दिखायी पडे कि मेरे भीतर जो है, उसकी कोई मृत्यु नही है। क्योकि मृत्यु मे एकमात्र भय है, और वह सब भय का मूल आधार है।

जो व्यक्ति स्वय मे प्रविष्ट होता है, वह देखता है कि मैं अमृत हू, और तलवारे मुझे छेद नही सकती और अग्नि मुझे जला नही सकती, और पवन मुझे उडा नही सकता। कोई रास्ता नही है कि मुझे खण्ड-खण्ड और टुकडे-टुकडे किया जा सके। मैं अखण्ड और अमृत हू। ऐसा जो बोध है, उसका परिणाम अपरिग्रह होता है।

और जब अपने भीतर कोई प्रविष्ट होता है तो उसे दिखायी पडता है, यह आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है। इस आत्मा का न तो कोई काम है, न कोई राग है। तब उसके जीवन से अब्रह्मचर्य गिर जाता है और ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। मैं आपको यह कह इसलिए रहा हू कि जो सत्य को जानता है, अनिवार्यतया सत्य के अनुभव के बाद उसके जीवन मे अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य और ब्रह्मचर्य के फूल लग जाते है।

जो सत्य के बीज बोता है, वह अहिंसा, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य की फसल काटता है।

तो अगर अहिंसा पानी हो, प्रेम पाना हो, अपरिग्रह पाना हो, तो अपरिग्रह साधने मे मत लग जाना, अहिंसा साधने मत लग जाना। वैसी साधी हुई और कल्टीवेटेड अहिंसा झूठी होती है। वह अभिनय है, वह एक्टिंग है। वह असलियत नही है। इसलिए ऊपर से अहिंसा मालूम होगी और भीतर हिंसा बनी रहेगी।

कल मुझे किसी ने कहा कि कोई साधु है, जो मेरा विरोध करते है। क्योकि मेरी एक प्यारी बहन मेरे साथ थी। मैंने कहा, फिर वे साधु नही होगे। क्योकि साधु को किसी से क्या विरोध हो सकता है! और जिसको विरोध हो सकता है किसी से, वह साधु कैसे हो सकेगा? तो साधुता ऊपर होगी, विरोध भीतर है। हम ऊपर कपडे ओढे ले सकते है, उसमे क्या दिक्कत है? और इस जमीन पर

सारे लोग कपड़े ओढ़े हुए हैं और इसलिए असली नंगे आदमियों का हमें पता नहीं चल रहा है। मैं आपको यह कहूं कि अहिंसा ऊपर से मत ओढ़ना, कागज के फूल ऊपर से मत चिपका लेना। अगर सच मे चाहते हैं कि अहिंसा के फूल विकसित हो तो समाधि की साधना, सत्य की साधना, स्वय मे प्रविष्ट होना।

महावीर की मूल-शिक्षा स्वय मे प्रवेश की है।

महावीर की मूल-शिक्षा आत्म-बोध और आत्म-ज्ञान की है।

और जो अपने को जानता है, वह सब पा लेता है। सारे गुण उसमे बहे चले आते हैं। सारी श्रेष्ठताए, सारी नैतिकताए उसके पीछे छाया की तरह लग जाती हैं। जो स्वय को जानता है, उसके जीवन मे क्राति अनायास हो जाती है। स्वय को जानना एकमात्र चर्या मे परिवर्तन है, एकमात्र आचरण की क्राति का मूल आधार है।

ऐसे सत्य को मैं महावीर का मूल-आधार, मूल-साधना अनुभव करता हू। और इस सत्य को जो पाना चाहे स्वय मे प्रविष्ट होकर, उसे कुछ बाते छोड देनी होगी। पहली बात उसे यह छोड देनी होगी कि सत्य के सम्बन्ध मे उसने जो धारणाए बना ली हो, जो बिलीफ बना लिये हो, जो विश्वास बना लिये हो, उनको छोड देने होगे। अज्ञान मे सत्य के सम्बन्ध मे जो भी धारणा होगी, वह असत्य होगी। सत्य को जिसे जानना हो, उसे सारे विश्वास, सारी आस्थाए छोड देनी होगी। और हिम्मत से शून्य मे कूदना होगा। क्योकि सत्य के सबध मे अगर हम पहले से धारणाए बना ले, तो हम सत्य को कभी नही जान सकेगे।

हम सत्य को तभी जान सकेगे, जब हम सत्य के पास धारणा-शून्य होकर पहुचे, खाली और रिक्त होकर पहुचे, हमारे मन मे कोई विचार न हो। हमारे मन मे कोई धारणा, कोई कान्फिलक्ट न हो, कोई सिद्धान्त न हो, कोई डाक्ट्रिन न हो, कोई डाग्मा, कोई सप्रदाय, कोई धर्म न हो। जब खाली और शून्य होकर कोई अपनी आखो को उठाता है, जब कोई मौन होकर अपनी आखो को सत्य की तरफ उठाता है, तो उसे दर्शन होते हैं उसके, जो है। और जब तक कोई सोचता-विचारता है, तब तक उसके दर्शन नही होते, जो है।

अगर प्रकाश को जानना है तो आख खोलो, प्रकाश को सोचो मत। और अगर सत्य का जानना है, तो स्वय मे भीतर प्रविष्ट हो जाओ। सत्य के सबध मे विचार और धारणाए मत बनाओ। धारणाए और विचार बनाने वाले पण्डित हो सकते हैं, प्रज्ञा को उपलब्ध नही होते।

महावीर कहते हैं, सब छोड दो और निराधार हो जाओ।

जो निराधार हो जाता है, वह स्वयं के आधार को पा लेता है।

जो बाहर किसी भी आधार को पकडे है, वह अपने को कैसे पा सकेगा? जब तक बाहर दृष्टि है, भीतर कैसे पहुचेगे? महावीर भी बाहर हैं, तीर्थंकर भी बाहर हैं, भगवान भी बाहर हैं। सबसे अशरण हो जाओ।

महावीर का निर्वाण हो गया। जब महावीर की मृत्यु हुई, मोक्ष हुआ तो गौतम गाव के बाहर गया हुआ था। रास्ते मे लौटते राहगीरो ने कहा, महावीर ने देह छोड दी। गौतम रोने लगा। उसने कहा, मेरा अब क्या होगा? उन भगवान के रहते मैं सत्य को न जान सका, अब मेरा क्या होगा? अब तो मैं निराधार हो गया, अब तो मेरा दीप बुझ गया, अब तो मेरा मार्गदर्शक खो गया, अब मेरा कौन है?

उन राहगीरो ने कहा, उन परम कृपालु भगवान ने अंतिम समय मे तुम्हारे लिए एक सूत्र-वचन छोडा है। गौतम ने कहा, क्या कहा है, मुझे ठीक से बताओ? और वह वचन अद्भुत था। और उस वचन को हृदय मे रख ले। सारे धर्मों के लोग उस वचन को हृदय मे रख ले। बहुमूल्य है वह वचन। महावीर ने कहा, गौतम, तू सारी नदी को पार कर गया है अब किनारे को पकडकर क्यो रुक गया है, किनारे को भी छोड दे।

महावीर ने कहा, गौतम, तू सारी नदी पार कर गया, किनारे को पकडकर क्यो रुक गया है, अब किनारा भी छोड दे। और इस वचन को सुनते ही गौतम को ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक ही क्षण मे, गौतम को केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया! उसने सत्य को जान लिया।

जिसे सत्य को जानना है, उसे सम्पत्ति ही नही छोडनी पडती — जिसे सत्य को जानना है, उसे चित से सारा कचरा छोड देना होता है और शून्य हो जाना होता है। जो शून्य होगा, वह पूर्ण को पाने का हकदार हो जाता है। और जो सब छोड देगा, वह सब पाने का अधिकारी बन जाता है। यही सन्यास है।

सन्यास का अर्थ बाहर कपडे-लत्ते छोड देने से नही है। सन्यास का अर्थ है, भीतर जो कपडे-लत्ते और फर्नीचर इकट्ठा हो गया है दिमाग में, उसको छोड देने से है। भीतर जो कचरा-कबाड इकट्ठा हो गया है, उसको छोड देने से है। और स्मरण रखे, उस कचरे में कई चीजे सोने की भी हैं। लोहा छोड देने मे उतनी दिक्कत नही होती। असली सवाल सोने को छोड देने का है। भीतर चित्त

से शुभ और अशुभ के जो विचार छोड़ देगा, वह शुद्ध आत्मा को उपलब्ध होता है। अशुभ के विचार छोड़ना आसान हैं, शुभ के विचार छोड़ना कठिन हैं। लेकिन जो शुभ-अशुभ दोनों को छोड़ देता है, जो पाप-पुण्य दोनो चिन्तनाओं को छोड़ देता है, जो धर्म-अधर्म दोनो चिन्तनाओ को छोड़कर शून्य मे प्रविष्ट होता हैं, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है। तब वही केवल शेष रह जाता हैं, जो है। वही केवल शेष रह जाता है, जिसकी सत्ता है। वही केवल शेष रह जाता है, जो सत्य है। उसे जानकर अपूर्व आनन्द को, अपूर्व मुक्ति को व्यक्ति अनुभव करता है। उसके पहले हम मुर्दे हैं। उसके पहले कोई अपने को जीवित न समझे। उस सत्य को जानने के पहले हम मुर्दे हैं। इसलिए मैं कहता हू कि मुर्दे हैं।

मैं अपना स्मरण करता हू। मैं जिस दिन पैदा हुआ, उस दिन से मैं रोज मर रहा हू, रोज मरता जा रहा हू। एक दिन यह मरण की प्रक्रिया पूरी हो जायेगी। इसको मैं जीवन कैसे कहू, यह तो ग्रेजुअल डेथ है। यह तो क्रमिक मृत्यु है। यह तो आहिस्ता-आहिस्ता मरते जाना है। इस मैं जीवन कैसे कहू? जीवन क्या कभी मर सकता है? जो जीवन है, वह कभी नही मरता। जो जीवन है, वह अमृत होगा। जो मर जाता है, वह जीवन नही है। अभी हम मु हैर्दे। लेकिन हमारे भीतर अमृत बैठा हुआ है। और अगर हम मुर्दे की खोल के भीतर प्रविष्ट हो जाय, तो हम अमृत को अनुभव कर सकेंगे और सच्चे जीवन को उपलब्ध कर सकेंगे।

महावीर की ये शिक्षाए किसी एक धर्म के लिए नही हैं। महावीर का यह मार्ग किसी एक व्यक्ति के लिए, किसी एक सप्रदाय के लिए, किसी घेरे के लिए नही है। इतने बड़े विराट पुरुष जिनका प्रेम अनन्त तक पहुचता हो, किसी के नही होते, सबके लिए होते हैं। ईश्वर करे कि जैन जो समझते है कि महावीर हमारे है, महावीर का पिण्ड और पीछा छोड़ दे, ताकि वे सबके हो जाय।

अभी दस वर्षों बाद महावीर की पच्चीस-सौवी वर्षगाठ होगी। पच्चीस सौ वर्ष उस दिव्य जीवन को हुए पूरे होगे। और तब मैं चाहता हू कि सारी दुनिया अनुभव करे कि उनकी मूल-शिक्षा क्या है। और सारी दुनिया अनुभव करे, महावीर ने जो कहा है, उसमे क्राइस्ट भी मौजूद हैं और कृष्ण भी मौजूद है और बुद्ध भी मौजूद हैं। उनकी ज्योति को सारी दुनिया अनुभव कर सके। दस वर्षों बाद सारी दुनिया को यह बोध हो सके कि महावीर सबकी सपत्ति हैं। यह बोध तभी होगा, जब उनके पीछे जो खड़े है, वे उनपर उनकी सम्पत्ति होने का अधिकार छोड़ दें। वे कहे, महावीर उनके होगे, जो उनका प्यासा होगा। और

सच है यह, पानी उसका है, जो प्यासा है और कुआ उसका है, जो उसमे पानी पीता है। वे नासमझ हैं, जो कुए के बाहर बैठे हो, और कुए की बातें करते हो, कुआ उनका नही है।

महावीर सबके हो, सबके हो सके, उनकी शिक्षा सबके काम आ सके—और यह मनुष्य जो विकृत हो गया है, यह मनुष्य जो अस्वस्थ और विक्षिप्त और बीमार हो गया है, इस मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए वे आधार बन सके, ऐसी कामना करता हू। अन्त मे सबके भीतर बैठे महावीर के लिए मैं अपने प्रणाम दूगा और एक बात आपसे कहूगा।

अगर आपका प्रेम यह कहता हो कि महावीर की यह शिक्षा, उनके प्रेम और ज्ञान की यह शिक्षा दूर-दूर तक व्याप्त हो जाय, और ये समुद्र की लहरें उसे दूर किनारो तक ले जाय, और ये हवाए उसे अनन्त तक पहुचा दे, तो महावीर का एक छोटा सा वचन है, उसे हम सारे लोग अपने हाथो को ऊपर उठाकर कहेंगे, ताकि वह वचन गूजे, और उसकी लहरे और तरगे दूर तक पहुच जाय। और वह वचन उपयोगी है। सारी दुनिया मे उससे अमृत बरस सकता है। महावीर ने कहा है—महावीर ने कहा है—मित्ति मे सव्व भुए सु—मेरी सारे प्राणियो से मैत्री है। वैर न मज्झ केवई—और मेरा किसी से कोई विरोध नही है।

यह सत्य, यह विचार, उनके जीवन का उनकी साधना का मूल-अनुभव है। मैं चाहूगा, हम तीन बार हाथ ऊपर उठाकर इसे दोहरायेगे अपनी पूरी शक्ति से, ताकि यह समुद्र, ताकि ये हवाए, ताकि यह आकाश गूजे उससे और यह विचार करोडो-करोडो लोगो को प्रभावित करे, उनको परिवर्तित करे। हम अपने दोनो हाथ ऊपर उठायें। सारे लोग उठाये। कोई आदमी इतनी कजूसी न करे कि थोडी देर को दो हाथ न उठा सके और मैं तीन बार दोहराऊगा, हम अपनी पूरी शक्ति से उस वचन को दोहरायेगे। मैं कहूगा पहले, फिर आप उसे दोहरायेगे

मित्ति मे सव्व भुए सू,	—वैर न मज्झ केवई—एक साथ और जोर से
"मित्ति मे सव्व भुए सू"	(सबकी आवाजे) 'मित्ति मे सव्व भुए सू'
"वैर मज्झ न केवई"	(सबकी आवाजे) 'वैर मज्झ न केवई'
"मित्ति मे सव्व भुए सू"	(सबकी आवाजे) 'मित्ति मे सव्व भुए सू'
'वैर मज्झ न केवई"	(सबकी आवाजे) 'वैर मज्झ न केवई'
'मित्ति मे सव्व भुए सू'	(सबकी आवाजे) 'मित्ति मे सव्व भुए सू'
"वैर मज्झ न केवई"	(सबकी आवाजें) 'वैर मज्झ न केवई'

चौपाटी, बम्बई, दिनाक १४ अप्रैल १९६५

असुत्ता मुनि

हम सब प्यासे हैं आनन्द के लिए, शांति के लिए।

और सच तो यह है कि जीवन भर जो हम दौड़ते हैं—धन के, पद के, प्रतिष्ठा के पीछे, उस दौड़ में भी भाव यही रहता है कि शायद शांति, शायद समृद्धि मिल जाय। वासनाओ में भी जो हम दौड़ते हैं, उस दौड़ में भी यही पीछे आकांक्षा होती है कि शायद जीवन की संतृप्ति उसमें मिल जाय, शायद जीवन आनद को उपलब्ध हो जाय, शायद भीतर एक सौदर्य, और शांति, और आनंद के लोक का उद्घाटन हो जाय।

लेकिन एक ही निरन्तर इच्छा मे दौड़ने के बाद भी वह गन्तव्य दूर रहता है, निरन्तर वासनाओ के पीछे चल कर भी वह परम संपत्ति उपलब्ध नही होती है!

लोग हैं, धार्मिक कहे जाने वाले लोग हैं, जो कहेंगे वासनाएं बुरी हैं, जो कहेगे, वासनाए त्याज्य हैं, जो कहेंगे, समस्त वासनाओ को छोड देना है, जो कहेगे, वासनाए अधार्मिक है। मैं आपसे कहू, कोई वासना अधार्मिक नही है, अगर हम उसे देख सकें, समझ सकें।

समस्त वासनाओ के भीतर अन्तत प्रभु को पाने की वासना छिपी है।

एक व्यक्ति को धन देते चले जायं और उससे कहें कि कितने धन पर वह तृप्त होगा? हम कितना भी धन दे, उसकी आकाक्षा तृप्त न होगी। कितना ही धन दे—सारे जगत का धन उसे दे दे?

सिकंदर भारत की तरफ आता था, किसी ने उससे पूछा कि तुम अगर पूरी जमीन जीत लोगे तो फिर क्या करोगे? उसने कहा, मैं दूसरी जमीन की तलाश

करूगा। और अगर हम पूछें, दूसरी जमीन भी जीत लोगे तो फिर क्या करोगे ? वह कहेगा मैं तीसरी जमीन की तलाश करूगा। और हम कहें, तुम सारी जमीने जीत लोगे तो फिर क्या करोगे ?

असल मे वासना अनन्त को पाने के लिए है, इसलिए किसी भी जमीन को पाकर तृप्त नही होगी। कितना ही धन दे दे, वासना तृप्त न होगी, क्योकि वासना अनन्त धन को पाने के लिए है। कितना ही बडा पद दे दें, आकाक्षा तृप्त न होगी, क्योकि आकाक्षा परम पद को पाने के लिए है। कितना ही जीवन मे उपलब्ध हो जाय, जीवन सतृप्त न होगा, तृप्त न होगा, क्योकि परम जीवन, परम-प्रभुता को पाये बिना मनुष्य के भीतर तृप्ति असभव है।

प्रभु को पाये बिना तृप्ति असभव है।

असल मे समस्त वासनाए नदियो की तरह प्रभु की अतिम वासना मे—सागर की ओर दौड रही हैं।

प्रत्येक वासना समझे जाने पर प्रभु की ओर इशारा करेगी, परम-सत्ता की ओर इशारा करेगी। इसलिए वासनाए बुरी नही हैं।

वासनाओ को क्षुद्र से तृप्त करने की चेष्टा अज्ञान है।

वासना को विराट देना होगा। क्षुद्र की तरफ जो वासनाए दौड रही हैं, उन्हे विराट पर केन्द्रित करना होगा। उन्हे विराट की ओर उन्मुख करना होगा।

लोग कहते हैं कि मन चचल है, लोग कहते हैं कि मन की चचलता नही मिटती, लोग कहते हैं कि हम मन को ठहराने की, रोकने की कोशिश करते हैं, शात होने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन कही भागता चला जाता है।

असल मे मन चचल नही होता, तो मनुष्य कभी धार्मिक नही हो सकता था।

मै फिर से कहू—मन अगर चचल नही हुआ होता तो मनुष्य कभी धार्मिक न हो सकता था, क्योकि हमने कुछ क्षुद्र रूप से उसे पकडा दिया होता और मन वही ठहर जाता। हमने कुछ व्यर्थ उसको पकडा दिया होता और मन वही थिर हो जाता। हम कुछ भी पकडाये मन वहा ठहरता नही और आगे के लिए अभीप्सा से भर जाता है।

असल मे जब तक प्रभु को न पाये, तब तक ठहरेगा नहीं। मन की चचलता और विचलितता इसलिए है कि मन प्रभु को पाने को उत्सुक है। उसके पूर्व कोई निधि, कोई सपत्ति उसे तृप्त नही कर सकती है।

सौभाग्य है कि मन चचल है।

सौभाग्य है कि मन चंचल है—चचल है, इसलिए शायद कभी परम-सत्ता तक पहुंचना संभव हो सकता है। सौभाग्य है कि मन वासनाग्रस्त है, इसलिए शायद कोई दिन परम-वासना को उपलब्ध हो जाय।

मैंने सुना है, वहा इजिप्ट मे एक फकीर हुआ। फकीर अपने झोपडे के पीछे अपने खेत मे काम करने गया। फकीर की एक शिष्या बादशाह को झोपडे के बाहर मिली। उसने बादशाह को कहा, आप थोडा खेत की मेड पर बैठ जाय, मैं फकीर को बुला लाती हूं। बादशाह बोला, तुम बुला लाओ, मैं टहलता हू। उसने सोचा कि शायद बादशाह बाहर बैठने मे सकोच कर रहा है। वह उसे भीतर ले गयी झोपडे के और उसने बादशाह को कहा, यहा एक चटाई पडी है, उस पर बैठ जाय, मैं फकीर को बुला लाती हू। बादशाह ने कहा बुला लाओ, मैं थोडा टहलता हू। वह बहुत हैरान हुई। उसने आकर पीछे फकीर को कहा, यह बादशाह कुछ अजीब सा आदमी मालूम हो रहा है। मैंने बहुत कहा कि बैठ जाओ। वह बालता है, मै टहलता हू, तुम बुला लाओ। फकीर ने कहा, असल मे वह बैठ सके, उसके योग्य स्थान हमारे पास कहा है ? फकीर ने कहा, वह बैठ सके, उसके योग्य बैठने का स्थान हमारे पास कहा है, इसलिए टहलता है।

मैं इस कहानी को पढता था और मुझे एक अद्भुत बात दिखायी पडी, मन इसलिए चचल है कि वह जहा बैठ सके, वह स्थान तुमने अब तक दिया नही। मन इसलिए चचल है, इसलिए विचलित है कि जहा वह थिर हो सके, जहा वह तल्लीन हो सके, जहा वह बिलीन हो सके, जहा वह विसर्जित हो सके, हमने वह स्थान उसे आज तक दिया नही। हमने कही खेत की मेडे बतायी है, कही साधारण सी पतली चटाइया बतायी हैं। हमने क्षुद्र का प्रलोभन दिया है, वह विराट का प्यासा है। इसलिए चचल है। जब तक हम विराट, जब तक हम अनत, जब तक हम पूर्ण, जब तक हम परम की सान्निध्य मे उसे न ले जाय, तब तक मन चचल होगा, मन विचलित होगा, मन भागेगा और दौडेगा। मन दुखी होगा, मन सताप से भरा रहेगा। एक एग्विस, एक पीडा निरन्तर पकडे ही रहेगी।

मनुष्य के जीवन का दुख एक ही केन्द्र पर है। मनुष्य—जिस बात को पाने से प्यास उसकी तृप्त होगी, वह हम उसे नही दे रहे हैं, हम कुछ और दे रहे हैं। हम कुछ और दे रहे हैं, जो तृप्ति न देगा! और हम उससे वचित किये है, जो तृप्ति बन सकता है! और अगर यह स्थिति न हो तो हम लाख उपाय करे,

लाख अर्जित करें, लाख व्यवस्था, समृद्धि जमा ले, हम शाति को, आनन्द को नही पा सकते हैं।

धर्म, त्याग करने से नही होता है। धर्म छोडने से नही मिलता है। धर्म जीवन से पलायन करने वाले को नही मिलता है। धर्म तो पाने पर मिलता है, परिपूर्ण को पाने पर मिलता है। धर्म तो परिपूर्ण को उपलब्ध करने को कहता है।

गलत होगे, जो समझते हैं, धर्म परार्थ है। धर्म से ज्यादा स्वार्थ इस जगत मे कुछ भी नही है। भ्रात होगे वे, जो समझते है, धर्म परार्थ है, धर्म से अधिक स्वार्थ इस जगत मे कुछ भी नही है। महावीर और बुद्ध से ज्यादा स्वार्थ को उत्पन्न इस जगत मे दूसरे नही हैं।

स्वार्थ का अर्थ है स्व को परिपूर्ण जहा अर्थ उपलब्ध होता है।

स्वार्थ का अर्थ है : जहा मेरी सत्ता पूरे प्रयोजन को, पूरे अर्थवत्ता को उपलब्ध हो जाय, जहा मैं अपने को उपलब्ध हो जाऊ।

हम एक अर्थ मे स्वार्थी नही हैं। हमें स्व की कोई चिन्ता भी नही है, हमे स्व से कोई प्रयोजन नही है! हम उन चीजो के पीछे दौड रहे हैं, जिन्हे मृत्यु छीन लेगी और समाप्त कर देगी। हम अत्यत नि स्वार्थी लोग हैं। हम उन चीजो पर जीवन को व्यय कर रहे हैं, जो हमारी सत्ता का अग नही बन सकती। जो हमारे स्वरूप का उद्घाटन नही हो सकती। महावीर और बुद्ध और ईसा और कृष्ण उसको पाने में सलग्न है, जिसे मृत्यु भी जला नही सकेगी। वे शायद उस सपत्ति को उपलब्ध कर रहे है।

हम जिसे सपत्ति कह रहे हैं, वह सपत्ति नही है।

नानक लाहोर के पास एक गाव मे ठहरे थे। एक व्यक्ति ने उनसे कहा, मैं कुछ आपकी सेवा करना चाहता हू। बहुत सपत्ति मेरे पास है। आपके उपयोग मे आ जाय तो अनुग्रह होगा। नानक कई बार उसे टालते गये। एक बार रात्रि को उसने दोबारा अपनी प्रार्थना दोहरायी, तो उस व्यक्ति को एक कपडे सीने की सुई दे दी। कपडे सीने की सुई देकर कहा, इसे रख लो और जब हम दोनो मर जाय तो इसे वापस लौटा देना। वह आदमी कुछ चौका होगा, क्या नानक का दिमाग कुछ खराब है! चौका होगा कि इतने लोगो के सामने असगत और व्यर्थ की बात कहते है! इस सुई को मृत्यु के बाद कैसे लौटाया जा सकेगा। लेकिन सबके सामने कुछ कहना सभव नही हुआ। फिर उसी ने तो बार-बार उनसे आकाक्षा की थी कि कोई सेवा और सेवा जो दी है, उसे एकदम

अस्वीकार करते नहीं बन पड़ा। वह गया, रात भर सोचता रहा, विचार करता रहा। कोई मार्ग उसे दिखायी न पड़ा कि सुई मृत्यु के पार कैसे आ सकेगी। वह पांच बजे, चार बजे सुबह ही नानक के पैरो पर गिर पड़ा और कहा कि यह सुई, अभी जिंदा हूं, वापस ले लें, मरने पर लौटाना मेरी सामर्थ्य मे नही है। मैंने बहुत चेष्टा की, बहुत उपाय किये, बहुत सोचा—अपनी सारी संपत्ति भी लगा दू, तो जिस मुट्ठीमे यह सुई होगी, वह इसी पार रह जायेगी। मैं पता नही किस अलोक मे, किस अज्ञात मे विलीन हो जाऊंगा। यहा तो मैं रहूगा नहीं—मैं इस सुई को पार नही ले जा सकता हू। नानक ने कहा, फिर मैं तुझसे एक बात पूछू ? तेरे पास क्या है, जिसे तू पार ले जा सकता है ? उस व्यक्ति ने कहा, मैंने तो कभी विचारा नही। लेकिन अब देखता हू तो दिखायी नही पड़ता कि मेरे पास कुछ है, जिसे मैं पार ले जा सकता हू। नानक ने कहा, जो मृत्यु के पार न जा सके, वह संपत्ति नही है।

जो मृत्यु के इस पार रह जाय, वह विपत्ति हो सकती है, संपत्ति नही हो सकती।

समस्त धार्मिक जाग्रत पुरुष भी संपत्ति को कमाये हैं। हम भी संपत्ति को कमाते है—हम उस संपत्ति को कमाते है, जो मृत्यु के इस पार होगी। वे उस संपत्ति को कमाते हैं, जिसे मृत्यु की लपटे भी नष्ट न कर सकेगी, जो मृत्यु की लपटो के पार भी निकल जायेगी। शायद वे ही स्वार्थी हो, शायद वे ही परम स्वार्थ को पूरा कर लेते हैं। और शायद न मालूम कौन है, कि जो उनको कहता है कि वे त्यागी है, न मालूम कौन है जो कहता है, उन्होने सब छोड़ा, न मालूम कौन है जो कहता है, उन्होने समृद्धि छोड़ी, न मालूम कौन है जो उनके त्याग और तपश्चर्या की बात करता है! मुझ वैसी कोई बात दिखायी नही पड़ती। समृद्धि हम छोड़े हुए है, संपत्ति हम छोड़े हुए है, आनन्द हम छोड़े हुए है! उन्होने केवल दुख छोड़ा है, उन्होने केवल अज्ञान छोड़ा है, उन्होने केवल पीड़ा छोड़ी है। और अगर पीड़ा को और दुख को, और अज्ञान को छोड़ना त्याग है तो फिर बात अलग है। फिर भोग क्या होगा ?

इस जगत मे केवल संन्यासी ही भोगी है।

इस जगत मे केवल विरक्त ही, वीतराग ही आनन्द को, शांति को उपलब्ध रहता है।

हम सब त्यागी हो सकते है।

महावीर ने अपनी समृद्धि को, राज्य को, व्यवस्था को छोड दिया, लात मार दी। हम प्रसन्नता से भरे हैं कि उन्होने बहुत बडा काम किया! असल में हम सपत्ति को बहुत आदर देते हैं, इसलिए महावीर के त्याग को भी बहुत आदर देते हैं। हमारी दृष्टि मे महावीर का मूल्य नही है, महावीर ने वह जो सपत्ति को लात मारी, उसका मूल्य है! अगर किसी व्यक्ति को कचरा बहुत प्रिय हो और किसी को घर के बाहर कचरे को फेंकता देखे, तो शायद आदर से नमस्कार करे, कि अद्भुत त्याग कर रहा है, सुबह-सुबह सारा घर का कचरा फेंक रहा है! हम जब यह कहते हैं कि महावीर बहुत बडे त्यागी हैं—असल मे हम सपत्ति के प्रति अपने आदर को सूचित करते हैं, महावीर के प्रति नही। अगर हम महावीर को समझेगे तो हमे दिखायी पडेगा, महावीर ने वह छोड दिया, जो व्यर्थ था। छोडना भी कहना शायद गलत है, क्योकि व्यर्थ को छोडा नही जाता, व्यर्थ दीख जाय तो छूट जाता है। मैं पुन दोहराऊ, छोडना भी कहना शायद गलत है।

व्यर्थ को छोडा नही जाता, उसकी व्यर्थता दीख जाय तो छूट जाता है।

इस जगत मे अज्ञानियो ने त्याग किया होगा, ज्ञानियो ने त्याग नही किया है, उनसे चीजें छूट गयी है, जैसे पके पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं। वैसे ही जैसे हम कचरे को बाहर फेंक आते है और पुन उसकी याद नही करते।

मैं एक गाव मे गया था। एक साधु का प्रवचन सुना था। दो दिन सुना, दो दिन उन्होने निरतर कहा। उनसे मिलने गया, तब भी उन्होने मुझमे कहा, मैंने लाखो रूपयो पर लात मार दी। मैंने उनसे पूछा, यह लात कब मारी थी? वह मुझे कहे कि कोई बीस वर्ष हुए। और तब मैंने उनमे कहा कि लात मारी नही जा सकी होगी, अन्यथा बीस वर्ष उसे याद रखने की कोई जरूरत न थी। वह लात मारी नही जा सकी। बीस वर्ष पहले लाखो रुपये मेरे पास थे, यह अहकार तृप्ति देता रहा होगा। बीस वष से यह अहकार परिपुष्ट हो रहा है कि मैंने लाखो रुपयो पर लात मार दी है! बात वही की वही है। सपत्ति छोडी नही जाती, एक दिन दीखता है, वहा सपत्ति है ही नही। एक दिन दीखता है कि वहा सपत्ति है ही नही, वहा सपत्ति का अभाव है। मुट्ठी खुल जाती है, कुछ छाडना नही पडता है। शायद उस दिन कोई मजबूर करे कि मुट्ठी बाधे रखो तो बडी तपश्चर्या हो। उस व्यर्थ के बोझ को ढोने मे तपश्चर्या हो सकती है। व्यर्थ के बोझ को छोड आने मे कौन सी तपश्चर्या हो सकती है?

त्याग नही, केवल ज्ञान ही पर्याप्त है।

छोड़ना नहीं होता, केवल जानना होता है।

जानना क्रांति है।

जान लें ठीक से, क्या है जो सार्थक है, क्या है जो व्यर्थ है—क्रांति घटित हो जाती है।

ज्ञान का परिणाम तोर बन जाता है, आचरण बन जाता है।

लेकिन क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है—यह वे कैसे जानेंगे, जो स्वय को भी नही जानते? जो स्वय को नही जानते हैं, वे सार्थक को कैसे जानेंगे? सार्थक वही होगा, जो स्वरूप के अनुकूल हो। सार्थक वही होगा, जो स्वरूप के प्रति संगीतपूर्ण हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप के प्रतिकूल हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप के प्रति विरोध से भरा हो। व्यर्थ वह होगा, जो स्वरूप को गलत ले जाता हो। असल में दुख का कोई अर्थ नही है।

स्वरूप के प्रति जो प्रतिकूलता है, वही दुख है।

स्वरूप के प्रति जो अनुकूलता है, वही आनन्द है।

जिस क्षण मैं अपने को स्वरूप के अनुकूल पाता हू, आनंदित हो जाता हू। जिस क्षण स्वरूप के प्रतिकूल पाता हू, दुखी हो जाता हू।

दुख का अर्थ है कि कुछ प्रतिकूल है, जो मैं नही चाहता कि हो, और हो रहा है।

आनन्द का अर्थ है कि कुछ हो रहा है, जो मैं चाहता हू कि हो, जो मेरे अनुकूल है।

प्रतिकूलता दुख है, अनुकूलता सुख है।

अगर मुझे स्वरूप का पता न हो तो क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है, यह दिखायी नही पड सकता। स्वरूप बोध जीवन में सार्थकता का और व्यर्थता का इंगित स्पष्ट कर जाता है। यह जानना धर्म की बुनियादी, केन्द्रीय बात है कि 'मैं कौन हू'।

विज्ञान पदार्थ को जानता है, पदार्थ क्या है। विज्ञान-पदार्थ के रहस्य को खोदता है कि उसके क्या नियम हैं, क्या रहस्य, क्या राज हैं। धर्म चैतन्य को खोजता है, स्व को खोजता है—उसका क्या रहस्य है। पदार्थ के अंतिम विश्लेषण पर अणु उपलब्ध हुआ है। और अणु की उपलब्धि घातक हो गयी है, विस्फोटक

हो गयी है। हो सकता है सारे मनुष्य को ले डूबे। चैतन्य का विश्लेषण आत्मा को उपलब्ध किया हैं।

पदार्थ के विश्लेषण से अणु उपलब्ध हुआ है, चैतन्य के विश्लेषण से आत्मा उपलब्ध हुई है।

अणु, सभव है घातक हो जाय। आत्मा का उपलब्ध होना, शायद जगत के बचाने का मार्ग बन जाय। इस जगत मे, जो अत्यत पीडा और परेशानी से घिरा है, पुन आत्म-जागरण के उद्घोष की जरूरत है।

लेकिन आत्मा के सम्बन्ध मे हम बहुत बाते जानते हो भला, आत्मा को नही जानते है। आत्मा के सम्बन्ध मे बहुत से सिद्धान्त मडित हो, लेकिन आत्मा से कोई परिचय नहीं है। बहुत-बहुत आश्चर्य हैं जगत मे, लेकिन सबसे बडा एक ही है—जो मैं हू, उसे छोडकर मैं सब जान सकता हू। स्वय से अपरिचित रह जाता हू। सारे जगत को जाना जा सकता है और केवल वही जो जानता है, वही रह जाता है। सारे जगत मे दौडकर ज्ञान के सग्रह का आभास हो सकता है, लेकिन यह सग्रह अज्ञान ही है, क्योंकि वह स्व को उद्घाटित नही कर पाता।

महावीर ने कहा है, सब कुछ जान लो, लेकिन जो स्वय को न जान ले, वह जानना जानना नही है।

सब कुछ जीत लो, लेकिन अगर स्वय को न जीता, तो वह जीत विजय नही है।

सब कुछ पा लो, लेकिन स्वय को न पाया, तो वह पाना उपलब्धि नही है। स्वरूप पाने से हम च्युत रह जाते हैं, और सब पा लेते है।

लगभग ऐसा मुझे स्मरण आता है, स्वामी रामतीर्थ, एक भारतीय साधु जापान मे थे। एक भवन के पास से निकलते थे, भवन मे आग लग गयी थी। लोग सामान निकाल रहे थे। भवनपति बाहर खडा था। होश खो दिया था उसने। उसे कुछ दीख नही रहा था, लेकिन देख तो जरूर रहा था। लपटे पकड रही थीं मकान को। लोग सामान बाहर ला रहे थे। और थोडी देर मे सब भूमिसात् हो जायेगा, सब राख हो जायेगा। रामतीर्थ भी उस राह से निकले थे, किनारे खडे होकर देखने लगे थे। लोगो ने अतिम बार आकर पूछा, भवन मे कुछ और तो नही रह गया? उस भवनपति ने कहा, मुझे कुछ याद नही पडता। मुझे कुछ भी स्मरण नहीं आता। मैं दिग्मूढ सा खडा रह गया हू। तुम्ही एक बार आकर और देख लो। जो बचा हो, उसे भी बचा लो। भवन अतिम लपटो को पकडने

के करीब था। लोग भीतर गये। वे बाहर आये तो रोते हुए बाहर आये। कहीं एकांत मे भवनपति का एकमात्र लड़का था, वे उसकी राख को लेकर लौटे थे। वे लोग मकान का सामान बचाने मे लग गये थे और मकान का एकमात्र मालिक भीतर जलकर समाप्त हो गया था। रामतीर्थ ने अपनी डायरी मे लिखा है, उस दिन मुझ लगा कि यह घटना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे घटती है। हम सामान को बचाने मे लग जाते हैं, सामान का मालिक धीरे-धीरे मर जाता है।

हम उसको बचाने मे लग जाते हैं, जो बाहर है और जो आंतरिक है, जो मैं स्वय हू, उसको भूल ही जाते हैं। यह अति व्यस्तता आत्मघातक है, स्वीसाइडल है। पदार्थ से, वस्तु से इतना व्यस्त होना कि स्वरूप भूल जायें, सामान्य सामग्री मे इतने आकुपाइड हो जाना, इतना व्यस्त हो जाना कि स्व की सत्ता का विस्मरण हो जाय, आत्मघातक है।

शायद जिसे हम आत्म-हत्या कहते हैं, वह केवल देह-हत्या है। आत्म-हत्या इसे कहना चाहिए—आत्म-हत्या इसे कहना चाहिए, कि जिसे स्व का विस्मरण हो जाय और जिसका सामग्री पर सारा जीवन केन्द्रित हो जाय। जिसके लिए हम खोज कर रहे हैं, वह गौण हो जाय। और जिसके लिए वे चीजे खोज करने गये थे, वे चीजे प्रमुख हो जाय। उसे भूल जायें, जिसकी शांति लिए हम चले थे। और सामग्री के आयोजन में ही जीवन व्यय हो जाय। इसे आत्महत्या कहना चाहिए। शरीर की हत्या को आत्महत्या नही कहना चाहिए। यह आत्म-हत्या प्रत्येक के भीतर घटित होती है। इससे बचने का, इससे ऊपर उठने का एक ही उपाय है कि हमारा जो चित्त, हमारा जो मन दूसरे मे अति व्यस्त है—थोडा सा समय निकलकर स्वय को जानने के प्रति भी उन्मुख हो। जिस ज्ञान की शक्ति से हम सारे जगत को जानने निकल पडे थे, वह ज्ञान की धारा अन्त प्रवाहित हो, भीतर की तरफ उन्मुख हो। हम उसका भी जान सके, जो सबको जान रहा है।

और जिन्होने उसे जाना है, उनका आश्वासन है कि जिस आनन्द को बाहर खोज-खोज कर जन्मो-जन्मो मे नही पाया जा सकता है, क्षण मे उसे भीतर मुडते ही उपलब्ध कर लिया जाता है। यह आश्वासन एकाध व्यक्ति का हो, तो पागल कहकर टाल सकते हैं, बकवास कहकर टाल सकते हैं। जितने लोगो ने इस जमीन पर, जमीन के इतिहास मे आनन्द को उपलब्ध किया है, उनमे से एक ने भी उसे बाहर उपलब्ध नही किया है। जितने लोगो ने उपलब्ध किया है, उनकी सामूहिक साक्षी और गवाही आन्तरिक के लिए है। इसलिए सत्य वैज्ञानिक हो जाता है,

यह सत्य अन्ध-विश्वास नही रह जाता है। यह अपवाद नही है। निरापवाद रूप से जिन लोगों ने आनन्द अनुभव किया है, उन्होने आत्यंतिक आतंरिक से उसका उद्घाटन किया है। वह आन्तरिक प्रत्येक मे उपस्थित है, प्रत्येक घडी उपस्थित है। हम उसे जानते हों या न जानते हों, क्योंकि वह हमारा होना है, वह हमारा बीइंग है। वह हमारी सत्ता है, वह हमारा अस्तित्व है। हम लाख उपाय करके उसको खो नही सकते हैं। कोई मनुष्य अपनी आत्मा को नही खो सकता, कितना ही पाप करे, कितने ही पाप का उपाय करे।

इस जगत मे एक बात असभव है—स्वय को खो देना असभव है।

स्वय को तो खो नही सकते, लेकिन फिर सारे लोग तो कहते हैं, आत्मा का पा लो! जिस स्वय को खो नही सकते, उसे पाने का क्या मानी होगा? आत्मा को खोया नही जाता, केवल विस्मरण हो जाता है। और ठीक से मेरी बात समझें तो विस्मरण भी नही होता, हम दूसरे के स्मरण से इतने भर जाते हैं कि *स्व का स्मरण नीचे दब जाता है। अगर हम पर के स्मरण को थोडी देर को* छोड सकें, अगर हमारा चित्त पर के स्मरण से थोडी देर को शून्य हो जाय, अगर हमारे चित्त मे पर का प्रतिबिम्ब और पर के विचार, और पर के इमेजेज थोडी देर को विलीन हो जाय, तो स्व-स्मरण जो नीचे दबा है, उद्घाटित हो जायेगा। कुछ खोया नही है, केवल कुछ आच्छादित है। कुछ भूला नही है, केवल कुछ आवरण मे, वस्त्रो मे छिप गया है। थोडे से वस्त्र उघाडने की, थोडा सा आतंरिक जगत मे नग्न होने की बात है—और स्व का साक्षात् हो सकता है।

स्व के साक्षात् के बाद ही सार्थक की अनुभूति होती है।

स्व के साक्षात् के बाद ही निरर्थक छूटता है और सार्थक की दिशा मे जीवन की गति होती है। उसके पूर्व—स्व साक्षात् के पूर्व, जो सार्थक की तलाश करेगा, वह केवल दमन कर सकता है वह केवल सघर्ष कर सकता है अपने से, वह केवल छोडने मे लग सकता है। उससे छूटेगा नही, क्योकि उसे ज्ञात ही नही है कि छोडने का प्रश्न ही नही है।

एक साधु हुआ। वह गृही था उसका नियम था लकडी काट लेनी, बेच देनी, उससे जो भोजन मिले, कर लेना, और जो साझ बच जाय, उसे बाट देना। उसकी पत्नी थी। एक बार सात दिन तक लगातार वर्षा हुई। लकडिया काटने जाना जरूरी था। सात दिन उपवास के बिताने पर भी भिक्षा मागने का उसका नियम न था। सात दिन के बाद भूखा सपत्नी लकडिया काटने वन को गया।

लकड़ियां काटीं। भूख से पीड़ित सात दिन के, लकड़ियो के बोझ को ढोते हुए वे पति पत्नी वापस लौटते थे। पति आगे था, पत्नी थोड़ा पीछे फासले पर थी। एक अद्भुत घटना घटी, जो स्मरण करने जैसी है। वह यदि मन में बैठ जाय, मन के किसी प्रकाशित कोने में स्थापित हो जाय, तो जीवन मे दिशा परिवर्तन हो सकता है। वह आगे-आगे था लकड़ियों के बोझ को लिए, राह के किनारे उसे दिखा कि किसी राहगीर की थैली गिर गयी है, स्वर्ण अशर्फिया उसमे हैं। यह सोचकर कि सात दिन की भूख और परेशानी के कारण पत्नी का मन कही मोह से न भर जाय, कही लोभ से न भर जाय, कही उसके मन मे ऐसा न हो कि अशर्फिया उठा लू, नाहक उसके चित्त मे विकार न आये, उसने गड्ढे मे उसे सरकाकर थैली पर मिट्टी डाल दी। अपने तई सोचा कि मैं तो स्वर्ण का विजेता हो गया हू, मैंने तो जीत लिया। मैं तो स्वर्ण के मोह को छोड सकता हू, लेकिन पत्नी कही मोहग्रस्त न हो जाय। वह मिट्टी डालकर उठता ही था कि पत्नी आ गयी। उसने पूछा, क्या कर रहे हो? नियम था उस साधु का असत्य न बोलने का, इसलिए सत्य बोलना पडा। उसने कहा, यह सोचकर कि मैंने तो परिग्रह से छुट्टी पा ली, मैं तो सब त्याग कर चुका हू, लेकिन तेरे मन मे कहीं मोह न आ जाय—एक स्वर्ण अशर्फियो की थैली पडी थी, उसे मैंने मिट्टी से ढक दिया है। उस पत्नी ने कहा था, तुम्हे मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नही आयी? तुम्हे स्वर्ण अभी दिखायी पडता है?

अगर स्वर्ण दिखायी पडता है, तो स्वर्ण से त्याग नही हुआ। अगर स्वर्ण दिखायी पड़ता है, तो स्वर्ण से मुक्ति नही हुई। अगर स्वर्ण मूल्यवान मालूम होता है, तो स्वर्ण के साथ आसक्ति शेष है।

स्वर्ण के साथ दो तरह के सम्बन्ध हो सकते हैं—आसक्ति के और विरक्ति के। लेकिन दोनो ही सम्बन्ध हैं। स्वर्ण के साथ दो तरह के सबध हो सकते हैं कि मैं स्वर्ण को पाने को उत्सुक हो जाऊ या मैं स्वर्ण को छोडने को उत्सुक हो जाऊ। लेकिन दोनो ही सम्बन्ध हैं। वस्तुत जो स्वय को जानेगा, वह स्वर्ण को न छोडता है, न पकडता है। वह अचानक जान पाता है कि वहा तो कोई अर्थ ही नही है। स्वर्ण में कोई अर्थ ही नही है। इतना भी अर्थ नहीं है कि उसे छोडने के लिए उत्सुक हुआ जाय या उसे पकड़ने के लिए उत्सुक हुआ जाय। इस स्थिति को हमने वीतरागता कहा है।

एक स्थिति है राग की—राग स्वय के प्रति आसक्ति है।

एक स्थिति है वैराग्य की—वैराग्य स्वय के प्रति विरक्ति है।

लेकिन वे दोनों सबंध हैं। उन दोनो में स्वर्ण की मीनिंग है, स्वर्ण का अर्थ है। एक तीसरी बात है वीतरागता की। राग से और विराग से, दोनो से अलग—वहा स्वर्ण के प्रति कोई सम्बन्ध नही है। वहा जगत के प्रति, संसार के प्रति कोई संबंध नहीं है।

इस सत्य का उद्घाटन कि मेरी सत्ता असग है, मेरी सत्ता नितान्त भिन्न और पृथक है, जीवन मे त्याग को फलित कर देती है।

त्याग ज्ञान का फल है।

कोई त्याग करके ज्ञान तक नही पहुचता, ज्ञान के उत्पन्न होने से त्याग फलित होता है।

सम्यक दर्शन प्राथमिक है, सम्यक-आचरण उसका परिणाम है।

आचरण नही पालना होता है, ज्ञान उपलब्ध करना होता है। जो आचरण से प्रारभ करेंगे, उन्होंने गलत मार्ग से प्रारभ किया। उन्होंने एक छोर से प्रारभ किया। अज्ञान मे आचरण आरोपित होगा, कल्टीवेटेड होगा। ज्ञान मे आचरण सहज होता है। अज्ञान मे क्रोध को दबाकर क्षमा करनी पडेगी, ज्ञान मे क्रोध ही उत्पन्न नही है। जिन लोगो ने महावीर को कहा है कि बहुत क्षमावान थे, उन लोगो ने महावीर के प्रति बहुत असत्य कहा है। महावीर को क्षमावान कहने का अर्थ है कि महावीर मे क्रोध उठता था। महावीर क्षमावान नही थे, असल मे महावीर मे क्रोध ही नही उठता। जिसमे क्रोध का अभाव है, उसमे क्षमा का, अक्षमा का प्रश्न नही उठता। क्षमावान क्रोधी हो सकते हैं। अक्रोधी के क्षमावान होने का प्रश्न नही उठता।

चित्त मे भीतर स्वय के साक्षात् से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह आश्चर्य जनक और स्वर्णिम प्रकाश से भर जाता है।

जीवन मे मुक्ति का मार्ग आचरण से नही—प्रज्ञा के जागरण से प्रारभ होता है।

यह प्रज्ञा-जागरण, यह स्व का साक्षात् कैसे होगा ? किस विधि से मैं अपने भीतर जा सकता हू ? किस विधि से मैं स्वय के आमने-सामने आ सकता हू ? किस विधि से, जो सबको देख रहा है, उस सत्ता के साथ मेरा तादात्म्य हो सकता है ?

अगर उस विधि को समझना है, तो समझना होगा, किस विधि से मैं अपने से बाहर हो गया हू । किस विधि से मैं अपने से बाहर हो गया हू ? अगर मैं यह समझ लू कि मैं किस विधि से अपने से बाहर गया, तो उसी पर पीछे वापस लौटने से मैं स्वय में पहुच जाऊगा । जिस मार्ग से मैं बाहर आया हू, वही मार्ग भीतर ले जाने का भी होगा—केवल विपरीत चलना पडेगा । जो मार्ग मुझे बन्धन मे लाया है, वही मार्ग मेरी मुक्ति का भी होगा—केवल विपरीत चलना पडेगा । जो मार्ग मुझे ससार से जोडे हुए है, वही मार्ग मुझे परमात्मा से जोडेगा—केवल विपरीत चलना होगा ।

यह हमारा चित्त, यह हमारा मन, यह हमारा विचार हमे जगत से जोडता है । एक क्षण को कल्पना करें अभी कि चित्त मे कोई विचार नही है, कोई तरग नही है—चित्त निस्तरग हो गया है, निर्विचार हो गया है—उस क्षण आप जगत से सबधित होगे क्या ? उस क्षण क्या कोई भी संबध शेष रह जायेगा ? उस क्षण जो बाहर जीता है, उससे क्या कोई नाता, कोई संबध शेष रह जायेगा, कोई भी धागे बधे हुए रह जायेंगे ? कल्पना भी करेंगे तो दीख पडेगा—अगर चित्त बिल्कुल निस्तरग है और शून्य है, अगर चित्त मे कोई भी क्रिया नही चल रही है, विचार की, वासना की, कल्पना की, स्मृति की कोई भी क्रिया नही है, सब शून्य है—उस शून्य मे आप जगत से टूटे हुए होगे, पृथक होगे ।

चित्त विचार से भरा है, तो हम जगत से सयुक्त हैं, शरीर से सयुक्त हैं, अन्य से, पर से सयुक्त हैं । हमारा बन्धन, अगर हम बहुत ठीक से समझें, ससार नही है, हमारा बन्धन विचार है ।

ससार से मुक्त नही होना है, विचार से मुक्त होना है ।

महावीर मुक्त होने के बाद भी ससार मे हैं, ससार मे जिये चालीस वर्ष तक । बुद्ध मुक्त होने के बाद ससार मे जिये तीस वर्ष तक । ससार मे तो थे । फिर हो क्या गया था उनमे ?

वे तो ससार मे थे, लेकिन ससार उनमे नही था ।

वे तो ससार मे थे, लेकिन ससार उनमे नही था । हमारे भीतर ससार के होने का स्थान विचार है । हमारे भीतर ससार की प्रतिछबि विचार मे बनती है । हमारे भीतर विचार है गृह ससार का । इसलिए विचार के गृह को तोड देना सन्यास है । विचार के गृह मे बन्द होकर रहना, गृहस्थ होना है । भीतर विचार की दीवाल हमे घेरे हुए है । चौबीस घण्टे उठते-बैठते, सोते-जागते विचार का

सतत् प्रवाह हमें घेरे हुए है। वही विचार हमारी अशांति है, वही विचार हमारी उत्तेजना है, वही विचार हमारी उद्विग्न स्थिति है, वही विचार हमारी ज्वरग्रस्त स्थिति है। इस विचार के विसर्जन से, इस विचार के शांत होने से, इस विचार के ऊहापोह और तरंगो के विलीन होने से भीतर एक शांति का दर्पण, भीतर एक शांत चैतन्य की स्थिति उत्पन्न होती है। उसी शांति मे, उसी अनुद्विग्न स्थिति में स्वयं का साक्षात् होता है।

मैंने कहा, हम पर के साथ इतने व्यस्त है कि स्व का स्मरण ही भूल गये हैं। अगर हम पर के साथ अव्यस्त हो जाय, अगर पर थोड़ी देर को हमारे भीतर मे अनुपस्थित हो जाय, तो स्व का उद्घाटन हो जायेगा। इस हाल मे हम सारे लोग बैठे हुए है। हमने हाल मे जो रिक्त स्थान है, उसको भर दिया है। वह रिक्त स्थान कही गया नही है, कही बाहर नही निकल गया है। आप जब भीतर आये तो हाल का रिक्त स्थान बाहर नही निकल गया। अगर उस रिक्त स्थान को वापस उपलब्ध करना हो, तो कही बाहर से लाना नही पड़ेगा। अगर हम बाहर हो जाय तो हाल वापस रिक्त हो जायेगा। अगर हम बाहर हो जाय तो रिक्त स्थान मौजूद है। वह हमसे दब गया है, वह हमसे भर गया है—हमारे निकलने ही वापस रिक्तता को उपलब्ध हो जायेगा।

स्व का स्मरण पर के चिंतन से दब गया है, भर गया है।

अगर पर का चिन्तन विसर्जित हो जाय, तो स्व उद्घाटित हो जायेगा।

स्व कही गया नही, स्व निरन्तर उपस्थित है—केवल पर से आच्छादित है।

पर के आच्छादन को तोड़ने का मार्ग समाधि है, पर के आच्छादन को विच्छिन्न करने का मार्ग ज्ञान है। इसलिए चाहे धर्म कोई हो—जैनो का, बौद्धो का, हिन्दुओ का, ईसाइयों का, धर्म के चाहे कोई भी रूप हो, लेकिन धर्म के भीतर की प्रक्रिया एक ही है—आच्छादन को विच्छेद कर देने की, वह जो हम पर छा गया है, उसे विसर्जित कर देने की। हम पर घिर गया है, उस बदली को तोड़ देने की, ताकि भीतर से प्रकाश वाले सूरज का उदय हो। एक ही छोटे से सूत्र मे समस्त धर्मों का सार सग्रहीत है। 'हम शून्य हो जाय तो पूर्ण के हमे दर्शन हो जायेगे'। हम शून्य हो जाय, तो हम समाधि मे पहुच गये।

कैसे शून्य हो जाय—एक छोटा सा विचार भी तो छोड़ा नही जाता? समस्त विचार की प्रक्रिया कैसे छूटेगी? स्वाभाविक है कि हमसे आप पूछा कि एक छोटा सा विचार कण तो मन से निकलता नही, पूरे विचार की प्रक्रिया कैसे

निकलेगी ? और विचार को धक्के दें तो उल्टा विचार और प्रभावी हो जाता है। एक विचार को निकालना चाहें, तो वह और चार मजमानों को साथ लेकर वापस लौट आता है।

विचार को निकालने का उपाय अगर कभी किये हों—अगर कभी मदिर में, मस्जिद में, देवालय मे बैठकर प्रभु का स्मरण करने की कोशिश की हो, तो पता होगा, जो विचार सामान्य जीवन मे नही आते हैं, उस मदिर के घेरे के भीतर बैठकर आने शुरू हो जाते हैं। जब-जब चित्त के साथ चेष्टा की हो कि चित्त शून्य हो जाय, शात हो जाय, मौन हो जाय—तभी पाया होगा कि मौन करने के प्रयास मे तो चित्त के भीतर छिपे हुए न मालूम कितने तरह के विचार के धुए, न मालूम तरह-तरह के विचारो की पर्तें, न मालूम कण-कण से विचारो की लहर आनी शुरू हो जाती है। जो वैसे शांत प्रतीत होता था, वह शांत होने की चेष्टा मे और भी उद्विग्न, और भी उत्तेजित हो जाता है, और भी उद्वेलित हो जाता है। कभी भी थोड़ा सा प्रयोग करेंगे तो पायेंगे प्रत्येक प्रयोग, प्रत्येक प्रयास मन को और भी अशात कर जाता है। इसलिए साधारणतया वे लोग, जो मदिर मे जाते हैं, जीवन मे ज्यादा अशात होंगे। वे लोग जो चेष्टा मे रत होते हैं चित्त को शात करने की, जीवन मे ज्यादा उद्विग्न होंगे।

उन ऋषियो के बाबत सुना होगा जो अभिशाप देते हैं, जो क्रोध में क्या-क्या कह देते है ? बहुत तरह से लोग अनुभव करते हैं कि चित्त से लड़ने वाले लोग क्रोधी अनुभव हाते है। चित्त के साथ दमन करने वाले लोग अत्यन्त क्रोध से भरे, अत्यन्त ज्वरग्रस्त मालूम होंगे। उनकी शाति के नीचे कही ज्वालामुखी छिपा हुआ है। असल मे मन के साथ दमन, मन के साथ सघर्ष मन को जीतने का उपाय नही है। मन से जो लड़ेगा, वह मन को जीतेगा नही। मन को जीतने का राज कुछ दूसरा है। इसलिए एक क्षुद्र विचार को भी इस सघर्ष से दूर नही किया जा सकता है।

तिब्बत मे एक साधु हुआ है। उसके पास एक युवक गया था। तीन चार वर्ष तक उस युवक ने उस साधु की सेवा की थी। और चाहा था कि कोई सिद्धि मिल जाय। वह साधु टालता रहा, टालता रहा। उसने कहा, मेरे पास तो कोई सिद्धि नही। लेकिन युवक माना नही, पीछे पड़ा ही रहा। साधु ने आखिर एक दिन उसे कागज पर एक मत्र लिखकर दिया और कहा, यह ले जा, पाच बार एकात क्षण में रात्रि को बैठकर इसे स्मरण कर लेना और तब तू जो चाहेगा

चमत्कार और सिद्धि, तुझे उपलब्ध हो जायेगी। अब तू भाग जा। वह युवक भागा, उसी के लिए तो वह तीन वर्ष से रुका था! उमंग से सीढ़िया उतर रहा था, आखिरी सीढ़ी उतरने को था, तो उस साधु ने चिल्लाकर कहा कि सुनो मित्र, एक बात तो बताना भूल गया। शर्त अधूरी रह गयी। जब पांच बार इस मत्र को पढो तो याद रखना बन्दर का स्मरण न आये। उस युवक ने कहा, पागल हुए हो, जिन्दगी भर किसी बन्दर का स्मरण नही आया, पांच बार स्मरण करने मे क्यो आयेगा ?

लेकिन वह पूरी सीढिया भी उतर नही पाया था और बन्दर ने उसे घेर लिया। वह राह पर चला और बदर का बिंब उसके भीतर उठने लगा। वह हटाने लगा बदर, तो एक नही अनेक झाकने लगे। सारा चित्त जैसे बंदरो की भीड़ से भर गया। वह घर तक पहुचा तो बदरो की भीड मे उसका सारा मनस् घिर गया। वह बहुत हैरान हुआ कि साधु जरूर अज्ञानी और नासमझ है। अगर बदर का स्मरण मत्र मे बाधा देता है, तो उस अज्ञानी, उस नासमझ को कहना ही नहीं था। उसने कहकर तो मुसीबत कर दी। उसने स्नान किया, उसने पवित्र नामो का स्मरण किया, वह एकात गाव के बाहर जाकर बैठा, उसने सब उपाय किये, लेकिन बदर साथ थे! बदर से अलग होना सभव नही रहा। जितने भी उपाय किये—बदर ही बदर थे। आख खोलता तो उनके प्रतिबिम्ब, आख बन्द करता तो उनके प्रतिबिम्ब! वह सुबह तक तो विक्षिप्त होने लगा, बदर ही बदर घेरे हुए थे! और कोई भी विचार नही रहा चित्त मे, सारे विचार विलीन थे, जिन्होने राज परेशान किया था, वे विचार अब न थे! अब केवल एक ही विचार था, क्योकि एक ही धारणा थी गलत करने की। सुबह-सुबह उसने साधु का जाकर क्षमा मागी, मत्र वापस लौटा दिया। साधु ने पूछा, क्या दिक्कत हुई ? उसने कहा, अब उसकी बात मत छेडो। जो दिक्कत हुई, अब उससे मैं पार नही पा सकता। अगर यही शर्त है कि बदर का स्मरण न आये, तो इस जिन्दगी मे यह मन से तोडना सभव नहीं है।

जो उसके साथ हुआ, वह प्रत्येक के साथ होगा। होने के पीछे वैज्ञानिकता है। गलत नही हुआ, ठीक हुआ। सघर्ष का परिणाम है यह, दमन का परिणाम है यह। उन चीजो का दमन नही किया जा सकता, जिनकी कोई पॉजिटिव सत्ता जिनकी कोई पॉजिटिव एक्जिस्टेंस, जिनकी कोई विधायक सत्ता नही है। जैसे इस कक्ष मे अन्धेरा हो रहा हो और हम सारे लोग उस अन्धेरे को धक्के देकर निकालने लगे तो वह निकलेगा ? वह नही निकलेगा। आप कहेंगे कि इतनी ताकत

लगायी, लेकिन फिर भी नहीं निकलेगा ? असल में ताकत का प्रश्न ही असंगत है। अन्धेरा है नहीं, अगर होता तो धक्के देने से निकल सकता है। अंधेरा नकारात्मक है, वह किसी चीज का अभाव है। वह किसी चीज का भाव नहीं है। वह प्रकाश का अभाव है। इसलिए उसे निकाला नहीं जा सकता। प्रकाश को जला लें, वह नही पाया जाता। निकलता नहीं, स्मरण रखे। प्रकाश को जलाने से अंधेरा निकलकर बाहर नहीं चला जाता। प्रकाश के आने से वह नही है, वह केवल प्रकाश का अभाव था। उसकी अपनी कोई सत्ता नही थी। जिन-जिन चीजो की अपनी कोई सत्ता नही है, उन्हे धक्के देकर अलग नही किया जा सकता। जिनकी अपनी सत्ता है, उन्हें भर अलग किया जा सकता है।

प्रकाश का अभाव अन्धेरा है, ध्यान का अभाव विचार है।

इसलिए विचार को निकलना नही होता, ध्यान को लगाना होता है। ध्यान मे जागरण से विचार का विसर्जन होता है। जिस मात्रा मे ध्यान जाग्रत होगा, उसी मात्रा मे विचार शून्य की तरफ विलीन होते चले जायेंगे। जिस क्षण परिपूर्ण ध्यान उद्भव मे आयेगा, विचार नकार हो जाते हैं, न हो जाते हैं।

विचार से संघर्ष नही—ध्यान के आविर्भाव के लिए प्रयास, ध्यान के आविर्भाव के लिए पुरुषार्थ।

फिर क्या अर्थ हुआ ध्यान का ?

ध्यान का अर्थ है चित्त को जागरूकता से, चित्त की अवेअरनेस से, चित्त को विवेक से भरना।

महावीर ने अपने साधुओ से कहा था, 'जागो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से, चलो तो विवेक से, उठो, बैठो, तो विवेक से'।

क्या अर्थ है विवेक का ?

विवेक का अर्थ है परिपूर्ण जागरूक, पूर्ण जागरूकता से भरे हुए। समस्त शरीर की क्रियाओ के प्रति, मन की समस्त क्रियाओ के प्रति होश से भरे हुए। मन के प्रति जागरूक बनो, साक्षी बनो, मन से लड़ो मत, विचार के प्रवाह के प्रति दृष्टा बनो। तटस्थ दृष्टा बनो, केवल देखते रह जाओ। विचार को विसर्जित नही करना है—केवल विचार को देखते रह जाओ। मात्र दृष्टा रह जाओ, कुछ करो नही। केवल होश से भरकर विचार के प्रवाह को देखो—अलिप्त, असंग-भाव से। जैसे राह पर लोग निकलते है, जैसे राह पर राहगीर निकलते हैं और मैं किनारे खड़े चुपचाप देख रहा हू। मन के मार्ग पर चलते हुए विचार की

परपरा को, मन के मार्ग पर चलते हुए विचार की भीड़ को चुपचाप खड़े होकर देखते रहने का प्रयोग करना होता है। लड़ना नही होता, उनको छेड़ना नहीं होता, उनको रोकना नही होता, उनको धक्के नही देने होते, उस पर शुभ और अशुभ के निर्णय नहीं लेने होते, उनका कंडेमनेशन नही करना होता, क्योंकि जैसे ही हमने उनके साथ कुछ किया, प्रवाह तीव्र और त्वरित हो जायेगा। केवल देखना होता है, मात्र दृष्टा का प्रयोग करना होता है। और क्रमश जिस-जिस मात्रा मे भीतर मूर्छा टूटेगी और विचार के प्रवाह के प्रति जागरूकता आयेगी, उसी मात्र मे विचार विलीन होने लगते हैं।

सी. एम जोड पश्चिम का एक बडा विचारक था। उसने लिखा है मैं जीवन भर विचारो से भरा रहा। एक दफा एक मनोविश्लेषक के पास गया। उसने पर्दे के पीछे मुझे एक कोच पर लिटा दिया, पर्दे के दूसरी तरफ खुद खड़ा हो गया और मुझसे बोला, जो भी विचार चित्त मे आ रहे हो, उन्हे देखकर जोर से बोलते चले जाओ।

जुग ने लिखा है, मैंने भीतर देखा कि जो विचार आये, उनको बोलू। मैं भीतर देखने लगा, टटोलने लगा, लेकिन मैं बहुत हैरान हो गया, वहा कोई विचार आ ही नही रहा था। वहा कोई विचार आ ही नही रहा था! जुग ने लिखा, मैं चकित हो गया। जीवन मे सोते-जागते जिनका प्रवाह नही टूटा था, आज मैं खोजने गया था भीतर और वे नदारद थे, वे अनुपस्थित थे! भीतर आख पहुची और विचार नही थे! जैसे प्रकाश अधेरा को नही देख पाता, वैसे ही जब भीतर आख पहुचेगी, भीतर देखने का प्रयास पहुचेगा, भीतर जागरूकता पहुचेगी तो विचार शून्य हो जायेंगे, उसकी सासे छूट जायेगी उनके प्राण चले जायेंगे।

सतत उठते-बैठते, सोते-जागते विचार के प्रति जो तद्रा है, उसको तोडना ध्यान है, उसके प्रति जागरूक होना ध्यान है।

बुद्ध जीवन मे एक उल्लेख है, वह मैं कहू, उससे मेरी बात समझ मे आ सकेगी।

बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हुआ। उसका नाम श्रोण था। दीक्षा के दूसरे दिन बुद्ध ने कहा, मेरी एक श्राविका है, उसके घर जाकर भिक्षा ले आना। वह श्राविका के घर भिक्षा लेना गया। उसे उसके सारे जीवन की स्मृतिया कौंध गयी आखो मे। कल तक राजकुमार था, आज उसी मार्ग पर भिक्षा का पात्र

लिये चलता था ! स्वाभाविक था, पूरा जीवन उसे दोहर जाय। उसे मार्ग में यह भी स्मरण आया, कल तक घर में पत्नी थी, मां थी, जो कुछ प्रिय था, भोजन, वह उपलब्ध होता था। आज कोई न जानेगा—न मालूम क्या मिलेगा ? उसे सारे सुस्वादु भोजन, जोकि उसे सदा प्रिय रहे, स्मरण आये।

वह श्राविका के घर जाकर भोजन करता था, देखकर हैरान, चकित हो गया कि जो भोजन उसे प्रिय थे, वे ही उसे परोसे गये थे ! उसने सोचा, अजीब सा संयोग है—फिर यह मानकर कि शायद यही भोजन बने होंगे, वह चुपचाप भोजन करने लगा। भोजन करता था, कि उसे स्मरण आया—रोज तो भोजन के बाद घर मे दो क्षण विश्राम करता था, आज तो भोजन के बाद दो मील दोपहरी में चलना है। वह श्राविका सामने पंखा झलती थी। उसने कहा, भंते, भोजन के बाद दो क्षण विश्राम करेंगे, तो अत्यंत अनुग्रह होगा। वह थोडा चौंका, सोचा क्या बात है ! फिर याद आया, संयोग ही होगा कि मुझे भी उस वक्त विचार आया और उसे भी विचार आ गया। चटाई डाल दी गयी, वह भोजन के बाद विश्राम के लिए लेटा। लेटते ही उसे याद आया कि आज अपना न तो कोई साया है, न अपनी कोई शय्या है। वह श्राविका निकट थी, उसने कहा, भन्ते, शय्या भी किसी की नही, साया भी किसी का नहीं।

अब संयोग होना कठिन था। वह उठ बैठा, उसने कहा, मैं हैरान हूं—क्या मेरे विचार पढ़ लिये जाते हैं ? क्या मेरे विचार संक्रमित हो जाते हैं ? श्राविका ने कहा, ध्यान का, सतत्-जागरूकता का प्रयोग करते-करते पहले स्वयं के विचार दीखे, फिर स्वयं के विचार विसर्जित हो गये। अब तो मैं हैरान हू, दूसरे के विचार भी दीखते है ! वह भिक्षु घबडा गया—वह बहुत परेशान है, उसके हाथ पैर कप गये। श्राविका ने कहा, क्या घबराने की बात है ? लेकिन उसके माथे से पसीने की बूदें आ गयी। श्राविका ने कहा, इसमे परेशान होने की क्या बात है ?

लेकिन वह भिक्षु तो वापस विदा लेकर चल पडा। उसने बुद्ध से जाकर कहा, मैं उस द्वार पर भिक्षा लेने नही जाऊंगा। बुद्ध ने कहा, कोई असम्मान हो गया ? उस श्रोण ने कहा, असम्मान नहीं, पूरा सम्मान हुआ, बहुत प्रीतिकर सत्कार हुआ। लेकिन अब उस द्वार पर दुबारा नही जाऊंगा। वह श्राविका दूसरे के विचार पढ़ लेती है ! और आज उस सुन्दर युवती को देखकर मेरे मन मे तो वासना भी उठी। वह भी पढ़ ली गयी होगी। उसने क्या सोचा होगा ? कल उसी द्वार पर इस चेहरे को कैसे ले जाऊं ? किस भांति मैं उसके सामने खड़ा होऊंगा ?

बुद्ध ने कहा, वहीं जाना होगा। जानकर तुझे भेजा है। तेरी साधना का अंग है वहां जाना। लेकिन तू होश से जाना। घबड़ा मत। अपने भीतर देखते हुए जाना कि क्या उठता है। डरना मत। जो भी वासनाएं उठें, देखते हुए जाना। विचार उठें, देखते हुए जाना। केवल देखते हुए जाना, कुछ मत करना। फिर लौटकर मुझे कहना।

मजबूरी थी, श्रोण को वहीं जाना पड़ेगा। आज वह बहुत नये ढंग से गया। कल खोया हुआ गया था उसी मार्ग पर—तन्द्रित था, मूर्छित था, होश न था, विचार चलते थे मूर्छा मे। और आज वह आंख गड़ाये हुए, जागरूक, साक्षी होकर देखता हुआ गया। एक-एक विचार के प्रति होश से भरा था, अलग था। वह हैरान हो गया। भीतर देखता था, तो सन्नाटा हो जाता था। भीतर से तन्द्रा गहरी होती थी, तो बाहर देखता था, विचार का प्रवाह चलने लगता था। जब बाहर देखता, भीतर विचार चलने लगता। जब भीतर देखता, विचार-शून्य हो जाता। वह सीढ़ियो पर चढ़ा तो उसे श्वास भी पता चल गयी! सास भी दिखायी पड़ रही थी—भीतर आती-जाती थी। पैर उठाया तो उसका भी होश था। खाना खाया, कौर उठाया तो उसका भी परिपूर्ण स्मरण था! श्वास की गति का भी—स्पदन ज्ञात हो रहा था!

वह नाचता हुआ वापस लौटा था। वह बुद्ध के पैरो मे गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे तो रहस्य का सूत्र मिल गया। बुद्ध ने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, जब मैं भीतर जागकर देखता था तो पाता था, विचार विलीन हैं! जब मैं होश मे होता था, विचार अनुपस्थित होते थे! जब मैं बेहोश होता था, विचार उपस्थि हो जाते थे!

बुद्ध ने कहा, मूर्छा मन है—अमूर्छा मन के पार ले जाती है।

महावीर ने भी कहा है, प्रमत्त होना बन्धन है—अप्रमत्त होना मुक्ति है।

प्रमत्तता का अर्थ है: मूर्छा, बेहोशी—मन के प्रति, मन की क्रियाओ के प्रति।

अप्रमत्तता का अर्थ है जागरूकता, अवेअरनेस, होश।

होश, जागरूकता के माध्यम से मन विसर्जित हो जाता है। चिन्तन विसर्जित हो जाता है। विचार की लहरें खो जाती हैं। उनकी सुप्त स्थिति मे उनसे जो आच्छादित था, वह उद्घाटित हो जाता है। उसका उद्घाटन मुक्ति है, उसका उद्घाटन बंधन के बाहर पहुंच जाना है। उसके उद्घाटन पर जीवन एक नये डायमेंशन मे, एक नये आयाम मे, एक नये क्षितिज मे स्थापित हो जाता है।

जिन्होंने उस मुक्त-जीवन-क्षण को अनुभव किया है, वे अनन्त आनन्द के मालिक हो गये हैं। जिन्होंने उस मुक्त-क्षण का अनुभव किया है, वे अनन्त शक्ति के मालिक हो गये हैं। और उन सारे लोगों का आश्वासन है, जो भी व्यक्ति कभी भी अपने भीतर झांकेगा, वह प्रभु के इस अद्भुत राज्य का मालिक हो सकता है। यह आश्वासन प्रत्येक को है।

कोई भी अपात्र नहीं है।

जीवन के और सबधो में एक की क्षमता कम होगी, दूसरे की ज्यादा होगी। आत्मिक जीवन में सबकी क्षमता समान है। कोई भी अपात्र नही हो सकता। आत्मिक जीवन मे प्रत्येक की क्षमता समान है, केवल जागरण को पुकारने की, केवल अपने भीतर उसको जगाने की, केवल अपने भीतर प्यास को पैदा करने की बात है।

जो ठीक से अपने भीतर थोड़े से जागरूकता के प्रयोग करेगा, वह ठीक ससार के बीच मुक्ति के आनद को अनुभव करेगा।

अन्तत यह जो मैं कहा, यह किन्ही विशिष्ट लोगो के लिए नहीं कहा है। यह हममे से प्रत्येक के लिए कहा है। जो हड्डी और मांस महावीर की देह को बनाते थे, वे ही हड्डी और मांस हमारी देह को बनाते हैं। जो चेतना उनकी उस देह के भीतर स्थापित थी, वही चेतना हमारी देह के भीतर भी स्थापित है। एक कण का भी अंतर नही है। एक कण का भी अतर नही हो सकता है। फिर हमे अपमानित होना चाहिए। हम मदिरो में पूजा करते है। हमें असल मे महावीर, बुद्ध और ईसा को देखकर अपमानित होना चाहिए। हमे आत्म-निन्दित होना चाहिए। उनकी श्रद्धा और आदर मे कही हम अपने अपमान को तो नहीं छिपा लेते हैं? उन्हे देखकर हमारे भीतर कही अपमान नही होता! हमें ऐसा भी तो नही होता कि इस शरीर, इस चैतन्य को वे किस परम-प्रभु तक पहुचा दिये है! और हम! हम कहां उसे पशु के घेरे मे घुमा रहे हैं! क्या हमारे भीतर अपमान नही सरकना?

अगर मंदिर और उनमें विराजमान मूर्तियां हमे अपमानित नही करती है, तो मदिर व्यर्थ हैं, वे मूर्तिया व्यर्थ हैं। हम श्रद्धा की गुहार में, और पूजा और अर्चना मे, और उनके नाम के स्मरण मे अपने आत्म-अपमान को भुला देते है! उस अपमान का मैं स्मरण दिलाना चाहता हूं। और हमारे भीतर कोई प्यास सरक जाये और अपमान पकड़ ले, और कोई पुरुषार्थ, कोई सकल्प पैदा

हो जाय—कि जो किन्ही लोगो ने कभी उपलब्ध किया है, उसे हम भी—मैं भी उपलब्ध करूंगा, मुझे भी उपलब्ध करना है, मैं भी बिना उपलब्ध किये अपने इस जीवन को व्यर्थ खोने को नही हू। अगर यह संकल्प पकड़ जाय तो जीवन मे अद्‌भुत—निश्चित ही अद्‌भुत क्राति घटित हो सकती है।

प्रभु करे, वह क्राति प्रत्येक के जीवन मे घटित हो जाय, यही मेरी कामना है। और अत मे सबके भीतर बैठे हुए परम-प्रकाशमान प्रभु को मैं प्रणाम करता हू। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

— ० —

अन्तस्-जीवन की एक झलक

मेरे प्रिय आत्मन,

एक छोटी-सी घटना से मैं अपनी आज की बात को शुरू करना चाहूगा।

एक फकीर, एक सन्यासी प्रभु की खोज मे पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा था। वह किसी मार्गदर्शक की तलाश मे था—कोई उसकी प्रेरणा बन सके, कोई उसे जीवन के रास्ते की दिशा बता सके। और, आखिर उसे एक वृद्ध सन्यासी मिल गया राह पर ही, और वह वृद्ध सन्यासी के साथ सहयात्री हो गया। लेकिन उस वृद्ध सन्यासी ने कहा कि "मेरी एक शर्त है, यदि मेरे साथ चलना हो—और वह शर्त यह है कि मैं जो कुछ भी करू, तुम उसके संबंध में धैर्य रखोगे और प्रश्न नही उठा सकोगे। मैं जो कुछ भी करू, उस सबध मे मैं ही न बताऊ, तब तक तुम पूछ न सकोगे। अगर इतना धैर्य और सयम रख सको तो मेरे साथ चल सकते हो।"

उस युवक ने यह शर्त स्वीकार कर ली और वे दोनों सन्यासी यात्रा पर निकले। पहली हो रात वे एक नदी के किनारे सोये और सुबह ही उस नदी पर बधी हुई नाव मे बैठकर उन्होने नदी पार की। मल्लाह ने उन्हें सन्यासी समझकर मुफ्त नदी के पार पहुचा दिया। नदी के पार पहुचते-पहुचते युवा सन्यासी ने देखा कि बूढा सन्यासी चोरी-छिपे नाव मे छेद कर रहा है! नाव का मल्लाह तो नदी के उस तरफ ले जा रहा है और बूढा सन्यासी नाव मे छेद कर रहा है! वह युवा सन्यासी बहुत हैरान हुआ—यह उपकार का बदला? मुफ्त मे उन्हे नदी पार करवाई जा रही है! उस गरीब मल्लाह की नाव मे किया जा रहा यह छेद?

भूल गया शर्त को। कल रात ही शर्त तय की थी। नाव से उतरकर वे दो कदम भी आगे नही बढ़े होंगे कि युवा सन्यासी ने पूछा कि "सुनिये! यह तो

आश्चर्य की बात हुई कि एक संन्यासी होकर—जिस मल्लाह ने प्रेम से नदी पार करवाई है, मुफ्त सेवा की है सुबह-सुबह, उसकी नाव मे छेद करने की बात मेरी समझ में नही आती, कि उसकी नाव मे आप छेद करें ? यह कौन-सा बदला हुआ—नेकी के लिए बदी से, भलाई का बुराई से ? '

उस बूढ़े सन्यासी ने कहा "शर्त तोड दी तुमने। साँझ को हमने तय किया था कि तुम पूछोगे नही। मेरे मे विदा हो जाओ। अगर विदा होते हो तो मैं कारण बताए देता हू। और अगर साथ चलना हो तो आगे ध्यान रहे, दुबारा पूछा तो फिर साथ टूट जाएगा।"

युवा सन्यासी को ख्याल आया। उसने क्षमा माँगी। उसे हैरानी हुई की वह इतना भी सयम न रख सका, इतना भी धैर्य न रख सका !

लेकिन दूसरे दिन ही फिर सयम टूटने की बात आ गई। वे एक जगल से गुजर रहे थे, और उस जगल मे उस देश का सम्राट शिकार खेलने आया। उसने सन्यासियो को देखकर बहुत आदर किया, उन्हे अपने घोडो पर सवार किया और वे सब राजधानी की तरफ वापस लौटने लगे। वृद्ध सन्यासी के पास राजा ने अपने एकमात्र पुत्र युवा राजकुमार को घोडे पर बिठा दिया। घाडे दौडने लगे राजधानी की तरफ। राजा के घोडे आगे निकल गये, दोनो सन्यासियो के घोडे पीछे रह गये। बूढे सन्यासी के साथ राजा का बच्चा भी बैठा हुआ है, वह एक-मात्र बेटा है उसका। जब वे दोनो अकेले रह गये, उस बूढे सन्यासी ने उम युवा राजकुमार को नीचे उतारा और उसके हाथ को मरोडकर तोड दिया। उसे झाडी मे धक्का देकर अपने सन्यासी साथी से कहा "भागो जल्दी। '

यह तो बरदाश्त के बाहर था। फिर भूल गया शर्त। उसने कहा "हैरानी की बात है यह ! जिस राजा ने हमारा स्वागत किया, घोडो पर सवारी दी, महलो मे ठहरने का निमत्रण दिया—जिसने इतना विश्वास किया, जिसने अपने बेटे के घोडे पर तुम्हे बिठाया, उसके एकमात्र बेटे का हाथ मरोडकर तुम जगल मे छोड आये हो। यह क्या है ? यह मेरी समझ के बाहर है ! मैं इसका उत्तर चाहता हू ?"

बूढे ने कहा "तुमने फिर शर्त तोड दी। और मैने कहा था कि दूसरी बार तुम शर्त तोडोगे, तो विदा हो जाएगे। अब हम विदा हो जाते हैं, और दोनो का उत्तर मैं तुम्हे दिये देता हू। जाओ लौटकर पता लगाओ—तुम्हे ज्ञात होगा कि वह नाव वह मल्लाह इसी किनारे पर रात छोड गया, और रात एक गाव पर

डाका डालनेवाले लोग उसी नाव पर सवार होकर डाका डालेंगे। मैं उसमे छेद कर आया हू। एक गाव मे डाका बच जाएगा।"

राजा के लडके को मैंने हाथ मरोडकर छोड दिया है जगल में। तुम पता लगाना—यह राजा अत्यन्त दुष्ट और क्रूर, और आततायी है। इसका लडका उससे भी क्रूर और आततायी होने को है। लेकिन उस राज्य का एक नियम है कि गद्दी पर वही बैठ सकता है, जिसके सब अग ठीक हो। मैंने उसका हाथ मरोड दिया है, वह अपग हो गया, अब वह गद्दी पर बैठने का अधिकारी नही रहा। सैकडो वर्षों से इस देश की प्रजा पीडित है, वह पीडित परपरा से मुक्त हो सकेगी।

अब तुम विदा हो जाओ। मैं क्षमा चाहता हू। तुम्हे, जो प्रकट दिखाई पडता है, वही दिखाई पडता है, जो अप्रकट है, जो अदृश्य है, वह दिखाई नही पडता। और जो आदमी प्रगट पर ही ठहर जाता है, वह कभी सत्य की खोज नही कर सकता है। मैं तुमसे क्षमा चाहता हू, हमारे रास्ते अलग जाते हैं।

मुझे पता नही है कि यह कहानी कहा तक सच है, यह भी पता नही है कि उस गाव पर डाकू हमला करते या न करते, यह भी पता नही है कि राजकुमार बडा होकर आततायी होता या नही होता, लेकिन यह कहानी मैंने किसी दूसरे ही अर्थ से कहनी चाही है, और वह यह है कि जिन्दगी मे एक तो प्रकट अर्थ होता है, और एक अप्रगट अर्थ होता है। जीवन के समस्त तथ्यो के पीछे एक तो वह अर्थ होता है, जो ऊपर से दिखाई पडता है, और एक वह अर्थ होता है, जो अदृश्य होता है। जो ऊपर के ही अर्थ को देखते हैं, वे धार्मिक नही हैं, जो भीतर के अदृश्य अर्थ को देख पाते हैं, वे धार्मिक हैं।

इससे इसलिए शुरू करना चाहता हू कि महावीर का एक जीवन तो वह है, जो किताबो मे लिखा हुआ है, शास्त्रो में लिखा हुआ है, महावीर के पूजने वाले जिसको मानते हैं, और महावीर का एक जीवन वह है, जो प्रगट नही है, अदृश्य है, और जिसे देखने के लिए बहुत धैर्य की और बहुत सयम की आखें चाहिए। किताबो मे उसे नही लिखा जा सकता, जो अप्रगट है, शब्दो मे उसे नही बाधा जा सकता, जो अदृश्य है। उसके तो सकेत और इशारे हो सकते हैं। लेकिन लोग सकेत को पकड लेते हैं, इशारो को पकड लेते हैं, और पीछे जो अप्रगट है, छोड देते हैं।

पूरी दुनिया मे, सारे महापुरुषो के साथ जो अन्याय हुआ है, वह महावीर के साथ भी हुआ।

अभी एक भाई ने प्रार्थना की कि उनके जीवन पर मैं कुछ कहू। किस चीज को जीवन समझते हैं आप महावीर का? किस घर में पैदा हुए, इस बात को? तो पागल हैं आप। किस बाप के बेटे थे, इस बात को? तो पागल हैं आप। राजा के घर मे पैदा हुए, इस बात को? शादी की, कि नहीं की? कि लड़की पैदा हुई, कि नही हुई? कि कपड़े पहनते थे, कि नही पहनते थे? कि कितनी उम्र तक जिदा रहे, कि किस सन् मे पैदा हुए और किस सन् में मर गए, इसको जिंदगी समझते हो महावीर की? तो आपमे सयम नही है और धैर्य नहीं है। महावीर को आप नही जान सकते। ये कोई भी, महावीर की जिंदगी का इन बातो से कोई भी सबध नही। ये नान-इसेसिअल है, ये बाते बिलकुल ही सारहीन हैं। लेकिन इन्ही बातो को जीवन समझा जाता है—न केवल महावीर का, क्राईस्ट का, राम का, कृष्ण का, किसी का भी! यह बिलकुल व्यर्थ है, जिसका कोई भी मूल्य नहीं है कि कौन आदमी कहा पैदा होता है, किस घर मे पैदा होता है, राजा के घर मे पैदा होता है, कि दरिद्र के घर मे पैदा होता है, कि क्षत्रिय के घर मे पैदा होता है, कि ब्राह्मण के घर मे पैदा होता है, कि शूद्र के घर मे पैदा होता है, कि ऊचे कुल मे पैदा होता है—कहा पैदा होता है, इसका कोई मूल्य नही है, यह शरीर की कथा है, इससे महावीर का कोई सम्बन्ध नही है।

यू तो हर आदमी कहीं-न-कहीं पैदा होता है। कितने दिन जिंदा रहता है, किस सन् मे पैदा होता है और किस सन् मे समाप्त हो जाता है, इसका भी कोई मूल्य नही।

मैं एक गाव मे बोल रहा था—एक बड़ी नगरी मे, एक व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा कि "मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हू। महावीर और बुद्ध सम-सामायिक थे, कटेम्परेरी थे, उन दोनो मे किसकी उम्र ज्यादा थी? दोनो मे कौन बड़ा था, कौन उम्र मे छोटा था?" उस सज्जन ने कहा कि मैं तीन वर्ष से इस बात की खोजबीन कर रहा हू, लेकिन अभी तक मैं निर्णय नही कर पाया हू, कि पहले कौन पैदा हुआ। मैंने उनसे कहा, कोई भी पहले पैदा हुआ हो, किसी की उम्र कम और ज्यादा रही हो, ये गौण बाते है। लेकिन इसमे आपकी तीन साल की उम्र व्यर्थ हो गयी है निश्चित ही। एक बात तय है कि आपने तीन साल की उम्र गवा दी है। कोई भी—महावीर उम्र मे ज्यादा रहे हो, कि बुद्ध, इससे क्या फर्क पड़ता है? और कोई पहले पैदा हुआ हो, कि पीछे पैदा हुआ हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे जिदगी को समझने मे, इससे जीवन

के अर्थ को खोज लेने में कौन-सी बुनियादी बात प्रगट होती है ? वे कभी पैदा भी न हुए हों तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पैदा होना और न पैदा होना उतना महत्व-पूर्ण नहीं है—महावीर की अन्तर्दशा, महावीर का अन्तस्-जीवन, महावीर की आत्मा क्या है ?

लेकिन मैं देखता हू—जगह-जगह इन्तजाम हो रहे हैं, पडित कथाए बता रहे हैं कि कब पैदा हुए, कि कैसे पैदा हुए, कि कितने हाथी-घोड़े थे उनके घर, कितना धन था, किस तरह त्याग किया, कितना धन, कितना कोटि धन बाट दिया! बड़े महान् त्यागी थे, क्योंकि इतना धन छोडा। इतना धन उनके पास न होता तो ये पडित एक भी उन्हे पूछने न आते, क्योंकि छोड़ते क्या? अगर गरीब के घर पैदा होते महावीर तो उनका तीर्थंकर बनना कठिन था इन सारे लोगो की आखो मे, जो उनको तीर्थंकर माने हुए हैं।

आपको पता है—जैनो के चौबीस तीर्थंकर राजा हैं, एक भी गरीब का बेटा नही! हिन्दुओ के सब भगवान के अवतार राजाओ के पुत्र हैं, एक भी गरीब का बेटा नहीं! बौद्धो के सब बुद्ध-अवतार राजाओ के पुत्र हैं, एक भी गरीब का बेटा नही! हिन्दुस्तान मे आज तक एक भी गरीब के लडके को ईश्वर होने का हक नही मिल सका!

क्यो? क्या अमीर के घर मे ही पैदा होता है ईश्वर? भगवान ने कोई ठेका ले रखा है अमीर के घर मे पैदा होने का?

नहीं, यह बात नही है। भगवान तो हजारो घरो में पैदा होता है, लेकिन हमारी अधी आखें केवल उस भगवान को पहचान पाती हैं, जो धन का त्याग करता है। धन से हम भगवान को नापते हैं! गरीब भगवान हमे दिखायी नही पड सकता। हमारी नाप-जोख धन की है। हम कहते तो धर्म की बातें है, और हम समझते भी यह हैं कि हम त्याग की प्रशसा कर रहे हैं। लेकिन झूठी है यह बात।

महावीर की प्रशसा करते वक्त जब कोई यह गिनती गिनाता है कि कितने सोने के रथ, कितना राज्य, कितना धन, कितने हीरे-माणिक उनके पास थे, उनको ठुकराकर, त्याग कर वे गए, तो याद रखना उनकी आंखो में त्याग का कोई मूल्य नहीं है, वह जो सख्या गिना रहा है धन की, उसका मूल्य है। क्योकि उस मूल्यवान धन को वे छोडकर चले गये, इसलिए उनका मूल्य मालूम पड़ता है।

मैं जयपुर में था। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि एक बहुत बडे मुनि हैं यहां, आप उनके दर्शन नही करेंगे? मैंने कहा, वे बडे मुनि हैं, यह तुम्हे कैसे पता चला? उसके बांट-बटखरे कहा है, उसके तोलने का तराजू कहा है कि कौन बडा मुनि है और कौन छोटा मुनि है? कौन मुनि है और कौन मुनि नही है? कैसे तुमने जाना?

उन्होने कहा, यह भी कोई बात है पूछने की? खुद जयपुर-नरेश उनके चरण छूते हैं!

समझ गये आप, मापदण्ड क्या है नापने का? जयपुर-नरेश अगर पैर नहीं छूते है मुनि के तो मुनि छोटे हो गये! तो मैंने कहा, 'इसमे जयपुर-नरेश बड़े सिद्ध होते हैं, कि मुनि बडे सिद्ध होते हैं—कौन बडा सिद्ध होता है?' इसमे जयपुर-नरेश बडे सिद्ध होते है, इसमे मुनि बडे सिद्ध नही होते।

जब कोई गिनती बताता है इतना धन छोडा, इसलिए बडे त्यागी हैं, वह त्याग बडा सिद्ध नही होता, धन बडा सिद्ध होता है, क्योकि धन मापदण्ड है, धन क्राइटेरिअन है। इस सबकी कथा कि महावीर ने कितना धन छोडा, दो कौडी की है। जब महावीर को कोई मूल्य नही है उस धन का, तो महावीर के जीवन को समझने के लिए उस धन का कोई मूल्य नही रह जाता। जब महावीर को मूल्य नही है उस धन का, तो महावीर की जिंदगी मे उसकी गणना क्यो की जाती है? कौन कर रहा है यह गणना? ये महावीर को समझने वाले लोग नही है।

महावीर कहते हैं कि आत्मा का न कोई जन्म होता, न कोई मृत्यु होती है, तो महावीर के जीवन की कथा मे जन्म और मृत्यु की कथा बकवास है। क्योकि महावीर कहते हैं कि जन्म भी गौण, मृत्यु भी गौण, आत्मा तो अमर है, जन्म और मृत्यु का कोई हिसाब रखने की जरूरत नही। जब महावीर यह कहते है तो महावीर की जीवन-चर्या की बात करने वाले लोग अगर महावीर के जन्म और मृत्यु की चर्चा करते है, तो दुश्मन हैं महावीर के, अनुयायी नही हैं। समझे ही नही कि महावीर क्या कह रहे है, क्या उनका जीवन है!

तो किस जीवन की बात पूछना चाहते है आप? कुछ ऐसे ढग से पूछी गई है बात कि उनके जीवन पर कहे, जैसे मैं कही किसी और चीज पर न कह दू!

जीवन क्या है?

जीवन कोई ऐसी चीज नही है कि आप घटनाओ में उसके आकडे बिठा ले, जीवन जो आबविअस है, जो दिखाई पडता है, प्रगट है, वह नही है। और महा-

वीर का जीवन तो वह बिलकुल नहीं है। वह व्यक्ति उतना ही महान है, जिस व्यक्ति के भीतर ऐसा जीवन है, जो बाहर से दिखाई पड़ना मुश्किल है। हमारी आंखें तो केवल बाहर से देखती हैं और इस बाहर से देखने के कारण हमने सारे महापुरुषों के साथ जो अनाचार किया है—पूजा के नाम पर, प्रार्थना के नाम पर, अनुयायी होने के नाम पर—हमने जो महापुरुषो की विकृत स्थिति पैदा कर दी है, किसी दिन उसका हिसाब लगेगा। हम परमात्मा की अदालत मे कैसे अपराधी सिद्ध होगे, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। हमारा क्या निर्णय होगा, कहना कठिन है। हमारे देखने के ढग, हमारी पहचानने की आंख इतनी बेमानी है कि हम जिन चीजो को आंकते और पहचानते हैं, उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। हम कुछ व्यर्थ खोजने मे इतने सफल हैं—जैसे, थोडा समझें तो हमे दिखाई पड़े कि बाहरी जीवन क्या है और अन्तस्-जीवन क्या है? और महावीर के अन्तस्-जीवन मे थोडी झाकी मिल जाए, तो हमारे खुद के अन्तस्-जीवन मे झाकी मिलने का रास्ता शुद्ध और साफ हो सकता है।

मुझे कोई प्रयोजन नही इस बात से कि महावीर की प्रशसा मे कुछ बाते कहीं जाए, कि न कही जाए, महावीर की प्रशसा मे कहने से, महावीर को तो जरा भी चिन्ता नही है। जब वे जीवित थे, तब चिन्ता नही थी, और अब तो चिन्ता का कोई कारण नही है। लेकिन उनके पीछे चलने वाले जो लोग हैं, उनको बडा आनन्द आता है कि कोई 'महावीर स्वामी,' 'भगवान महावीर,' उनकी प्रशसा मे कुछ बाते कहे! क्यो, उनको क्यो मजा आता है? महावीर को तो कोई मजा नहीं आता। महावीर तो प्रशसा के भूखे नही है, आदर के भूखे नही है। महा-वीर को तो यश की कोई कामना नही है। महावीर को तो पता भी नही है कि कौन उनके बाबत क्या सोचता है, कोई क्या कहता है और न वे इसका कोई मूल्य मानते है। लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले के मन को क्यो गुदगुदी छूटती है, क्यो ऐसा अच्छा लगता है कि कोई प्रशसा करे? बात क्या है?

बीमारी अनुयायी के भीतर होगी, महावीर मे तो बीमारी का पता नही चलता। बीमारी यह है कि जब जोर से अनुयायी चिल्लाता है "बोल महावीर स्वामी की जय," तो वह महावीर स्वामी की जय नही बोल रहा है, वह अपनी जय बोल रहा है। मेरे भगवान जो हैं, वे बहुत बडे भगवान हैं! उनकी आड मे मैं भी बडा हो जाता हू, अन्यथा मुझे उनसे क्या लेना-देना? भगवान से मुझे क्या प्रयोजन? उनकी जय से मुझे क्या प्रयोजन?

और जय बोलने से किसी की जय सिद्ध होती है ? मेरे जीवन से जय बोली जानी चाहिए कि मेरा जीवन प्रगट बने, मेरे भीतर वह प्रगट हो, जिसको मैं आदर दे रहा हू, जो इसके जीवन मे प्रगट हुआ है। जिस फूल की सुगध की मैं बातें कर रहा हू, मेरी जिंदगी मे भी वह सुगध हो, तो जय निकलती है। और नहीं तो थोथे जय-जयकार से पृथ्वी मे बहुत शोरगुल मच चुके, उससे कोई परिणाम नही होता।

जीसस क्राइस्ट के मानने वाले चिल्लाते रहते हैं, 'जय हो जीसस क्राइस्ट की।' राम के मानने वाले राम का जय-जयकार करते हैं, महावीर के मानने वाले महावीर का जय-जयकार करते हैं। और जय-जयकार मे एक-दूसरे को हरा दें, इसकी कोशिश करते है कि हमारा जय-जयकार दूसरे के शोरगुल से बड़ा हो जाए। इससे अगर महावीर और कृष्ण, और क्राइस्ट कही भी होगे, तो कान पर हाथ रख लेते होगे कि ये पागल बड़ा शोरगुल मचाते हैं, शान्ति से बैठने नही देते। काहे के लिए चिल्ला रहे हैं ? किसके लिए चिल्ला रहे हैं ? यह क्यो है ? इतनी उत्सुकता और आतुरता क्यो है कि कोई प्रशसा करे ? क्यो ? इस प्रशसा मे हम अपना रस, अपने अहकार की तृप्ति देखना चाहते हैं ?

जब कोई कहता है, 'राम बहुत बडे हैं', तो राम का मानने वाला भी बड़ा ही जाता है आड मे, ओट मे, कि मैं कोई छोटे का मानने वाला नही हू, बहुत बडे का मानने वाला हू।

जब कोई कहता है, 'जीसस क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं', तो जीसस क्राइस्ट का मानने वाला बड़ा हो जाता है—कि हो गए फीके राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध—सब। और जीसस क्राइस्ट ईश्वर के पुत्र हैं और मैं इनका मानने वाला हू।'

जब महावीर की प्रशसा होती है तो महावीर का मानने वाला सिर हिलाने लगता है कि बडी अच्छी बाते कही जा रही हैं! कुछ अच्छी बातें नही कही जा रही है, आपके अहकार को गुदगुदाया जा रहा है, आपको मजा आ रहा है, आप बडे होते मालूम हो रहे हैं।

लेकिन ध्यान रहे कि **धर्म अहकार का शत्रु है।**

और महावीर की तो सारी की सारी साधना अहकार को मिटा देने की साधना है। कही ये कुछ महावीर की जयन्ती पर करने वाली बातें नही है। इसको सोचना जरूरी है, विचारना जरूरी है। हमारे मोटिव्स क्या हैं ? हमारी अन्तस्-इच्छा क्या है, जो हम कुछ जय-जयकार बोलते हैं, या प्रशसा के लिए

आतुर हो उठते हैं कि कोई प्रशंसा करे? क्यों? लेकिन इन्ही गलत हमारी इच्छाओं ने हमारे सारे महापुरुषों के अद्भुत जीवन को एकदम विकृत कर दिया। हमारे देखने के ढंग, हमारे सोचने के ढंग हमसे बद हैं, हमारे जैसे सकीर्ण हैं। और हमारी संकीर्ण वृत्ति और बुद्धि के कारण, जिस महापुरुष को हम देखने जाते हैं, अपनी संकीर्ण खिड़की से, तो उसकी तस्वीर भी छोटी हो जाती हो तो आश्चर्य नही है।

जैनी मिल-जुल कर महावीर को छोटा करते हैं। ईसाई मिलकर जीसस को छोटा करते हैं। हिन्दु मिलकर राम को छोटा करते है। मुसलमान मिलकर मुहम्मद को छोटा करते हैं। ये लोग इतने बड़े थे कि इस सारी पृथ्वी के हो सकते थे। लेकिन उनके अनुयायियो ने घेरे बना लिये है और उनको छोटा कर दिया है। वे थोड़े से लोगो की सम्पदा हो गये! तीस लाख मुश्किल से जैन होगे हिन्दुस्थान मे, महावीर तीस लाख जैनियो की सम्पदा हो गये! और वे इतने जोर से शोरगुल मचाते हैं कि दूसरा आदमी शंकित हो जाता है कि ये इनके भगवान हैं, ये इनके आदमी हैं, हमे क्या लेना-देना? महावीर से वचित हो जाती है मनुष्यता।

इसी भाँति सारे महापुरुषो से सारी मनुष्यता वचित हो गई है। जो सब की सम्पदा होनी चाहिए, वे कुछ लोगो की सम्पदा हो गये, और वे कुछ लोग अकड़ से चिल्लाते है! वह अकड़ उनकी अपनी है, उसका महावीर से क्या लेना-देना? इसलिए मैं उनकी प्रशसा मे कुछ भी नही कहूगा, क्योकि आपकी प्रशसा मे कहने मे कोई भी हित नही कोई भी फायदा नही है। मैं तो कुछ बात जरूर कहना चाहूगा, जिसमे आपकी प्रशसा न हो—बल्कि महावीर की अन्तस्-चेतना को समझे तो आप सेल्फ-कडेम्ड हो जाए, आपको अपनी निंदा मालूम पड़े। क्योकि जब किसी महापुरुष के पास किसी व्यक्ति को आत्म-निंदा अनुभव होती है, तो उसके जीवन मे क्रान्ति शुरू होती है। महावीर की प्रशसा मे, अपनी प्रशसा से तो कोई क्रान्ति शुरू नही होती, हम और जड हो जाते हैं। लेकिन महापुरुष के सान्निध्य मे, उसके स्मरण मे—उसके चित्र के सामने अगर हमारा चित्र बिलकुल छोटा, दयनीय, दीन-हीन दिखाई पड़ने लगे, ऐसा प्रतीत हो कि मैं तो कुछ भी नही हू और मनुष्य इतना बड़ा भी हो सकता है—अगर एक मनुष्य के भीतर इतनी महानता घट सकती है तो मैं बैठा-बैठा कहाँ जीवन गँवा रहा हू? मेरे भीतर तो यह घटना घट सकती थी। महावीर एक-एक व्यक्ति के भीतर भी तो पैदा हो सकते हैं।

एक बीज वृक्ष बन सकता है, तो हर बीज के लिए चुनौती हो गई कि वह वृक्ष बनके दिखा दे। और अगर कोई बीज वृक्ष नही बन सकता, तो वृक्ष के सामने खड़ा होकर अपनी आत्म-निंदा अनुभव करे। अनुभव करे इस बात कि मैं व्यर्थ खो रहा हू, मैं भी वृक्ष हो सकता था और मेरे नीचे भी हजारो लोगो को छाया मिल सकती थी, मैं भी एक फलो से लदी हुई छाया का, विश्राम का स्थल बन सकता था, लेकिन मैं नही बन सका हू।

क्या महावीर के निकट पहुचकर आपको ऐसा लगता है कि जो महावीर के भीतर हो सका, वह आपके भीतर नहीं हो पा रहा है ? क्या आपको आत्म ग्लानि अनुभव होती है ? अगर होती है तो महावीर के जीवन से कुछ, महावीर की साधना से कुछ, महावीर की अन्तस्-चेतना से आपको कुछ किरणे मिल सकती है जो मार्गदर्शक हो जाए। लेकिन नही, इसकी हमे फुर्सत कहा है ? हम जय-जयकार मे अपनी आत्मग्लानि को छिपा लेते हैं, भुला देते है, भूल जाते हैं कि यह प्रश्न आत्म-चिंतन का था! यह महावीर के समक्ष स्वय को रखकर रिलेटिव, सापेक्ष रूप मे सोचने का था कि मैं कहा और यह व्यक्ति कहा ?

लेकिन नही, हम बहुत होशियार हैं! आदमी की जाति बहुत चालाक है। वह इतनी होशियारी से काम करती है कि बजाय इसके कि महापुरुष को, महावीर को या किसी और-को सामने रखकर अपने और उनके बीच तुलना कर सके! यह नही, अपने को तो भुला देती है उनकी प्रशसा मे, जय-जयकार मे, और फिर उन पर वे गुण आरोपित कर लेती है, जो उनके गुण नही होते, बल्कि हमारे भीतर के कुछ कारण होते है। जैसे जो आदमी भोजन करने का अति लोभी होगा, जो आदमी भोजन मे बहुत लोलुप होगा, ग्रीडी होगा, वह आदमी हमेशा उपवास करने वाले आदमी का आदर करेगा। जब कोई आदमी उपवास करने वाले व्यक्ति का आदर करता हो तो समझ लेना कि यह उपवास करने वाले व्यक्ति के आदर का इससे बहुत सम्बध नही है, इसमे बहुत सम्बध उस आदमी का है, जो भोजन करने मे बहुत लोभी और लालची है। उसके भोजन करने की जो अति वासना है, उसके कारण उपवासी आदमी इसको आदरणीय मालूम पडता है।

जो आदमी बहुत कामी है, कामुक है, उस आदमी को ब्रह्मचारी का जीवन बहुत आदृत मालूम पडेगा! जो आदमी हिंसक है, जो आदमीअत्यन्त दुष्ट और क्रूर और कठोर हैं, उस आदमी को अहिंसक का जीवन बहुत प्रभावित करता हुआ मालूम पडेगा! यह बडी अजीब बात है। यह बहुत अजीब बात है। जो आदमी

धन का बहुत पागल लोभी है, उसको त्यागी का जीवन बहुत प्रभावित करता हुआ मालूम पड़ेगा! लेकिन यह मनोवैज्ञानिक है। इसके पीछे कारण हैं। जो हम नहीं कर सकते, तो जो उसे करता है तो हम चकित हो जाते हैं। जो मैं नहीं कर सकता, जब कोई और करता है, तो मैं चकित हो जाऊं, यह स्वाभाविक है।

महावीर से जो लोग चकित हो गए हैं, वे महावीर से ठीक विपरीत लोग हैं। बुद्ध से जो आदमी चकित हो या है, वह बुद्ध से ठीक विपरीत आदमी है। क्राइस्ट से जो आदमी प्रभावित हो गया है, वह क्राइस्ट से ठीक विपरीत आदमी है। इसीलिए तो महापुरुष एक तरफ, अनुयायी बिलकुल उलटे सिद्ध होते हैं।

थोड़ा सोचें। महावीर तो कहते हैं अपरिग्रह, महावीर तो रुपया सोने को छोड़ देते हैं, नहीं मानते कि मेरा कोई धन है। लेकिन महावीर के अनुयायियों ने भारत मे जितना धन इकट्ठा किया, किसीने इकट्ठा किया? सीधी-सी बात है, लेकिन यह अजीब नहीं है, बहुत साइकोलॉजिकल है। बहुत कुछ कारण हैं इसके पीछे। इसके पीछे महावीर की कोई भूल नहीं है। महावीर के सर्व-धन-त्याग के कारण, जितने लोग धन के प्रति अति लोभी थे, वे सब महावीर के प्रति आकर्षित हो गये। वे जो नही कर सकते थे, महावीर वही कर रहे हैं।

जीसस क्राइस्ट कहते हैं प्रेम। सबको प्रेम। शत्रु को भी प्रेम। जो तुम्हारे गाल पर एक चाटा मारे, दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। और जो तुम्हारा कोट छीने, उसका कमीज भी दे देना, कही उसे कमीज की भी जरूरत न हो। और जो तुम्हे एक मील तक कहे कि मेरा बोझा ढोके ले चलो, तो दो मील तक ले जाना। जीसस क्राइस्ट तो यह कहते हैं, लेकिन क्रिस्चिअनस ने जितने जनता के गालो पर चाटे मारे हैं, और आदमियत के साथ जितनी हत्या और हिंसा की, धर्म के नाम पर जितने युद्ध लड़े, जितने निहत्ये लोगो को समाप्त किया, जितने लोगो को आग मे जलाया—लाखो की सख्या मे! बड़ी हैरानी की बात है।

जीसस क्राइस्ट कहते हैं कि मारे कोई चाटा तो दूसरा गाल भी कर देना, शत्रु को भी प्रेम करना। और अनुयायी सिवाय हत्या करने के कोई दूसरा काम नही करते! बात क्या है? यह प्रेम के संदेश देने वाले थे—आसपास वे लोग इकट्ठे हो गये, जिनके जीवन मे प्रेम बिलकुल नही था। वे आकर्षित हो गये। जो वे नही कर सकते थे, उस चीज के प्रति चकित हो गये।

यह बहुत अद्भुत बात है, यह बहुत कट्राडिक्टरी बात है। यह सारी दुनिया मे हुआ।

अगर महापुरुष का जीवन देखें और उनके आसपास अनुयायी देखें, तो ठीक उलटे अनुयायी उसके पास इकट्ठे पाएंगे। और ये उलटे अनुयायी उस महापुरुष की उन्हीं बातों की प्रशसा करेंगे, जिन बातों की उनमें कमी है। उस प्रशसा को बड़ी करते जाएंगे, बड़ी करते जाएंगे, आखिर वहां पहुंचा देंगे, एक्सट्रीम पर पहुंचा देंगे कि महापुरुष झूठा मालूम पड़ने लगेगा। उस सीमा तक बातों को खींच कर ले जाएंगे! इसमें महापुरुष का कसूर नहीं है, इसमें अनुयायी .. । और अनुयायी अपनी कमियों का सब्स्टीट्यूट कर रहा है, पूर्ण कर रहा है, महापुरुष को अपने भीतर जोड़ रहा है।

थोड़ा सोचें तो दिखायी पड़ेगा।

हिंदुस्तान में महावीर की, बुद्ध की शिक्षा त्याग की शिक्षा है, अस्वार्थ की शिक्षा है—भौतिकता से मोह छोड़ना है, पदार्थ से ऊपर उठना है। मैटिरियलइज्म से ऊपर उठना है। लेकिन अनुयायी जितने मैटिरियलिस्ट थे, देखकर हैरानी होती है। उन्होंने महावीर के मंदिर भी बनाए हैं तो सोने की मूर्तियां बना दी है! उस महावीर की जो बेचारा जीवन भर कह रहा है कि सोना मिट्टी है। उन्होंने महावीर पर धन की तिजोरियां इकट्ठी कर दी हैं—उस महावीर पर जो कह रहा है कि धन राख है, धन छोड़ दो, धन का कोई मूल्य नहीं। महावीर के उस मंदिर पर—जो महावीर हाथ में एक लकड़ी भी नहीं रखता, जो कहता है कि हाथ में लकड़ी भी रखना हिंसक होने का सबूत है, संभावित शत्रु की तैयारी है, हाथ में लकड़ी रखनी कायरता का सबूत है, क्योंकि जो भयभीत है, वह शस्त्र रखता है—जो महावीर हाथ में लकड़ी भी नहीं रखता, उसके मंदिर के सामने बंदूकधारी पहरेदार खड़ा हुआ है! आश्चर्य कि बातें हैं, मिरेकल है, चमत्कार है। यह क्या हो रहा है? और यही लोग महावीर की प्रशसा कर रहे हैं, गुणगान कर रहे हैं, तो हो गई महावीर की जिन्दगी ठीक। यह जो जिंदगी खड़ी करेंगे, वह झूठी होगी, फाल्स होगी। बिलकुल झूठ होगी, क्योंकि उनके द्वारा खड़ी होगी।

दुनिया भर के महापुरुषों के साथ ऐसा हुआ। एक के साथ किया होता, ऐसी बात नहीं। तो कोई यह न सोचे कि महावीर के साथ जो हुआ है, वह दूसरों के साथ नहीं हुआ, वह सबके साथ हुआ है। जो महावीर के लिए कह रहा हूं, वह केवल प्रतीक है। वह सबके साथ हुआ है।

तो हम जिंदगी को खड़ी कर लेते हैं, वह हमारी देखी गई जिंदगी है। महावीर की जिंदगी नहीं है, महावीर को जैसा हम देखते हैं। हम कैसा देखते हैं? हम उसी शक्ल को देखते हैं, जिसकी हमारे में कमी है। हम देखते हैं कि

मैं तो स्त्री को छोड़कर नहीं जा सकता, महावीर स्त्री को छोड़कर जा रहे हैं। मैं धन नहीं छोड़ सकता, महावीर धन छोड़ रहे हैं! मैं मकान नहीं छोड़ सकता, महावीर मकान छोड़ रहे हैं। मैं भूखा नहीं रह सकता, महावीर उपवास कर रहे हैं। हम एकदम चकित हो जाते हैं और हम कहते हैं. "धन्य है भगवान! तुम बड़े तपस्वी हो। तुम दुख को अंगीकार कर लेते हो। तुम सुख के त्यागी हो। तुम दुख को वरण करते हो। तुम तपस्वी हो, तुम तपश्चर्या में जाते हो, हम भोगी हैं, हम दीन-हीन हैं, हम पापी हैं, तुम पुण्यात्मा हो।" लेकिन चीज बदल गई हमारे देखने से ।

महावीर न तो त्यागी हैं, न तपस्वी हैं, न धन को छोड रहे हैं, न कुछ और छोड रहे हैं। महावीर के भीतर कुछ और घटित हो रहा है, उस और घटित को हम इस भांति देख रहे हैं! यह हमारा एटीट्यूड है, यह महावीर के जीवन की घटना नही है।

महावीर त्यागी नही हैं, महावीर ज्ञानी हैं।

इसको थोडा समझ ले तो उनकी जिंदगी के भीतर घुसना आसान हो जाएगा। ऐसे तीन सूत्रो पर मैं आपसे बात करना चाहूगा, जो उनके अन्तस्-जीवन मे प्रवेश करवा दे।

महावीर त्यागी नही, ज्ञानी है। लेकिन हम कहते हैं कि त्यागी हैं और हम जय-जयकार करते हैं कि महावीर-जैसा त्यागी नही हुआ! शायद आपको पता ही नही है कि त्याग सिर्फ अज्ञानी करते हैं, ज्ञानी कभी त्याग नही करता। क्यो ऐसा मैं कह रहा हू? घबडाहट होगी आपको, बेचैनी होगी कि मैं क्यो ऐसा कह रहा हू? मैं इसलिए ऐसा कह रहा हू कि ज्ञानी को तो व्यर्थ दिखाई पड जाता है ससार। जो व्यर्थ है, उसे छोडना नही पडता, वह छूट जाता है। अज्ञानी को छोडना पडता है, उसे व्यर्थ दिखाई नही पडता, वह कोशिश कर-करके छोड़ता है।

महावीर छोडते नही, छूट जाता है।

ज्ञान मे त्याग अपने-आप आ जाता है—छाया की तरह, अज्ञान मे त्याग लाना पडता है।

अज्ञान के जीवन में त्याग है झाड से कच्चे पत्ते तोडने जैसा, जबरदस्ती पत्ते तोडे जाते हैं। पत्ता पीडित होता है, शाखा पीडित होती है, घाव छूट जाता है पीछे, वृक्ष के प्राण पर चोट लगती है। और त्याग ज्ञानी का छूटने वाला है, छोडने वाला नही है। वह सूखे पत्ते की भांति वृक्ष से गिर जाता है, न वृक्ष को

खबर लगती कि कब पत्ता गिर गया, न पत्ते को पता चलता कि कहीं से टूट गया हूँ, न कहीं दुनिया में कोई खबर आती—चुपचाप, मौन, कोई हवा का एक झोंका और पत्ता चुपचाप नीचे बैठ जाता है।

महावीर ज्ञानी हैं, लेकिन हमें त्यागी दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हम भोगी हैं। वह जो हमारा भोग है, उस भोग के कारण हमें त्याग दिखाई पड़ता है, महावीर का ज्ञान दिखाई नहीं पड़ता। महावीर छोड़ नहीं रहे हैं, महावीर को चीजें व्यर्थ दिखाई पड़ गईं। और जो व्यर्थ दिखाई पड़ जाती हैं, उसको छोड़ना पड़ता है?

एक रात एक जगल से दो सन्यासी निकल रहे थे एक वृद्ध सन्यासी है, युवा सन्यासी उसके साथ पीछे है। वृद्ध एक झोला लटकाये हुए है कधे पर, छाती से दबाके पकड़े हुए है झोले को। रात पड़ने लगी, अधेरा उतरने लगा। उसने पूछा युवा सन्यासी से, कोई भय तो नहीं है? जगल खतरनाक मालूम होता है, रास्ता बीहड़ मालूम होता है—कोई खतरा तो नहीं है?

युवा सन्यासी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि सन्यासी को खतरा कैसा? खतरा होता है उनको, जो सन्यासी नहीं हैं। सन्यासी को खतरा कैसा! सन्यासी को भय कैसा! सन्यासी के पास क्या है, जिसे कोई छीन लेगा? सन्यासी के पास क्या है, जिसे कोई मिटा देगा? सन्यासी के पास क्या है, जिसके लिए वह चिन्तित हो, असुरक्षित अनुभव करे? वह कुछ चिन्तित हुआ, हैरान हुआ। फिर आज तक इस बूढ़े सन्यासी ने कभी नहीं पूछा, बड़े घने जगलो से गुजरना पड़ा, अधेरी रातो मे रुकना पड़ा—बीहड़ रास्ते थे, निर्जन मार्ग थे, यह कभी नहीं पूछा कि खतरा तो नहीं है कोई, आज क्या हो गया?

थोड़ी दूर और, फिर उस वृद्ध सन्यासी ने पूछा कि रात बढ़ती जाती है, गाव पता नहीं कितनी दूर है, ढोर भी दिखाई नहीं पड़ते—कोई खतरा तो नहीं है?

फिर वे एक कुए पर रुके। वृद्ध सन्यासी ने झोला दिया युवा सन्यासी को और कहा, मैं हाथ-मुह धो लू, झोला सभालकर रखना। तब युवा सन्यासी को लगा कि खतरा जरुर झोले के भीतर होना चाहिए। उसने झोले के भीतर हाथ डाला—बूढ़ा तो पानी खीचने लगा कुए से, उसने झोले के भीतर हाथ डाला तो देखा कि सोने की एक ईंट है। समझ गया कि खतरा कहा है। उसमे से ईंट निकालकर बाहर फेंक दी, एक पत्थर की ईंट उठाकर झोले के भीतर रख दी। बूढ़े सन्यासी ने जल्दी से पानी-वानी पिया, जल्दी से आके झोला लिया—ठीक से पानी भी नहीं पी पाया बेचारा!

कब कौन पी पाता है, जिसके पास सोने की ईंटें होती हैं? कोई पी पाता है पानी ठीक से ? और अगर कोई किसी को ठीक से पानी पीते देख ले, तो वे कहेंगे कि महान् अद्भुत आदमी है, यह बडा महापुरुष है—शाति से पानी पी रहा है, शाति से खाना खा रहा है, शान्ति से सो रहा है! ये साधारण-सी बातें महापुरुष जैसी मालूम होने लगती हैं, जोकि हरेक आदमी मे होनी चाहिए। क्योंकि हम बिलकुल विक्षिप्त और पागल हैं, इस पागलपन की वजह से थोडी-सी भी शाति बहुत मालूम होती है।

उसने जल्दी से झोला लिया, कधे पर टाग लिया, फिर छाती से लगा लिया, फिर चलने लगा। उस बेचारे को पता भी नही है कि अब वह जो छाती से लगाए हुए हैं, वह एक पत्थर की ईंट है!

किसको पता है कि आप जिसको छाती से लगाए हुए हैं, वह सोने की है या पत्थर की है? जो जानते हैं, वे कहते हैं पत्थर की, जो नही जानते, वे कहते है साने की।

फिर वह आगे बढ गया। फिर पूछने लगा। रात और बढ गयी है खतरा और बढ गया। उसने पूछा, कोई खतरा तो नही है? उस युवा ने कहा, अब आप बेफिक्र हो जाये, खतरे का मैं पीछे फेंक आया हू।

वह तो घबडा गया। जल्दी से झोले मे हाथ डाला, ईंट निकाली, पत्थर की ईंट थी! एक क्षण का सन्नाटा हो गया उस जगल मे। फिर वह वृद्ध हसने लगा। ईंट निकालकर उसने बाहर फेक दी। फिर कहने लगा कि 'अब यही सो जाए, अब गाव तक जाने की क्या जरूरत? फिर वे वही सो गये। फिर सुबह जब वे उठे तो उस युवा ने पूछा, आप महान त्यागी है, आपने ईंट निकालकर झोले से बिलकुल बाहर फेक दी? अपने महान त्याग किया! वह कहने लगा, त्याग कहा पागल! जब ईंट दिखाई पड गई कि पत्थर है, तो त्याग क्या? छूट गई व्यर्थ हो गई। त्याग तो उसका करना होता है, जो स्वर्ण की मालूम पडती है।

महावीर ने जो छोडा है, वह मिट्टी दिखाई पडने लगा है। उसका कोई त्याग नही किया गया है—छूट गया, जैसे मिट्टी छूट जाती है। लेकिन भक्तगण चिल्ला रहे हैं हे महात्यागी! हे दीर्घ तपस्वी, हे महापुरुष, तुम धन्य हो! तुमने कितना-कितना छोड़ा! और महावीर हसते होगे कि यह क्या पागलपन है मैंने तो छोडा नही है! और अढाई हजार साल से चिल्ला रहे है कि हे महान तपस्वी! हे त्यागी! हे महापुरुष! तुमने कितना छोडा!

यह भोगियो की वृत्ति है, यह त्यागियों का जीवन नहीं है। महावीर का अन्तस्-जीवन ज्ञान का है, लेकिन बाहर से जो जीवन हमें दिखाई पड़ता है, वह त्याग का दिखाई पड़ता है। और त्याग और ज्ञान में जमीन-आसमान का भेद है।

और इसका परिणाम क्या होता है ?

इसका परिणाम—केवल महावीर की जिंदगी गलत हम लिखते तो क्या हर्जा था, लिख ले। गलत। खतरा यह होता है कि गलत जिंदगी का अनुकरण करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं। वे त्याग करना शुरू कर देते हैं और जिंदगी उनकी नष्ट हो जाती है।

जिंदगी आधार है ज्ञान; और ज्ञान से जो त्याग आ जाय, वह है सहज फल।

लेकिन इस गलत कथा और जीवन के नाम पर पढ़ने वाले त्याग शुरू कर देते हैं! और त्याग से जो शुरू करता है, वह ज्ञान पर तो कभी पहुचता नही, जीवन भर दुःख मे और पीडा मे जीता है, क्योंकि सोने की ईंट छोड़ता है। सोच सकते हैं आप सोने की ईंट ? सम्हालना भी खतरा है, दुःख है, पीडा है—छोड़ना भी दुख और पीड़ा है, क्योंकि माना दिखाई पड़ता रहता है। 'सोना छोड़ दिया मैंने—कही भूल तो नही हो गई, कही हैरानी तो नही हो गई।'

मुझे सन्यासी मिलते हैं। सबके सामने तो आत्मा-परमात्मा की बात करते है, और जब एकान्त मे मिलते हैं, तो कहते है, बडा भय मालूम होता है, बड़ी शका मालूम होती है—कहीं हमने सब छोड़के गलती तो नही कर ली ? हम बिलकुल अंधेरे मे जा रहे हैं। पता नही, कहीं ऐसा न हो कि जो भोग रहे हैं, वही ठीक हैं।

एकान्त मे उनके मन मे यह सदेह, यह डाउट खड़ा रहता है हमेशा कि हम छोड़ आये है! सारा जगत भोग रहा है, हम छोड़ आये हैं। कही हमने भूल तो नही कर ली ? हम तो बिलकुल अधेरे रास्ते पर चल रहे हैं। हाथ की रोटी छोड़ रहे हैं, मोक्ष की रोटी का विचार कर रहे हैं!

पता हो, न हो, लेकिन महावीर को ऐसी शका नही है उनके प्राणो मे। वे किसी रोटी के लिए नही छोड रहे है। वे किसी चीज को इसलिए छोड़ रहे हैं कि कुछ मिल गया है।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना।

एक आदमी छोड़ता है कोई चीज—अपने हाथ से पत्थर छोड़ देता है इस आशा मे कि कल हीरे मिलेंगे तो हाथ भर लूगा । इसकी पीड़ा आप नहीं समझ सकते । हीरे अभी मिले नहीं हैं और जो पास मे था—रंगीन पत्थर ही सही, पर अभी हीरे मालूम होते थे । लेकिन लोग कहते थे कि रंगीन पत्थर हैं, शास्त्र कहते थे कि रंगीन पत्थर हैं, गुरु-सन्यासी समझाते थे कि रंगीन पत्थर हैं, छोड़ दो—समझ-बूझ कर, लोगो की बात सुनकर उसने छोड़ दिये रंगीन पत्थर, जो उसको हीरे मालूम होते थे, इस आशा मे कि हीरे मिलेंगे । और अब हीरे मिले नहीं, हाथ खाली हो गए हैं, प्राण छटपटा रहे हैं । खाली हाथ मे प्राण बहुत छटपटाते हैं, पत्थर भी रखे रहे तो भी राहत मिलती है—कुछ तो है, पास कुछ तो है ।

महावीर ने कुछ पाने के लिए नही छोड़ा । महावीर की हालत उस आदमी की हालत है, जिसके सामने हीरो की खदान आ गई है और अब पत्थर इसलिए छोड़ रहा है कि अब पत्थर रखने का कोई प्रयोजन नही रह गया है, अब हीरे रखने का मौका सामने आ गया है । हीरे मिल गये है, इसलिए पत्थर छोड़े जा रहे है । जिस आदमी को हीरे मिल जाए—अगर वह घर मे से पत्थर निकालकर बाहर फेंक दे और हीरो से कोठरी भर ले, आप उसे त्यागी कहेंगे? कहेंगे त्यागी उसको?

मेरे घर मे बहुत कबाड़ भरा है, फर्नीचर है, फला है, ढिका है, सब इकट्ठा है । कल हीरे की खदान मिल जाए, हर फर्नीचर-बर्नीचर, सब बाहर निकाल दूंगा, हीरे भर लूगा, आप सब मिलकर मुझे महा-तपस्वी कहेंगे ? कि ये महान तपस्वी है, इन्होने घर का कूड़ा-कचरा सब घर से बाहर कर दिया ? कोई मुझे महा-तपस्वी नही कहेगा ।

महावीर को भी महा-तपस्वी मत कहिये, महा-ज्ञानी कहिये ।

ज्ञान से त्याग फलित होता है ।

ज्ञान का त्याग सहज फल है, त्याग से ज्ञान कभी नही मिलता । ज्ञान से त्याग मिल जाता है, लेकिन त्याग से ज्ञान कभी नही मिलता ।

पच्चीस सौ साल से महावीर के पीछे चलने वाला इसी मुसीबत मे उलझा है, वह त्याग करके ज्ञान पाने की कोशिश कर रहा है ! और महावीर के जीवन में जो घटना घटी है, वह ज्ञान से त्याग की है । यह बिलकुल रिवर्स है, बिलकुल उलटी जंजीर पकड़ जाती है और तब सारी-की-सारी दृष्टि भ्रान्त हो जाती है । फिर हमारे हाथ मे एक ही गुणगान रह जाता है करने को । जब हम त्याग भी करते हैं और आनन्द नही मिलता, ज्ञान नही मिलता—तो हम सोचते है कि

पिछले जन्मो का कोई कर्म बाधा दे रहा है, या हमारा त्याग पूरा नहीं है, या हमारे मन मे वासना शेष रह गई है। और फिर कोई यह एक-दो दिन का काम तो नहीं है, जिंदगी—जिन्दगी लगती है, अनेक जन्म लगते हैं, तब कहीं यह हो पाएगा। यह कोई छोटी बात थोडी है। फिर हम ऐसा कन्सोलेशन, ऐसी बातें ढूढ-ढूढके मन को समझाते हैं, सान्त्वना देते हैं। लेकिन ये सान्त्वनाए खतरनाक हैं। सच्चाई उलटी है। ज्ञान को खोजिए, ज्ञान मिल सकता है, क्योंकि ज्ञान आपके प्राणो मे छिपा हुआ दिया है, जिसे कहीं लेने नहीं जाना।

महावीर का यही अनुभव——महावीर का यही केन्द्रीय अनुभव है कि ज्ञान मनुष्य का स्वभाव है, ज्ञान मनुष्य की आत्मा का धर्म है, ज्ञान मनुष्य की आत्मा ही है। इस ज्ञान को खोजने कहीं जाना नहीं है, ज्ञान भीतर है। भीतर की तरफ मुडते ही, शात होते ही, शून्य होते ही, मौन होते ही, ज्ञान की किरणें मिलनी शुरू हो जाती हैं।

लेकिन, भीतर दो तरह के आदमी नहीं मुड पाते। एक तो वे नहीं मुड पाते, जो बाहर की दुनिया मे धन इकट्ठा करते है, बाहर की दुनिया मे मकान बनाते हैं, बाहर की दुनिया मे यश कमाते हैं। वे लोग भीतर की तरफ कैसे मुडें? मन बाहर की तरफ लगा है। दूसरे वे लोग नहीं मुड पाते और इसे ठीक से सुन लेना, क्योंकि पहली बात सुनी हुई होगी, दूसरी बात विचारणीय है—दूसरे वे लोग नहीं मुड पाते, जो बाहर के त्याग मे पडे रहते है—धन छोडो, मकान छोडो, स्त्री छोडो, यह छोडो, वह छोडो—इनकी दृष्टि भी बाहर है। इकट्ठा करने वाले की दृष्टि भी बाहर है, छोडने वाले की दृष्टि भी बाहर है, क्योंकि दोनो का आब्जेक्ट बाहर है। तो, न तो भोगी भीतर जा पाता है और न त्यागी भीतर जा पाता है।

भोगी भी बाहर भटकता है, त्यागी भी बाहर भटकता है।

भोगी सुख को खोजता है, त्यागी दुख को खोजता है। त्यागी कोशिश करता है कि जितना दुख . । भोगी एक तख्त खरीद लाता है, फिर कहता है कि तख्त बहुत गडबड है, गडता है, रात सोते नहीं बनता। फिर एक अच्छी गद्दी खरीद लाता है, फिर एक और गद्दी, एक और गद्दी—गद्दी पर गद्दी बढाता जाता है। यह भोगी की दशा है।

त्यागी एक गद्दी कम कर देता है। सोचता है, एक गद्दी कम करने से मोक्ष मिलेगा! फिर दूसरी गद्दी कम कर देता है, फिर तीसरी गद्दी कम कर देता है।

फिर सोचता है कि तख्त अकेला ठीक है, इससे जरूर मोक्ष मिलेगा ! फिर तख्त भी अलग कर देता है। फिर सोचता है कि फर्श पर सो जाना सबसे ठीक है, इससे तो मोक्ष बिल्कुल निश्चित है !

दोनों पागल हैं—न तो गद्दी इकट्ठी करने से मोक्ष मिलता है, न गद्दी छोडने से मोक्ष मिलता है। गद्दी से मोक्ष का क्या संबध ? इररिलेवेंट है, कोई सम्बन्ध ही नही है। और अगर भगवान के पास पहुचें और कहे मैंने तीन गद्दिया छोडी, मोक्ष का दरवाजा खोलिये, तो वह भी कहेगा कि तुम पागल हो गये हो! तीन गद्दिया छोडने से सिनेमा का दरवाजा भी नहीं खुलता है, मोक्ष का दरवाजा खुलवा लेना बहुत मुश्किल है। इतना आसान नहीं है, इतना सस्ता नहीं है कि आपने तीन गद्दिया छोड दीं, आपने घी लगाना रोटी पर छोड दिया, आप सिर घुटाने लगे, आप नगे खडे हो गये।

आप जो भी कर रहे है, उस करने का सारा आब्जेक्ट बाहर है, सारी दृष्टि बाहर है। भीतर वह पहुचता है, जो बाहर छोडने और पकडने दोनो से मुक्त हो जाता है।

इसलिए महावीर को त्यागी मत कहे। महावीर रागी नही हैं, महावीर त्यागी नही हैं, महावीर वीतराग है। वीतराग का मतलब दोनो से भिन्न है—न त्याग, न राग। न राग, न विराग, न तो बाहर की पकड, न छोडने का आग्रह। एक तीसरा कोण वीतराग—न मैं बाहर पकडता हू, न मैं बाहर छोडता हू। क्योंकि मैं हू भीतर। और जो भीतर है, मैं उसे जानने चलता हू—बाहर की तरफ से बाहर हटता हू। इसलिए महावीर हैं वीतराग। मत कहे विरागी, मत कहे त्यागी।

वीतरागता मे ज्ञान फलित होता है।

भीतर जो जाता है, वह ज्ञान के दर्शन को उपलब्ध होता है।

यह तो उनके अन्तस्-जीवन की कथा है। महावीर का असली जीवन—उनकी आत्मा के जीवन का पहला सूत्र है कि महावीर ज्ञान के खोजी हैं, त्याग के नही।

दूसरा सूत्र।

हमें यही दिखाई पड़ता है, जैसा मैंने कहा, भोगी सुख खोजता है, त्यागी दुख खोजता है। और त्यागियो ने ऐसे-ऐसे दुख खोजे हैं कि अगर हिसाब लगाएंगे आप, तो आप पाएगे कि वे भोगियो से ज्यादा इन्वैटिव, ज्यादा अविष्कारक

हैं। भोगियों ने इतने अविष्कार नहीं किये। त्यागियों ने ऐसे-ऐसे अविष्कार किये हैं कि अगर उनकी सारी कथा बतायी जाए तो प्राण रोमांचित हो जाए कि यह क्या किया! आंखे फोडनेवाले त्यागी हुए हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि आंखो से वासना का जन्म हो जाता है! पागल हो गए हैं, जैसे अन्धों को वासना का जन्म न होता हो। आंख से क्या मतलब है? लेकिन वे कहते हैं, आंख से दिखाई पड़ते हैं रूप, और चित्त आकर्षित होता है। जैसे कि सपनो मे रूप नहीं देखे जा सकते। आंखे फोड ली, हाथ-पैर काट डाले हैं, जननेन्द्रियाँ काट डाली हैं, पैरो में खीले ठोक ली हैं, कमर मे खीलें ठोक लिये हैं, रेत पर, जलती रेत पर पडे रहे हैं; काटे बिछाकर लेटे रहे हैं, शरीर को कोडे मारते रहे हैं!

कोडे मारनेवालो का एक सम्प्रदाय ही था पूरे योरूप मे। वह कोडे मारनेवालो का ही सम्प्रदाय कहलाता था। उसका साधू यह करता था कि सुबह से उठकर कोडे मारना शुरू करता था नगी देह पर, लहुलुहान हो जाता था। जो साधू जितने ज्यादा कोडे मार लेता, वह साधु गुरु हो जाता, बाकी साधू चेले हो जाते—जैसे कि जो साधू ज्यादा उपवास कर ले, वह आचार्य हो जाता है, बाकी चेले हो जाते हैं! अखबार मे खबर छापते हैं कि फला साधू ने इतने उपवास किये—इतने उपवास किये, इतने उपवास किये, वैसे ही उनके अखबारो मे खबर छपती थी कि फलाने साधू ने अब तक कलाइमेक्स पा ली है, अब तक आखिरी कोटि पा ली है, इतने कोडे मार लेता है। सुबह से लहुलुहान कर लेते शरीर, लोग दर्शन करने आते। लोग दर्शन करने आते और कहते है कि महा-तपस्वी है। इन्वैंटिव थे बहुत। खूब खोजी हैं तरकीबे दुख पाने की।

लेकिन, महावीर दुखवादी नहीं हैं। महावीर दुख की खोज मे नहीं है। और सीक्रेट को, इस रहस्य को थोडा ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि हमे ऐसा दिखाई पडता है कि महावीर दुख खोज रहे हैं।

क्योंकि हम सुख के खोजी हैं, जैसा मैंने आपसे पहले कहा। सुख के खोजी को दिखाई पडता है कि हम तो गद्दी ला रहे है घर की तरफ, और एक आदमी गद्दी छोडकर बाहर जा रहा है! हम सोचते हैं, यह बेचारा बडा दुख खोज रहा है। लेकिन यह भी हो सकता है कि एक स्वस्थ शरीर का गद्दी सुख न दे। गद्दी के लिए—बीमार शरीर चाहिए सुख पाने के लिए गद्दी मे। स्वस्थ शरीर के लिए गद्दी जैसी चीज सुख देने का कारण नहीं रह जाती। स्वस्थ शरीर के लिए सुख मिलता है गहरी निद्रा से, गहरे वस्त्रो से नहीं। गहरे वस्त्रो का सुख वह खोजता है, जिसने गहरी निद्रा खो दी है। जब गहरी निद्रा नहीं रह जाती, तो

सब्स्टीट्यूट खोजना पड़ता है—तो गहरे वस्त्र खोजते है हम, बड़ी गद्दी करते चले जाते हैं।

स्वस्थ आदमी को भूख से आनंद मिलता है, बीमार आदमी को भोजन से। इन दोनो में फर्क समझ लेना। स्वस्थ आदमी को भूख लगती है—आनद मिलता है भूख के कारण, जो भी खाता है, रसपूर्ण हो जाता है, स्वादपूर्ण हो जाता है। बीमार आदमी को भूख तो होती नही, स्वाद तो भोजन में आ नहीं सकता, तो फिर नमक मिर्च-मसाले खोजता है। और उनके द्वारा स्वाद पैदा करने की कोशिश करता है। तो जब कोई स्वस्थ आदमी रूखी रोटी खाकर आनंदित दिखता है, तो नमक-मिर्च वाला आदमी सोचता है कि बेचारा कितना दुख झेल रहा है। उसे पता नही कि मूर्ख ! दुख तू झेल रहा है। वह आदमी सुख पूरा उठा रहा है। हमारी सारी दृष्टि ।

महावीर त्याग रहे हैं ज्ञान के कारण। और महावीर जो जीवन जी रहे हैं, उसमे कोई दुख नही है। महावीर इतने नासमझ नही है कि दुख का जीवन जीये, वे परम-आनन्द का जीवन जी रहे है। उन्हे नग्न खडे होने मे आनन्द आ रहा होगा।

और आप जानते है कि अगर बच्चो की आदत न बिगाडी जाए तो बच्चे बामुश्किल कपडे पहनने को राजी होते हैं। कपडे पहनना फोर्सड हैबिट है, आदमी के ऊपर जबरदस्ती थोपी गई आदत है। नग्न होने का अपना आनन्द है और मजा है। छोटे बच्चे इन्कार करते है कि कपडे मत पहनाओ भागते हैं, लेकिन मा-बाप बडे प्रेमवश कपडे पहनाते है कि जल्दी पहनो कपडे !

दुनिया अगर अच्छी आयेगी तो नग्नता सहज स्वीकृत हो जाएगी। लोगो को जरूरत होगी तो कभी कपडे पहन लेंगे। कोई बहुत सर्दी है, तो कपडे डाल लेगा। वर्षा चल रही है तो कपडे पहन लेगा, ऐसे नग्न रहेगा। नग्न रहने के लिए आदमी पैदा हुआ है। नग्नता के लिए उसका शरीर बना है। महावीर इसी आनन्द के अनुभव मे नग्न हो गए है। भक्तगण कह रहे है कि महान त्याग किया, बडा दुख झेल रहे है ! पागल है हम। महावीर नग्न होकर दुख नही झेल रहे हैं।

कोई ज्ञानी कभी दुख झेलता नहीं—दुख झेलना अज्ञान का लक्षण है।

ज्ञानी निरतर आनन्द से आनन्द मे प्रतिष्ठित होता चला जाता है।

महावीर की चर्या आनन्द की चर्या है, दुख की नही।

लेकिन हजारो साल से यह गुणगाथा कही जा रही है कि महावीर दुख झेल रहे हैं, दुख झेल रहे हैं ! क्यो ? क्योकि हम दुख के खोजी है, इसलिए हमको दुख दिखाई पडता है। हमे पता ही नही कि महावीर किस आनन्द मे प्रतिष्ठित हो रहे हैं, वे कहां जा रहे हैं, उन्हे क्या मिल गया है !

महावीर की सारी चर्या सहज है। उसमे कोई त्याग-व्याग नही है, उसमे कोई दुख नही है, उसमे आनन्द ही आनन्द है। यह तो उनका अन्तस्-सूत्र है। बाहर से जो दुख दिखाई पडता है, भीतर उसका आनन्द है।

एक पहाड पर एक सन्यासी चला जा रहा है। घनी धूप है। तेज सूरज आग बरसाता है। पसीने से लथपथ है सन्यासी। कन्धे पर बोझा रखे हुए है अपनी किताबें, अपने कपडे-लत्ते, अपना बिस्तर। माथे से पसीना पोछता है—दूर है मार्ग अभी, थक गया है बहुत। और तभी रास्ते पर एक पहाडी लडकी भी चढ रही है। चौदह-पन्द्रह साल की लडकी है। अपने कन्धे पर एक मोटे-ताजे बच्चे को लिये है। पसीने से लथपथ है। हाफ रही है। सन्यासी को दया आ गई।

हालाकि सन्यासियो को दया जरा मुश्किल से आती है, क्योकि जो अपने प्रति ही दयापूर्ण नही है, वे किसके प्रति दयापूर्ण हो सकेगे ? जो खुद को ही दुख देने की कोशिश मे लगे है, वे किसके दुख से प्रभावित होगे ? बेचारा गडबड सन्यासी रहा होगा। कभी-कभी गडबड सन्यासी पैदा हो जाते है—जैसे महावीर। ये बोनाफाइड सन्यासी नही है। ये ठीक, रजिस्टर्ड सन्यासी नही हैं महावीर। ये असली सन्यासी, जिसको हम जानते है सन्यासी, वैसे नही है। ये कुछ गडबड हैं, स्ट्रैंजर हैं, अजनबी हैं, इस सन्यास की दुनिया मे। वैसा कोई अजनबी सन्यासी वह रहा होगा।

उसको दया आ गई। उसने उस लडकी के कधे पर हाथ रखा और कहा, बेटा, बहुत बोझ मालूम पड रहा होगा तुझे ? उस लडकी ने नीचे से ऊपर तक सन्यासी को गौर से देखा और कहा, आश्चर्य, क्या कहते हे आप स्वामी जी ! बोझ आप लिये हुए हे, यह तो मेरा छोटा भाई है।

उस लडकी ने कहा, बोझ आप लिये हुए हैं, यह तो मेरा छोटा भाई है। आप कहते क्या हैं ! सन्यासी सोच रहा था, मैं कष्ट उठा रहा हूं बोझ ढोकर, और वह लडकी भी कष्ट उठा रही होगी। उसे पता नहीं कि वह अपने छोटे भाई को लिए हुए है। जहां प्रेम है, वहां कष्ट कहा। वहा आनन्द है। छोटे

चाई को ढो रही है, यह उसका आनन्द है, यह ढोना नही है। यह प्रेम का कृत्य है, यह एक्ट आफ लव है।

महावीर जो कुछ कर रहे हैं, यह दुख नही है, ये सब आनन्द के कृत्य हैं। यह सारा जीवन अपना है। यह सब अपना है। इस सुन्दर जीवन के लिए, वे इस सारे जीवन की पीड़ा, इस सारे जीवन के दुख को दूर करने को आतुर हैं। यह उनके प्राणो की प्यास है, उनकी करुणा है। वे कोई दुख नही झेल रहे है। यह उनका आनन्द है। यह उनकी खुशी है। यह उनके जीवन का गीत है। यह उनका संगीत है।

लेकिन लोग उन्हें ऐसा नही समझ पाते! यह उन्हे दिखाई नही पडता! हम तो अपने कैटेगरीज मे, हमारे अपने तोलने के ढाचे मे, अपने तराजू मे——उन्ही तराजू को लेकर पहुच जाते है महावीर को तोलने! हमें यह सोचते नही कि दुकान पर तोलने का तराजू महावीर को तोलने के काम नही आ सकता। और इसी तरह तोल-तोल कर हमने जो जीवन लिख लिया है, वह जीवन सब झूठा और फाल्स है। उसका कोई मूल्य नही है। मूल्य है महावीर की अतस् घटना का, आनन्द का, दुख का नही। आनन्द घटित हुआ है महावीर के जीवन मे।

लेकिन आप जरा देखे। आप जरा सोचे। हमने अपने सब महापुरुषो की तस्वीरें——आखें, चेहरे, ऐसे बनाये हैं कि उनमे कही आनन्द का भाव मालूम नही पडता! आपने कभी ख्याल किया? क्रिस्चिअन कहते हैं, "जीसस क्राइस्ट नेवर लाफ्ड!" ईसाई कहते है कि जीसस क्राइस्ट कभी हसे ही नहीं! सोच सकते हैं कभी? अगर जीसस क्राइस्ट नही हसे तो दुनिया मे कौन हसा होगा! कौन बचा होगा दुनिया मे, अगर जीसस क्राइस्ट नही हसे। लेकिन क्यो क्रिस्चिअनस् ऐसा कहते हैं? क्या बात है? वे सोचते हैं, जो हसता है, वह महापुरुष नही रह जाता, सामान्य आदमी हो जाता है। सामान्य आदमी हसते हैं। वे यह नही सोच पाते कि सामान्य आदमी की हसी और है, महापुरुष की हसी और है। और सच मे सामान्य आदमी झूठा हसता है। उसकी हसी झूठी है। भीतर रोता रहता है, बाहर हसता है।

आप कभी सच मे हसे है?

अगर जिन्दगी मे एक बार आपने सच मे हस लिया हो, तो आपको धर्म का रहस्य पता चल जाएगा। बडी अजीब बात कह रहा हू आपसे। अगर आपने जिन्दगी मे एक बार सच मे हस लिया हो, तो आपको सामायिक का अनुभव हो

जाएगा, ध्यान का अनुभव हो जाएगा। लेकिन हम कभी हंसे ही नहीं—भीतर रोते हैं, बाहर हंसते हैं! क्यो हसते है बाहर? ताकि भीतर के रोने को छिपाए रखें, किसी को पता न चल जाय।

जितना दुखी आदमी होता है, उतना हंसता मालूम होता है।

दुःख को छिपाने की तरकीब है यह। आमोद-प्रमोद मे कौन जाता है? मनोरजन करने कौन जाता है गाव के बाहर? सिनेमा मे, मनोरजनगृह मे कौन प्रवेश करता है? जो दुखी है। दुनिया जितनी दुखी होती जाती है, उतने ही मनोरजन के साधन ईजाद करने पड रहे हैं, क्योंकि दुखी आदमी को दुख भुलाने की जरूरत है, कि कही भूले।

एक आदमी दुखी होता है। लोग कहते हैं, चलो ताश खेले भाई, चलो गपशप करे, रेडियो सुने, कुछ गपशप करें, कुछ हसे। कुछ बातचीत करते हैं, ताकि वे हसी मे भूल जाए दुख को।

हमारी हसी एस्केप है, भुलाती है।

लेकिन इस डर से कि कही हमारी हसी के कारण महापुरुष छोटा न हो जाए, हम महापुरुष मे हसी ही पोछ देते हैं, मिटा देते है, समाप्त कर देते है—महापुरुष हसते ही नही! उसकी मूर्ति बना देते है गुरु-गम्भीर। वह बच्चो-जैसा सहज नही मालूम पडता, वह बनावटी, बैठा हुआ भोदू मालूम पडने लगता है।

महावीर रहे होगे बच्चे-जैसे सहज, क्योकि एक नये जीवन के सत्य को जानने वाला बच्चे-जैसा सरल हो जाता है। लेकिन क्या हमारी बनाई हुई तस्वीर से वे बच्चे-जैसे सरल मालूम होते है? नही, हमारी तस्वीर मे तो वे बडे जटिल, बडे सधे हुए मालूम होते है। हमारी मूर्ति मे तो—वह हमारी बनाई हुई मूर्ति है, बिलकुल सधे हुए मालूम पडते है, बिलकुल तैयार मालूम पडते है, सरलता नही दिखाई पड़ती, बच्चे-जैसा भाव नही दिखाई पडता, वे बच्चे-जैसे हसते हुए नही मालूम पडते। हसे होगे जरूर, क्योकि अगर महावीर बच्चो जैसे नही हस सकते तो कौन हसेगा? अगर इतनी इनोसेन्स, अगर इतनी निर्दोषता उस आदमी मे नही आ सकती—और मैं मानता हू कि जरूर आयी होगी, क्योकि महावीर नग्न हो गए बच्चो-जैसे, खडे हो गए सरल, सहज, स्पान्टेनिअस। हसे होगे, खूब हसे होगे। लेकिन हमारा भय—हमारा भय ।

मैं एक घर मे ठहरा हुआ था। घर के लोग मुझसे अपरिचित थे। साझ हम बैठे थे। घर के दो-चार बच्चे थे, पत्नी थी, पति थे, गपशप होती थी, मैं

खूब हंस रहा था, तभी घर के वृद्धजन ने बाहर से आकर कहा, हसिये मत, दो-चार लोग आ रहे हैं। लेकिन मैंने कहा, क्या बात है? उन्होंने कहा, वे क्या कहेंगे कि आप और हसते है? वे आपको एक महान सन्यासी समझ कर दर्शन करने आ रहे हैं। मैंने कहा, हद हो गई। जब तुम जिन्दा आदमी को कह सकते हो कि मत हसो, तो तुमने मर गये तीर्थंकरो और महावीरों के साथ क्या किया होगा, कहना बहुत मुश्किल है। क्योकि अब तो वे बेचारे इन्कार भी नही कर सकते कि नही, हम हसेंगे।

हमने ढाल ली है तस्वीर। सरलता को हमने जटिल ढांचे मे खडा कर दिया है।

महावीर का तीसरा सूत्र और अन्तिम बात मैं आपसे कहू। पहली बात मैंने कही त्याग नही, ज्ञान, दुख नही, आनद। और तीसरी बात आपसे कहना चाहता हू—सधा हुआ, साधना का व्यक्तित्व नही, सहज, सरल, जल की भांति तरल। सधा हुआ, कल्टीवेटिड, एक और तरह का आदमी होता है, जो कल्टीवेट करता है, जो एक-एक चीज को साध लेता है—बोलने को, उठने को, बैठने को, आने को, कपडे को, सब चीज को साध कर बैठ जाता है—उसको हम साधक कहते है।

महावीर साधक नही है, महावीर सरल है।

सरल साधक कैसे हो सकता है?

साधक का मतलब है फोर्सड्, जो एक-एक चीज को नियत्रण मे लेकर खडा हुआ है—सांस रोककर खडा हुआ है, आंख थामकर खडा हुआ है, जिसने हर चीज को नियत्रण मे रखा हुआ है—कन्ट्रोल्ड, ऐसा आदमी झूठा आदमी होता है, अभिनेता होता है।

महावीर तो अत्यन्त सरल है। उनके जीवन में जो भी है, वह सीधा है और सरलता से निकल रहा है। लेकिन जब दूसरे लोग अनुकरण करने लगते हैं किसी सीधे और सरल आदमी का तब मुश्किल खडी होती है। समझ ले कि जैसे मैं सरलता से हँस रहा हू, अब मेरा कोई अनुयायी पैदा हो जाए, हालाकि ऐसा पाप मैंने अब तक किया नही कि किसी को कहू कि तुम मेरे अनुयायी हो, मेरे शिष्य हो। हालाकि कई पागल मेरे पास आते है और कहते है कि हमें अपना शिष्य बनाइये, हम तो पीछा छोडेंगे ही नही। हमे अपना शिष्य बनाइये! ऐसे

पागलों ने शायद महावीर, बुद्ध, और सबका पीछा करके उनको पकड़ लिया होगा कि हम तो शिष्य बनेंगे।

अगर कोई अनुयायी देख ले कि मैं हंस रहा हूं, और हंसना चाहिए, तो वह भी हंसेगा, लेकिन उसका हंसना पोज्ड होगा, साधक का हंसना होगा। वह भी मुस्करायेगा, लेकिन वह मुस्कराहट झूठी होगी, ऊपर से थोपी हुई होगी।

महावीर अत्यंत स्पॉन्टेनिअस, सहज-स्फूर्त व्यक्तित्व है, जी रहे हैं, जैसा उन्हें आनंदपूर्ण मालूम हो रहा है। और हम उनके पीछे पकड पकडकर नियम खोज रहे हैं कि वे कैसे जी रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या नही कर रहे हैं।

महमूद गजनी मे था —सम्राट गजनी का। एक दिन सुबह निकल रहा है गजनी के रास्ते से, एक मजदूर एक बहुत बडी पत्थर की चट्टान को लेकर ढो रहा है। गजनी ने देखा कि वह चट्टान ले जा रहा है। उसका पसीना पसीना चू रहा है। उसकी आंखो मे आसू हैं। बूढा आदमी है, जर-जर देह उसकी कपती है। न मालूम किस दीनता मे, किस दुख मे, चट्टान ढोनी पड रही है उसे किस मजबूरी मे। महमूद अपने घोडे पर है। उसने चिल्लाकर कहा, ऐ मजदूर, पत्थर को नीचे गिरा। गिरा दे इसी वक्त। अब सम्राट ने आज्ञा दी तो मजदूर ने पत्थर नीचे बीच सडक में गिरा दिया। महमूद तो अपने घोडे पर बैठकर घर चला गया। अब इस पत्थर को कौन हटाये—क्योंकि बादशाह ने पत्थर गिरवाया? और बादशाह के वजीर, अनुयायी, बादशाह के अधिकारी कहने लगे कि जरूर कोई मतलब होगा। जब पत्थर गिराया तो मतलब होना चाहिए, क्योंकि महमूद नासमझ तो नही है। जरूर कोई राज है इसमे। पत्थर हटाना मत। पत्थर जहा गिराया गया था, वही पडा रहे।

और महमूद पत्थर गिरवाकर भूल-भाल गया। वह तो कोई और बात थी कि मजदूर इतना थका-मांदा मालूम पडता था, इसलिए गिरवा दिया। तो वह घर चला गया, बात खत्म हो गई। अब वह पत्थर वही पडा रहा। एक साल बीत गया। रास्ते मे ट्रैफिक को दिक्कत होती है, चलने मे मुसीबत होती है, लेकिन पत्थर को हटाये कौन, महमूद ने गिराया है! महमूद को कहे कौन? उसकी विजडम, उसकी बुद्धिमत्ता पर शक कौन करे? कोई महमूद से कुछ कहता नही, महमूद को कुछ पता नही। महमूद बीस साल जिंदा रहा और वह पत्थर वही पडा रहा।

महमूद मर गया। उसका लडका गद्दी पर बैठा। वजीर ने कहा, पत्थर के बाबत क्या किया जाय? राजधानी मे बडी तकलीफ है? उसने कहा, जिसको

पिता ने किया था, मैं उसको कैसे इनकार कर सकता हू ? कोई राज होगा, कोई सिक्रेट होगा, कोई बात होगी । इतने बुद्धिमान आदमी थे महमूद । उनके सम्मान के कारण पत्थर वहा से नही हटाया जा सकता । पत्थर वही रहेगा ।

लडका भी मर गया । तीसरी पीढ़ी आ गई, लेकिन पत्थर वहीं है । आगे का मुझे पता नही है । जहा तक सौ में निन्यानवे मौके हैं, पत्थर अभी भी वही होगा, क्योंकि वह महमूद ने गिराया था ।

जीवन के सहज कृत्य, जिनका उस क्षण मे कुछ मूल्य होता है, पीछे चलने-वाले पागल की तरह पकड लेते है, और फिर उन्ही के साथ बधे रह जाते हैं । उन्ही के साथ बधे रह जाते है, और उन्हीं को साधना बना लेते है!

किसी महापुरुष के जीवन को समझना जरूर, अनुयायी कभी मत बनें । समझिये, उसके जीवन मे प्रवेश करिये, उसके जीवन के दबे हुए परदे उघाडिये, खोलिये राज, पहचानिये उसकी आत्मा को, उतरिये शब्दो के भीतर, हटाइये सिद्धान्तो को, जाइये उसके व्यक्तित्व मे, उसके मनस् में, उसकी साइकोलॉजी मे ।

अनुयायी मत बनिये, सिर्फ प्रवेश करिये ।

और आप हैरान होगे कि किसी भी महापुरुष की आत्मा से एनकाउटर साक्षात्कार आपकी आत्मा को बदलने के लिए, आपकी अपनी आत्मा मे क्रान्ति लाने के लिए, एक अनूठी प्रेरणा बनके उपस्थित हो जाता है ।

अनुयायी बनने की कोई भी जरूरत नही है ।

किसी के पीछे जाने की कोई जरूरत नही है, क्योकि आदमी को अपने भीतर जाना है, किसी के भीतर नही जाना है। लेकिन अपने भीतर जाने के लिए— जो लोग अपने भीतर गए हो, उनके जीवन के रास्ते को ठीक से जानना और पहचानना । और केवल वही पहचान सकता है, जिसे अनुयायी बनने की जल्दी न हो, क्योंकि अनुयायी बनने की जल्दी मे विचार करना सभव नही होता ।

अत मे, प्रभु करे आपके भीतर महावीरत्व का जन्म हो, आपके भीतर आत्मा का जन्म हो ।

आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को मेरे प्रणाम । मेरे प्रणाम स्वीकार करे ।

—०—

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

	रु. पैसे
१. जिन खोजा तिन पाइयाँ	४०—००
२ ताओ उपनिषद्, भाग—१	४०—००
३. ताओ उपनिषद्, भाग—२	४०—००
४. कृष्ण मेरी दृष्टि में	४०—००
५. महावीर मेरी दृष्टि मे	४०—००
६ पाथेय	३५—००
७ महावीर-वाणी, भाग—१	३०—००
८ महावीर-वाणी, भाग—२	३०—००
९ गीता-दर्शन, अध्याय—४	३०—००
१० गीत-दर्शन, अध्याय—५	१५—००
११ गीता-दर्शन, अध्याय—९	२५—००
११ गीता-दर्शन, अध्याय—११	२५—००
१२ ईशावास्य उपनिषद्	१५—००
१३ निर्वाण उपनिषद्	१५—००
१४ पद घुघरू बाध	८—००
१५ सत्य की पहली किरण	७—००
१६. प्रभु की पगडडिया	६—००
१७ मैं कहता आखन देखी	६—००
१८ सभोग से समाधि की ओर	६—००
१९ क्राति-बीज	६—००
२० गाधीवाद एक और समीक्षा	५—५०
२१ पथ के प्रदीप	६—००
२२. अस्वीकृति मे उठा हाथ	५—००
२३ सत्य की खोज	५—००
२४ गहरे पानी पैठ	५—००
२५. ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	५—००
२६ मुल्ला नसरुद्दीन	५—००
२७ समाजवाद से सावधान	५—००
२८ समाजवाद अर्थात् आत्मघात	५—००
२९ शून्य की नाव	५—००
३० शून्य के पार	४—००
३१ शान्ति की खोज	३—५०
३२ विद्रोह क्या है ?	२—५०
३३ पथ की खोज	२—००
३४ सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	२-००
३५ सूर्य की ओर उडान	२—००
३६ जन-सख्या विस्फोट	१—५०
३७ क्राति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१—५०
३८ प्रेम के स्वर	१—५०
३९ मेडिसिन और मेडिटेशन	१—२५
४० युवक और यौन	१—००
४१ धर्म और राजनीति	१—००
४२ अमृत-कण	१—००
४३ अहिंसा-दर्शन	१—००
४४. बिखरे फूल	१—००
४५ शिव-सूत्र (डीलक्स)	५०—००
शिव-सूत्र (सामान्य)	२५—००

शीघ्र प्रकाशित

१. महावीर या महाविनाश १४—००

२. जीवन-क्रान्ति के सूत्र ८—००

३ ताओ उपनिषद्, भाग—३

मराठी में अनुवादित साहित्य

	रु पैसे		रु पैसे
१. भगवताची पाऊलवाट	६–००	६ गीता दर्शन अध्याय–२ (पूर्वार्ध)	६–००
२ सभोगातून समाधीकडे	५–००	७ गीता दर्शन–अध्याय २ (उत्तरार्ध)	७–००
३ प्रेम-पुष्प	३–५०	८ गीता दर्शन–अध्याय ३	१६–००
४ समाजवादापासून सावध	७–००	९ गीता दर्शन–अध्याय ५	१६–००
५ गीता दर्शन अध्याय–१	५–००		

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा	५–००	६ अज्ञात प्रति	२–००
२ सभोगथी समाधि तरफ	४–००	७ प्रेमना फूलो	५–००
३ साधना-पथ	३–००	८ सत्यनी शोध	४–२५
४ माटीना दिवा	३–५०	९ ईशावास्य रहस्य	१–२५
५ हूँ कोण छू ?	३–००	१० निर्वाण नवनीत	१–२५

इनके अतिरिक्त २० अन्य छोटी-छोटी पुस्तके हैं।

हमारी पत्रिकाए :

१ रजनीश फाउन्डेशन न्यूज लेटर (हिन्दी पाक्षिक) वार्षिक शुल्क २४–००

२ रजनीश-दर्शन (हिंदी द्वैमासिक) २०–००

३ युक्राद (हिंदी मासिक) श्री अरविंदकुमार ७९०, राइट टाउन जबलपूर १५–००

४ रजनीश-दर्शन (गुजराती मासिक) भवानी चेंबर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद–९ १२–००

५ योग-दीप (मराठी पाक्षिक) १०१ टिंबर मार्केट, पूना–१ १०–००

भगवान श्री रजनीश की समस्त पुस्तको (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओ मे) के लिए निम्नलिखित पते पर सपर्क करे या लिखें

रजनीश फाउन्डेशन
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगाव पार्क
पूना – १
फोन २८१२७

Books in English

I. Original English Books and Booklets ·

(Postage extra)

No.	Title	Rs
1	The Ultimate Alchemy (Vol I)	40-00
2	Flowers of Love	15-00
3	The Silent Explosion	12-50
4	Two Hundred Two (Mulla Jokes)	10-00
5	Wisdom of Folly (Mulla Jokes)	6-00
6	Meet Mulla Nasrudin (Mulla Jokes)	5-00
7	Seriousness	3-00
8	Meditation A New Dimension	3-00
9	Beyond and Beyond	3-00
10	LSD A Shortcut to False Samadhi	2-00
11	Yoga As a Spontaneous Happening	2-00
12	The Vital Balance	1-50
13	The Gateless Gate	2 00
14	The Eternal Message	3-00
15	The Dimensionless Dimension	2-00
16	The Book of the Secrets (Vol I)	2-00
	(Sixteen discourses on Vigyan Bhairava Tantra)	62-00
17	The way of the White Cloud (15 discorses)	66-00

II. Translated from Original Hindi Version :

No.	Title	Rs
18	Seeds of Revolution	8-00
19	From Sex to Superconsciousness	6-00
20	Towards the Unknown	1-50
21	Lead Kindly Light	1-50

III Our Periodicals

No.	Title	Rs
23	Sannyas (bi-monthly) annual subsc.	20-00
24	Rajneesh Foundation News letter (Fortnightly)	24-00

For Inquiries About Books Please Contact

Rajneesh Foundation
Shree Rajneesh Ashram
17, Koregaon Park
Poona—1
Maharashtra INDIA
Telephone 28127